पढ़ाने की कला

गिलबर्ट हायेट की प्रसिद्ध पुस्तक 'दि आर्ट ऑफ टीचिंग' का
प्रामाणिक हिन्दी रूपान्तर

अनुवादक
महेशरंजन वर्मा

आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

प्रस्तावना

यह पुस्तक पढ़ाने के विविध तरीको के सम्बध में लिखी गयी है। इसमे इस बात पर विचार नहीं किया गया है कि कौन से विषय स्कूल, कालेज या दूसरी जगह पढाये जाते हैं या पढाए जाने चाहिएँ। ऐसी पुस्तकें तो हजारो लिखी गयी हैं जिनमें यह बताया गया है कि कौन से विषय पढाये जायें। लेकिन पढाने के सामान्य सिद्धान्तो के बारे में अपेक्षाकृत कम ही पुस्तकें मिलती हैं। फिर भी यह जरूरी है कि पढाने के विषय और पढ़ाने के ढंग एक दूसरे से अलग माने जायें। प्रचार के विकास ने यह दिखा दिया है कि किस तरह झूठी और बेहूदी बातो को भी बड़ी योग्यता से पढाया जा सकता है। दूसरी ओर स्कूलों का इतिहास भी हमें यह बताता है कि किस तरह अच्छे विषयो और तथ्यो को भी बुरे ढग से पढाया जा सकता है। अतएव इस पुस्तक में हमारा उद्देश्य अच्छे और बुरे विषयो का भेद बताना नही है बल्कि कुछ ऐसे-ऐसे सिद्धान्तों को निर्धारित करने की चेष्टा करना है जिनके द्वारा किसी विषय को एक बार निर्धारित कर लेने के बाद उसे ठीक ढग से पढ़ाया जा सके। यह पढ़ाई के सिद्धातो की पुस्तक नहीं है बल्कि इसमे अनुभव के आधार पर कुछ सुझाव दिए गये हैं।

इस पुस्तक का नाम हमने "पढाने की कला" रक्खा है क्योंकि हमारा विश्वास है कि पढाना एक कला है, विज्ञान नहीं। मुझे विज्ञान के उद्देश्यो और तरीको को व्यक्ति के रूप में मनुष्यो पर लागू करना बहुत ही खतरनाक मालूम पड़ता है यद्यपि आकड़ो से सम्बन्धित कोई सिद्धान्त अक्सर बडे बडे समूह में उनका व्यवहार बता सकता है। उनकी शारीरिक बनावट का एक वैज्ञानिक विश्लेषण हमेशा बहुमूल्य होता है। लेकिन लोगो के बीच कोई 'वैज्ञानिक" सम्बध होना अधूरा और शायद वास्तविकता का विकृत रूप ही होगा। इसमें संदेह नहीं कि अध्यापक को अपने काम के नियोजन और तथ्यों के व्यवहार में व्यवस्थित और चुस्त होना चाहिए लेकिन इससे उसकी पढ़ाई "वैज्ञानिक" नहीं हो जाती। पढ़ाने का सम्बध भावनाओं से होता है और भावनाओ को न तो नियमित रूप से आंका जा सकता है और न उनका नियमित ढग से उपयोग ही किया जा सकता है। इसमें ऐसे मानविक महत्त्व भी जुडे होते हैं जो भावनाओ की तरह खुद भी विज्ञान की परिधि से बाहर हैं।

"वैज्ञानिक" ढग से पाला पोसा गया बालक एक दयनीय राक्षस होगा। "वैज्ञानिक" विवाह सच्चे विवाह का केवल एक दुबला और दुर्बल रूप होगा। एक "वैज्ञानिक" मित्रता शतरज के खेल की तरह शुष्क होगी। "वैज्ञानिक" पढाई, भले ही वह वैज्ञानिक विषयो की पढ़ाई ही क्यो न हो, तब तक अधूरी रहेगी जब तक अध्यापक और विद्यार्थी, दोनो मानव होंगे। पढ़ाना किसी रासायनिक प्रक्रिया के प्रयोग जैसा नहीं है, बल्कि

इसकी समता चित्र-कला या सगीत रचना से की जा सकती है। अथवा एक निचले स्तर पर, उसकी तुलना बागवानी या किसी मैत्रीपूर्ण पत्र लिखने से की जा सकती है। पढाने के काम में आपको अपना दिलो-दिमाग़ पूरी तरह लगाना होगा। आपको यह समझना होगा कि पढाने का काम पूर्णतया फार्मूलो की सहायता से नही किया जा सकता। अगर आप ऐसा करेंगे, तो इससे न केवल आपके काम मे नुकसान होगा वल्कि आपके विद्यार्थियो और खुद आपको भी हानि होगी।

पुस्तक का आरम्भ ऐसी योग्यता और चरित्र पर विचार करते हुए किया गया है जो किसी अच्छे पेशेवर अध्यापक में होना बहुत जरूरी है और इसके बाद उसके तरीको पर विचार किया गया है। तत्पश्चात् इसकी और भी शाखाएँ हो जाती हैं। विख्यात अध्यापको का प्रभाव उन शक्तियो में एक है जिन्होने हमारी सभ्यता के निर्माण में मदद पहुँचाई। इसीलिए हमने अतीत के सशक्त अध्यापको पर विचार किया है। सबसे पहले यूनानी विद्वानो, उसके बाद सुकरात, प्लेटो और अरस्तु, इसके बाद महात्मा ईसा; तब रेनेशाँ युग के अध्यापक, बाद में जेसुइट धर्म प्रचारक; और तब उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के प्रमुख अध्यापक, तथा अंत में उन महान् लोगो के पिता, जो अपने बच्चो को महान बनने की शिक्षा देते थे। अतत, हमारा प्रवेक्षण दैनिक जीवन में शिक्षा की ओर केन्द्रित होता है, जैसी शिक्षा देने का काम साधारण माता-पिता अपने बच्चो को, पति पत्नी को या पत्नी पति को, डाक्टर, पुजारी, मनोविश्लेषक, राजनीतिज्ञ, प्रचारक यहाँ तक कि कलाकार और लेखक भी करते है और उन्हें इस बात की जानकारी नहीं होती कि वे ऐसा कर रहे हैं। पुस्तक का अत हमारी उस बडी परन्तु उत्साहवर्धक जिम्मेदारी की घोषणा से होता है, जो हम सबो पर तब आती है जब हम अपने सहचर्यों को पढाने का यत्न करते हैं।

इस पुस्तक के बारे में विचार-विनिमय करने, महत्त्वपूर्ण रचनात्मक आलोचना करने और तथ्यपूर्ण सूचना देने के लिए, मैं अपने कई मित्रो और सहयोगियो का आभारी हूँ। सबसे पहले मैं, अपने गुरु, ऑक्सफोर्ड स्थित, बेलोएथ कॉलेज के आनरेरी फेलो (Honorary Fellow of Balliol College, Oxford), डा० सिरिल बेली (Dr. Cyril Baily) के प्रति आभारी हूँ, जिनके प्रति अपनी उस कृतज्ञता को प्रगट करने के लिए यह एक तुच्छ भेंट समर्पित कर रहा हूँ, जिनकी बीस साल तक मित्रता और निर्देशन मैंने पाया। तदोपरान्त मैं कोलम्बिया यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर मार्क वें डौरेन (Mark van Doren) का आभारी हूँ जिन्होने इस पुस्तक की सारी पांडुलिपि को पढ़ने का कष्ट किया और मुझे इस पुस्तक की कुछ त्रुटियों को दूर करने की राय देकर अध्यापन के अपने लम्बे अनुभव और व्यक्तिगत विनिमयता का परिचय दिया। कुछ विशिष्ट बातो पर सलाह देने के लिए मैं कोलंबिया यूनिवर्सिटी के ही प्रोफेसर राल्फ एच० बमेकार्ड

(Ralph H Blanchard), न्यूयार्क स्थित मनोविज्ञान निगम के डाक्टर अल्बर्ट डी० फ्रिवर्ग (Dr Albert D Frieberg of Psychological-Corporation of New York); हार्वड के प्रोफेसर वर्नर जेगर (Werner Jaeger); कोलबिया के प्रोफेसर आर्थर जेफरी (Arthur Jeffery), न्यूयार्क के डाक्टर रोजर लैपहम, जिनकी पुस्तक "It's in your Power" इस बात का एक सुन्दर दृष्टान्त है कि डाक्टरो में भी पढाने की योग्यता होती है, फोर्ड्हम यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर ग्रेब्रिएल लेगे (Gabriel Liegey), न्यूयार्क के मिस्टर डेनवर लिन्डले (Denver Lindley); कोलंबिया के प्रोफेसर क्लेरेंस ए० मैनिंग (Clarence A Manning), फोर्डम के पादरी एड्विन ए० क्वेन (Edwin A Quain), कोलबिया यूनिवर्सिटी के कालेज ऑफ फिजिशियन्स एण्ड सर्जन्स के डा० डब्लू० एच० शेल्डन; सामाजिक सुरक्षा प्रशासन (Social Security Administration) के मिस्टर एल० ओ० शुड (L O Shudde), कैम्ब्रिज किंग्स कालेज के के मिस्टर एल० पी० विल्किन्सन, और कोलबिया के प्रोफेसर बेन डी० वुड का आभारी हूँ।

मै कोलबिया यूनिवर्सिटी लायब्रेरी के प्रसंग अधिकारियो का भी आभारी हूँ जिन्होने अपने विस्तृत बिब्लिओग्राफिकल जानकारी और शान्त स्वभाव से बहुत से प्रसंग ढूंढ़ निकाले (खासकर उस विषय पर जिसकी चर्चा चौथे अध्याय में की गयी है) जिन्हें अगर मुझे खुद ढूढ निकालने में महीनो लग जाते, और बर्नाड कालेज के लाइब्रेरियन और लाइब्रेरी अधिकारियो का भी, मै उनकी सहायता के लिए आभारी हूँ। अंत में मै अपनी पत्नि का आभारी हूँ जिनकी सूक्ष्म आलोचनाएँ सदा उत्साहवर्धक रहीं।

मार्च १६५०
कोलबिया यूनिवर्सिटी
न्यूयार्क

गिलबर्ट हायेट

विषय-सूची

१
भूमिका

पढाने की कला के बारे मे पुस्तक लिखना बहुत कठिन काम है क्योकि यह विषय हमेशा बदलता रहता है। एक ही समय में दुनिया के विभिन्न देशो मे पढाई के अलग-अलग तरीके काम मे लाये जाते हैं। जैसे-जैसे समाज का ढाँचा और उसके आदर्श बदलते जाते हैं वैसे-वैसे नयी पीढी के साथ-साथ ये तरीके भी हर देश मे बदलते जाते हैं। कोई व्यक्ति शिक्षा को गौरव की बात समझकर मेहनत करता है, विश्वविद्यालय मे पढने के लिये पैसे इकट्ठे करता है और जितना उससे बन पडे ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश करता है। लेकिन हो सकता है कि तीस साल बाद उसका लडका पढाई से नफरत करने लगे, स्कूल जाने से कतराये, कालेज में अपना समय बर्बाद करे और अपने बच्चो को पुस्तको से नफरत करना सिखाये। तीस साल और बीत जाने पर हो सकता है कि उसके बच्चे फिर उत्साह से पढाई करने लगें। हो सकता है वे अपनी पढाई किसी नये या गलत तरीके से कर रहे हो। यह भी सम्भव है कि उन्होने अपनी पढाई बुढापे में शुरू की हो या पढने के लिये किसी शिक्षा सस्था मे अपने को दाखिल न कराया हो। इन सब बातो के बावजूद उनमे पढने की सच्ची लगन हो सकती है। कहने का अभिप्राय यह है कि इन सभी पीढियो के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा की जरूरत पडती है।

और फिर पढने-पढाने की दूसरी हजारो बातें होती हैं। उनकी सख्या इतनी अधिक है कि आप यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या उनको एक ही शिक्षा-प्रणाली मे लाना सम्भव है? माँ बच्चे को बोलना सिखाती है, स्कूल में मास्टर लडको को इतिहास पढाते हैं, उस्ताद पहलवानो को दाँव-पेच सिखाते हैं, फोरमैन मजदूरो को सडक बनाना सिखाते हैं, लेकिन क्या उन सबो के पढाने का ढग एक जैसा है? यहाँ तक कि एक ही देश के स्कूलो और विश्वविद्यालयो में पढाये जाने वाले विषयो की सख्या देखकर आश्चर्य होता है। उनमें साधारण गणित से लेकर गूढ भौतिक-शास्त्र और नृत्यकला से लेकर दिमाग का ऑपरेशन भी शामिल होते हैं। दुनिया भर के हजारो स्कूलो और सैकडो विश्वविद्यालयो में न जाने कितने विषय पढाये जा रहे हैं। उदाहरण के लिये हम देखते हैं कि कोई लड़का आज कुरान को जबानी याद कर है तो कोई विशेष गणना-विधि के अध्ययन (केलकुलस) सीख रहा है और कोई लडाई में जमीन के नीचे से इमारतो को गिराने की नियमावली पढ़ रहा है। इक्वेडोर मे एक लडकी टेरेसा से फीते बनाना सीख रही है, भारत में एक लड़की

गाँधीजी के उपदेशो को पढ रही है तो जापान मे एक लडकी फूलो की सजावट का साकेतिक मतलब समझने मे लगी है।

यो तो इनके इलावा और सैकडो विषय स्कूलो मे पढाये जाते हैं लेकिन अधिकतर पढाई स्कूल के बाहर ही हुआ करती है। कुछ बातें, जिसमे कुछ बहुत जरूरी बाते शामिल हैं—बच्चे अपने माँ-बाप से सीखते हैं। वह पढाई तभी शुरू हो जाती है जब बच्चा किसी चाकू की तरफ उसे पकडने के लिये बढता है और माँ चाकू को हटा लेती है। बल्कि यो कहिये कि बच्चे की शिक्षा उससे भी पहले शुरू हो जाती है—तभी से जब बच्चा पहली बार रोता है और उसको चुप कराया जाने लगता है। उस छोटी उम्र मे ही, जब शायद वह अच्छी तरह देख या सुन भी नही सकता, तभी से वह ससार के बारे मे और अपने बारे मे कुछ थोडा-थोडा जानने लगता है। वह जो कुछ अपनी मूक भाषा मे कहता है उसका उत्तर भी पाने लगता है। वह अपनी इच्छा को बताने की कोशिश करता है जिसमे उसे सफलता मिलती है या असफल होने पर दुख होता है। वह क्रमश प्रसन्न या दुखी होना, डरना, प्यार करना या क्रुद्ध होना सीखने लगता है। उसके दिमाग की नीव तभी से पडने लगती है और यह पढाई चाहे कितनी ही परोक्ष रूप से क्यो न हो उसके दिमाग की गहराई तक पहुँच जाती है। हम सबने इसका अनुभव किया है और इसे भूल भी चुके हैं। फिर भी यह बात कोई कम महत्त्व नही रखती क्योकि इसकी जडें काफी गहरी होती हैं। आप अनुमान लगा सकते हैं कि किसी बच्चे के लिये छुरी से हाथ काट लेना या केतली से पैर जला लेना कितना आसान होता है। चालीस वर्ष के बाद भी वे निशान बने रहते हैं। दुनिया मे कितने ऐसे बिगडे दिमाग और कुण्ठित चरित्र के लोग मिलेंगे जिन्हे उनके माता-पिता ने आग या छुरी से तो दूर रक्खा परन्तु उनकी आत्मा को सदा के लिये कुंठित छोड दिया।

स्कूल मे पढने के दौरान और स्कूल की पढाई खत्म कर चुकने पर भी वर्षों तक माँ-बाप अपने बच्चो को शिक्षा देते रहते हैं। इच्छा हो या न हो यह काम वे करते ही जाते हैं। एक पिता जो अपने बच्चे के प्रति उदासीन रहता है, अपने बच्चे को उस व्यक्ति से कोई कम शिक्षा नही देता जो सदा उन पर छडी लेकर हावी रहते हैं। पढाना भी बडा अजीब धन्धा है। भले ही कोई पिता जान-बूझकर अपने बच्चे को शराब पीना या गैर-जिम्मेवार बनने की शिक्षा नही देता या चाहे लडका स्वय अपनी मनोवृत्तियो के अनुरूप जार्ज बर्नार्ड शा या जोयस की तरह वैराग्यचित्त, बडे-बडे मन्सूबे बनाने वाला तथा मेहनती क्यो न बन जाय, लेकिन यथार्थ तो यह है कि बच्चो को पिता से कुछ न कुछ शिक्षा मिलती ही रहती है, चाहे वह शिक्षा उसके लिये हितकर या हानिकारक हो। कई माता-पिता इस बात को या तो जानते नही या फिर उसकी चिन्ता नही करते। ऐसा तो हो ही नही सकता कि अपने बच्चे को वे किसी तरह की शिक्षा न दे रहे हो। चाहे आप मारें-पीटें, खूब लाड-प्यार करें या उनकी उपेक्षा करें, जबरदस्ती मुँह में ठूसकर भोजन करायें या उनके लिये चिन्तित हो, उनसे प्यार या घृणा करें, इन सब अवस्थाओ मे आप सब घडी उनको कुछ न

कुछ सिखा रहे हैं।

और शिक्षा माँ-बाप या अध्यापक तक ही सीमित नही होती। सभी उद्योग और व्यवसायो में शिक्षक और शिष्य होते हैं। जहाँ कही भी नौसिखिये और जानकर, बूढे और जवान एकत्र हो वही किसी न किसी किस्म का आदान-प्रदान होता ही रहता है, किसी न किसी रूप मे पढाई चलती ही रहती है। हम सब शिक्षक भी हैं और शिष्य भी। एक आदमी की हैसियत से आप अपने ही जीवन को देखें। उसका अधिकाश भाग दिनचर्या मे बीत जाता है। कुछ समय आमोद-प्रमोद मे और शेष पढने-पढाने मे निकल जाता है—चाहे आप कोई डाक्टर हो जो किसी खास बीमारी के सम्बन्ध मे अपनी जानकारी बढाना चाहते हो या आप कोई गृहणी हो जो घर का काम अच्छे ढग से चलाने की योजना बनाती हो। चाहे आप कोई अर्थ-शास्त्र की जानकारी हासिल करने वाले किसी ट्रेड-यूनियन के अधिकारी हो या कम से कम आय पर काम करने वाला टाइपिस्ट। आप कोई युवा पति हो जो अपनी पत्नी को खुश करने की कोशिश कर रहा हो या आप कोई राजनैतिक वक्ता हो जो अपने श्रोताओ को प्रभावित करने मे लगा हो या आप कोई बस ड्राइवर हो जिसको किसी नये रूट (Route) पर बस चलाना है या आप नयी पुस्तक लिखने मे लगे कोई लेखक हो और चाहे आप स्वय कुछ सीख रहे हो या दूसरो को कुछ सिखा रहे हो। अधिकतर लोग यह नही जानते कि शौकीया अध्यापन और अनियमित ढग की पढाई मे उनके व्यक्तिगत जीवन का कितना समय निकल जाता है। हम में से अधिकतर यह नही समझते कि स्वय वे समाज जीवी होने की हैसियत से या तो शिक्षा पाते या निरन्तर दूसरो को पढाते रहते हैं।

डाक्टर जॉनसन ने एक बार जोरदार शब्दो मे यह कहा था कि औरतो का उपदेश देना कुत्तो को अपनी पिछली टाँग पर चलने के समान होता है। उन्होने कहा था, "अच्छे ढग से पढाना तो उनके वश से बाहर की बात होती है फिर भी वे किसी भी तरह कैसे पढा पाती हैं, यह बात देखकर आपको आश्चर्य ही होगा।"

अधिकतर लोग पढने-पढाने का काम कायदे से नही कर सकते। इसकी वजह यह नही कि वे मूर्ख हैं बल्कि इसलिए कि इस विषय पर वे सोच-विचार नही करते। ऐसे अध्यापको की सख्या जिनका मुख्य व्यवसाय पढाना है, ससार में सब जगह बराबर नही है। कुछ देशो में उनकी सख्या इतनी कम है कि शायद ही वे एक भी स्कूल चलाने के लिए पूरे हो सकें। कही उनकी सख्या इतनी होती है कि वैसे अध्यापक हर गाँव मे मिलते हैं। किसी समय सब जगह अच्छे अध्यापक मिल जाते हैं और कभी स्कूलो में मास्टर सुस्त और अज्ञानी होते हैं जिसके फलस्वरूप स्कूल का वातावरण भद्दा और घृणास्पद होता है। बच्चो की देखभाल अच्छी तरह नही होती और वे भ्रष्ट चरित्र बन जाते हैं। जो नौसिखिये (यदि मैं ऐसा कहूँ) अध्यापक होते हैं उनके साथ तो यह बात और भी चरितार्थ होती है। अक्सर ऐसा देखा जाता है कि हँसमुख माँ-बाप की लडकी गमगीन और अनाकर्षक होती है। कितने ऐसे कारखाने हैं जो अपनी क्षमता की अपेक्षा आधा ही काम कर पाते हैं क्योकि उस कार-

खाने का फोरमैन न तो काम ढग से करने की योजना ही बना सकता है और न वह कामगरो को काम के बारे मे समझा ही सकता है। कला, राजनीति या धर्म आदि विषयो का सच्चा अध्ययन करने वाले विद्यार्थियो की सख्या कितनी होगी जिन्होने उन विषयो पर गदे ढग से लिखी गयी पुस्तको को आधा ही पढने के बाद उन्हे पढना छोड दिया हो और इसलिये दुख और हतोत्साहन का अनुभव किया हो, क्योकि उस पुस्तक के लेखक ने उन बातो को ठीक से नही लिखा जिसे वह जानता था ? बुरे ढग की शिक्षा से बडी मेहनत बेकार होती है और उससे वैसे कितने लोगो का जीवन नष्ट होता है जो अच्छी शिक्षा पाकर सुखी होते और उनमे काम करने की योग्यता होती।

अत यह विषय बडे महत्त्व का है। लेकिन फिर यह विषय इतना विस्तृत है कि किसी एक ही पुस्तक मे इस पर प्रकाश डालना सभव नही। मुझे इसमे भी सदेह है कि शायद ही कोई ऐसा आदमी होगा जिसको इस विषय की पूरी जानकारी हो कि वह इस पर पुस्तक लिख सके। वैसे तो किसी खास किस्म की शिक्षा पर सैकडो ग्रन्थ भी लिखे गये हैं जैसे बहरे-गूगो को किस तरह शिक्षा देनी चाहिये, नृत्यकला कैसे सिखाना चाहिये या किसी विदेशी भाषा को किस तरह पढाना चाहिये। लेकिन वैसी पुस्तके साधारणत परिमित होती हैं और शायद ही उनमे एक से दूसरे का कोई सम्बन्ध होता है। मैं स्वय बीस साल पढाने का काम करता रहा हूँ और मैंने कई बार यह कोशिश की कि मुझे कोई ऐसी पुस्तक मिल जाती जिससे मैं जिस धधे मे लगा हूँ उसके बारे मे कुछ और जानकारी मिलती। चूंकि मुझे ऐसी कोई पुस्तक न मिली इसीलिये मैंने इस पुस्तक को लिखने का निश्चय इस उम्मीद से किया है कि इससे उन सब अध्यापको को लाभ हो जो नौसिखिये हैं या जिनका पेशा ही यही है। और जिससे दूसरे लोगो को इस विषय पर इससे भी अच्छी और भरपूर पुस्तक लिखने की प्रेरणा मिले। मैं यह मानता हूँ कि प्रोत्साहन देना ही किसी अध्यापक का पहला काम है।

एक बात से मैं सचेत कर देना चाहता हूँ कि यह किताब उन विषयो के बारे में नही लिखी गयी है जो पढाये जाते हैं। इसमे यह प्रयास नही किया गया है कि विज्ञना, धर्म, कला या विदेशी भाषाएँ पढायी जानी चाहियें या नही या विभिन्न विषयो का एक दूसरे से क्या सम्बन्ध है ? यह पुस्तक केवल पढाने की विधियो के बारे मे लिखी गयी है। बच्चे, युवक और युवतियो की शिक्षा के लिए कैसे विषय पढाये जायें, उनकी छानबीन से सम्बद्ध कई अच्छी पुस्तकें लिखी गयी हैं। शिक्षा के विषय देश और समय के अनुसार बदलते रहते हैं। लेकिन पढाई के ढग उस तरह बदलते नही रहते और मोटे तौर पर कम-बेश एक जैसे ही रहते हैं। अत इस पुस्तक मे हम यह विवेचन करेंगे कि कैसे पढाया जाय न कि क्या पढाया जाय।

२

अध्यापक

स्कूल, कालेज, युनिवर्सिटी और टैक्निकल सस्थाओ मे बडे अच्छे ढग से शिक्षा दी जाती है। यह शिक्षा सबसे व्यवस्थित ढग की होती है यद्यपि इसका महत्त्व सबसे ज्यादा नही होता। इस पुस्तक को पढाने वाले हर व्यक्ति को थोडी-बहुत ऐसी शिक्षा मिली होगी और विद्यार्थी रहने का अनुभव भी हुआ होगा। हर आदमी अपने अध्यापक का कुछ हद तक ऋणी होता है। अच्छा तो अब हम अध्यापको से ही शुरू करते हैं। ज़रा सोचिए, वे कैसे लोग होते हैं और उनका काम क्या होता है ?

अध्यापक का काम बडा विचित्र होता है। कुछ माने मे वह आसान है और कुछ माने में कठिन भी। इस धधे में सबसे आरामदेह बात यह होती है कि अध्यापक की दिनचर्या में समय का कभी अभाव नही होता। वैसे अध्यापको की सख्या बहुत ही कम है जिनको व्यापारियो और दूसरे रोज़गार मे लगे लोगो की तरह साल मे अढतालीस या पचास हफ्ते काम करना पडता है वैसे अध्यापको की सख्या तो और भी कम होती है जो सप्ताह मे पाँच या छ दिन सुबह नौ बजे से पाँच बजे शाम तक पढाते है। अधिकतर स्कूल और कालेज साल मे कुल मिलाकर नौ महीने ही खुले रहते है और एक शिक्षक के लिये यह ज़रूरी नही कि जिस दिन स्कूल या कालेज खुला हो उस दिन हर घटी मे उसे वहाँ हाजिर होना पडे। हाँ, इतना जरूर है कि पढाने के समय के बाद भी उनके पास काफी दूसरे काम होते है जिनमें परीक्षा-पत्र तैयार करना, अखबार पढना और विद्यार्थियो से बातचीत करना जैसी बातें भी नियम बन जाती है। इसके अलावा उनको पढाने से पहले उस विषय की जानकारी और तैयारी भी करनी होती है। लेकिन इस तरह के अधिकतर काम अध्यापक अपने घर पर ही या अपनी पढाई के कमरे मे ही तैयार कर सकता है। इससे सबसे बडा लाभ यह होता है कि कम ही ऐसे अध्यापक होते हैं जिनको अपनी सीट पर ज्यादा देर तक बैठना पडता है और सोमवार को नौ बजे से शनिवार दोपहर तक लगातार टेलिफोनो का जवाब देना पडता है या लाखो थके मिल मजदूरो के बीच सिर्फ जुलाई के पन्द्रह दिन ही अवकाश मिलता है।

अध्यापक बनने के जो तीन बडे फायदे हैं उनमे से पहला अवकाश है। दुर्भाग्यवश यह उनकी एक ऐसी सहूलियत है जिसका वे अक्सर दुरुपयोग करते हैं। लेकिन अभी हम बात को यही छोड़ दें। आगे चलकर हम इस पर विचार कर सकते हैं और कुछ हितकर

राय दे सकते हैं।

गरीबी अध्यापक की सबसे बडी कठिनाई होती है। चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, इस व्यावसाय मे उसे बहुत ही कम आमदनी होती है। वह अपने लिये दूसरे काम-धधो मे लगे हुए आदमियो की तरह कपडे नही बनवा सकता या उनकी तरह रह नही सकता। कभी-कभी तो उसकी तनख्वाह एक अनाडी मजदूर जितनी ही होती है। लेकिन इस धधे मे भी आगे चलकर कुछ बडे पुरस्कार हैं और एकाध जगह अच्छी आय भी होती है। फिर भी ससार भर में एक औसत अध्यापक को विनयपूर्ण गरीबी की ज़िन्दगी बितानी पडती है। कुछ देशो मे जहाँ पैसे को बहुत महत्त्व दिया जाता है और जहाँ उसी को सफलता का चिह्न समझा जाता है वहाँ इस तरह का त्याग सचमुच बडा महँगा है। कुछ देशो मे इस व्यवसाय मे जो आदर और सम्मान मिलता है उससे कुछ हद तक क्षति पूरी हो जाती है। लेकिन इसमे सदेह नही कि यह सदा दुखदायी होता है। जहाँ तक इस रोज़गार मे नौकरी की सुरक्षा का सवाल है वह तो पूरे तौर पर सुरक्षित है क्योकि वैसे लोग हमेशा मिलते रहेगे जो शिक्षा पाना चाहते हैं। लेकिन नौकरी की सुरक्षा के साथ-साथ इसमे जो गरीबी निहित है उससे झुँझलाहट पैदा होती है और कई ऐसे अध्यापक हैं जिनकी स्मृति हमे घृणा के साथ हो आती है क्योकि जो यद्यपि भले आदमी थे लेकिन वर्षों की चिन्ता और धन के अभाव के कारण जो बडे बद-दिमाग हो गये थे और ऐसी बातें करते थे जैसे काटने को दौडते हो।

अध्यापक को दूसरा लाभ यह होता है कि वह अपना दिमाग महत्त्वपूर्ण विषयो पर लगा सकता है। दुनिया मे लोग अपनी जिन्दगी को ऐसे कामो मे बिता देते हैं जो उसको सारा दिन व्यस्त रखता है या वे ऐसे व्यवसाय मे लगे रहते हैं जिसमे यद्यपि पैसे बहुत मिलते हैं लेकिन वह व्यवसाय बडा कठिन और बेकार होता है। कई आदमी, अभ्यास हो जाने पर सप्ताह में साढे पाँच दिन तक हिसाब जोडने वाली मशीन पर काम कर सकते हैं या किसी खास कम्पनी की सिगरैटो को दूसरे सिगरेटो से अधिक बिकाउ बनाने के लिये उतना समय भले ही विज्ञापन तैयार करने मे लगा दे लेकिन वे अपने लिये हरगिज़ उतना काम नही कर सकते। वह तो सिर्फ पैसो के लिये उतनी मेहनत बर्दाश्त कर लेता है। लेकिन अगर आप मानव शरीर की रचना या दो विश्वयुद्धो का इतिहास जैसे रोचक और महत्त्वपूर्ण विषय को जानते हैं तो दूसरो को वह विषय समझाने मे आपको सच्चा आनन्द मिलेगा, अपने दिमाग से उनसे सम्बद्ध कठिनाइयो पर सोचने और उन पर हर नयी पुस्तक का स्वागत् करने तथा पढाने के साथ-साथ स्वय भी पढने मे एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है।

इस बात का और पढाने मे जो तीसरा लाभ है उनका एक दूसरे से बडा नजदीकी लगाव है। यह वह खुशी है जो किसी नयी चीज को बनाने के बाद होती है। जब विद्यार्थी आपके पास आते हैं उस समय उनकी बुद्धि अपरिपक्व होती है, उनको बहुत-सी बातो की जानकारी नही होती, कई सन्दिग्ध धारणायें उनके दिमाग में होती हैं और वे बहुत अबोध

होते हैं। अगर आप उन्हे ठीक से पढाये तो आपका काम उनके दिमाग मे बहुत से तथ्यो को भर देने से ही पूरा नही हो जाता। यह काम ५०० सी सी का एक टीका या साल भर के लिए आवश्यक विटामिनो की मात्रा को एक ही सुई मे शरीर मे डाल देने की तरह नही किया जा सकता। आप एक ऐसे दिमग को ढालने का काम करते हैं जो सजीव है। कभी-कभी उस काम मे अवरोध भी पैदा होती है। हो सकता है कोई बच्चा हठी बन जाय और प्रत्यक्षत किसी तरह की बात सीखने को तैयार न हो। कभी-कभी बच्चा किसी बात को बडी आसानी से ग्रहण कर लेता है और धीरे-धीरे फिर उसे भूलने लगता है और बाद मे सब-कुछ पूर्णतया भूल जाता है। लेकिन अक्सर जैसे-जैसे आप उसे शिक्षित करते हैं वह दृढ बनता जाता है और जब आप उसे एक लायक आदमी बनाने मे योग देते हैं तो आपको अपूर्व आनन्द मिलता है। किसी बच्चे को छपे हुए अक्षरो मे सच और झूठ का बोध कराना उसमें कविता और देशभक्ति के अर्थ को समझने की चेतना पैदा करना और अपनी योग्यता और समझ से उसका आप ही पर वाक्य प्रहार करना आपको एक ऐसा सुख प्रदान करता है जो एक कलाकार अपनी तूलिका से रग भरकर किसी सादे पटल पर कोई नया चित्र बनाकर करता है या किसी डाक्टर को एक बीमार की सुधरती दशा पर होता है जो उसकी देख-रेख मे नये जीवन का स्पदन भरता है।

कुछ अध्यापको को शायद यह अनुभव होता ही नही और अगर होता है तो बहुत ही कम। इस तरह वे एक ऐसे लाभ से वचित रह जाते हैं जो पढाने मे मिलता है और अपनी गरीबी की तरह पढाने के काम को भी भाग्य का कठोर दण्ड समझने लगते हैं। उनकी यह शिकायत होती है कि लडके-लडकियाँ उनसे नफरत करते हैं और अक्सर वे भी उनसे घृणा करने लगते हैं। वर्षों बीत जाने पर उनकी यह नफरत सर्विज्ञ हो जाती है और उन दोनो के बीच ऐसी दीवार खडी कर देती है जो कभी भी नही हटती। मुझे याद आती है कि जब मैं आठ साल का था, उस समय मेरी क्लास मे फ्युरी नाम की एक लडकी थी जिसकी वहाँ बडी धाक थी। उसके क्लास मे घुसने से पहले ही हम लोग डर जाते थे। उस साल जो कुछ हमने वहाँ सीखा, उसमे निश्चय ही स्कूल, वडो और धौंस से नफरत करना शामिल था। साथ ही शारीरिक क्रूरता की भयकर शक्ति का मर्मस्पर्शी ज्ञान भी हुआ। दूसरी ओर अकेला अध्यापक सारी क्लास के बिगडे हुए लडको जितना शैतान नही हो सकता जो अनुशासनहीन हो और जो बेकाबू हो गये हो। उसी क्लास मे, कुछ वर्ष बाद मुझे याद है, कि मैंने एक ऐसा अध्यापक देखा जो स्वभाव से आक्रामक नही था। उसने युद्ध मे भाग लिया था और उसका रेकार्ड अच्छा था। लेकिन वह विद्यार्थियो को पढाते समय उनकी हरकतो से तग आकर क्रोध और क्षोभ के मारे उबल पडता था। मुझे यह भी याद है कि शहर के स्कूल मे एक अध्यापिका ने मुझे बताया था कि उसके क्लास के झगडालू लडको का एक दूसरे को चाकू मारना उसकी सबसे बडी समस्या थी।

यह स्वाभाविक ही है कि कोई विद्यार्थी अपने अध्यापक का विरोध करे। यह एक अच्छा लक्षण है और दोनो के लिये उत्साहवर्धक हो सकता है। कला की उत्तम कृतियाँ

कठिन माध्यमो से ही तैयार की जाती हैं। पत्थर को कोई आकार प्रदान करना मोम के आकार बनाने से कठिन होता है। फिर भी अगर अध्यापक और विद्यार्थियो मे तनाव निरन्तर चलता रहे और बढते-बढते विद्रोह का रूप धारण कर ले और अगर अध्यापक यह अनुभव करे कि हर साल वह तनातनी पूर्ववत बनी रहती है या उसमे थोडा ही फर्क है तो यह समझना चाहिये कि निश्चय ही मामले की तह मे गडबडी है। कई बार विद्यार्थियो की गलती होती है और कई बार अध्यापको की। कभी शिक्षक और शिष्य दोनो जिस समाज के होते हैं उसी समाज की जड मे खराबी होती है जिसका आभास उनके आपसी तनाव मे मिलता है। (इस विषय पर हम आगे विचार करेंगे जब हम अनुशासन का सवाल लेंगे)। चाहे इसका कारण कुछ भी हो लेकिन यह निश्चय है कि इससे अध्यापक की जाँच हो जाती है। इस व्यवसाय मे जो दो सबसे बुरे दोष होते हैं उनमे से एक यह है—निर्धन होना आदमी का अभिशाप है लेकिन अपने (अध्यापक) जीवन की सारी शक्ति को निरन्तर बच्चो की गहन शक्ति को उद्‌बुद्ध करने और उनमे सचमुच आवश्यक तथ्यो को समझने की क्षमता प्रदान करने मे लगा देना बडा कष्टदायी काम है। जो बच्चे स्वभाव से शैतान, हमेशा दाँत चिढाते और हँसते, जभाँई लेते और कुछ न कुछ बकते रहते हैं और जो शैतानो, फुटबाल के खिलाडियो और सिनेमा अभिनेताओ को अपना आदर्श मानते हैं। अध्यापको का यह काम ठीक उसी तरह का हैं जिस तरह कोई डाक्टर किसी रोगी के शरीर मे अपना रक्त डालकर उसके शरीर के रक्त का अभाव दूर करता है और यह देखता है कि वह रक्त नष्ट होकर धरती पर गिरकर धूल मे मिल जाता है।

कई परिस्थितियो मे यह अनुभव एक कुशल अध्यापक को भी हो सकता है। लेकिन जो अध्यापक अयोग्य हो उसे यह अनुभव होने की ज्यादा सभावना है। इसको किस तरह दूर किया जा सकता है ?

दूसरे शब्दो में हम इसी प्रश्न को यो पूछ सकते हैं कि एक कुशल अध्यापक के क्या गुण हैं ?

पढाने के लिये पहली और सबसे अहम बात यह है कि अध्यापक को विषय की जानकारी होनी चाहिये। वह क्या पढाता है उसे मालूम होना चाहिये। सुनने मे तो यह बात स्वाभाविक ही मालूम होती है लेकिन अक्सर इसे व्यवहार मे नही लाया जाता। इसका मतलब यह हुआ कि अगर अध्यापक रसायनशास्त्र पढाता है तो उसे रसायनशास्त्र की जानकारी होनी चाहिये। उसके लिए सिर्फ इतना ही जानना जरूरी नही कि स्कूल मे निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार और परीक्षा की दृष्टि से रसायनशास्त्र के कौन-कौन अश पढाये जाते हैं या पढाये जाने चाहियें बल्कि उसे विषय की सच्ची जानकारी होनी चाहिये। उसे विषय की गहरी बातो को कम से कम मोटे तौर पर जानना चाहिये और उसे मालूम होना चाहिये कि हर साल क्या-क्या नये आविष्कार उसमे हो रहे हैं। अगर कोई विद्यार्थी रसायनशास्त्र के प्रति अभिरुचि दिखाये तो अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह उसे प्रोत्साहन दे। उसे यह

बताये कि यूनिवर्सिटी मे वह क्या सीख सकता है, युद्ध और शान्ति काल मे किस तरह का रसायनशास्त्र जरूरी होता है, कौन-कौन सी समस्याएँ अभी तक सुलझाई नही जा सकी हैं और (यह जानना बडा जरूरी है) किस तरह पुराने और वर्तमान समय मे वैज्ञानिक रहते और काम करते थे या अब करते हैं।

इस तरह पढाने का काम स्वय सीखने के काम से अलग नही किया जा सकता। प्रत्येक अच्छा अध्यापक अपने विषय के बारे मे हर साल, हर महीने और हर सप्ताह अगर सम्भव हो सका तो कुछ न कुछ सीखेगा। अगर कोई लडकी फ्रेंच भाषा पढाना ही अपना पेशा बनाना चाहती है तो उस भाषा के व्याकरण और पाठ याद कर चुकने के बाद उसके लिए उस विषय को छोडकर कोई दूसरा विषय चुन लेना मुनासिब नही होगा। उसे अपने जीवन का कुछ भाग फ्रेंच भाषा, फ्राँस के सुन्दर साहित्य, वहाँ के इतिहास, वहाँ की कला और सभ्यता के अध्ययन मे लगा देना चाहिये। उस भाषा की एक कुशल अध्यापिका बनने के लिए वह अपना पुस्तकालय बनायेगी जिसमे (मान लिजिये) एक वर्ष बालजाक की रचनायें पढेगी, बाद मे प्राउस्ट, उसके बाद मोलिये और उसके बाद गिरादो, कोक्टो, रोमें और दूसरे आधुनिक कहानीकारो की रचनायें पढेगी। अगर वह कुछ धन जमा कर सकी तो फ्राँस की यात्रा करेगी। लेकिन उसकी वर्तमान आय को देखते हुए ऐसा नामुमकिन है। हो सकता है कि वह किसी फ्रेंच यूनिवर्सिटी मे ग्रीष्मकालीन पाठचक्रम (Course) शुरू कर देगी। निश्चय ही वह वहाँ जितने फ्रेंच फिलम देख सके देखेगी और रैमु (Raimo) जिस तरह फ्रेंच का उचारण करती है उसमे आनन्द लेगी। अभिनेता फर्नेन्डेल (Fernandel) की हास्यपूर्ण बातें उसे भायेंगी। और वह ऐसा करे भी क्यो नही ? वह फ्राँस मे कोई बहुत ही कठिन या आत्म-निर्माण जैसा गम्भीर काम करने तो गयी नही वह वहाँ रहने गयी है और जहाँ निवास हो वहाँ खुशी और रगीनियाँ न हो यह कैसे हो सकता है। उसे बोयर (Boyer) और ट्रेनेट (Trenet) के रेकार्ड क्यो न भावें लेकिन हँसी खुशी के साथ-साथ पढाई भी होनी चाहिये। इससे शिक्षा और भी भली लगती है।

आप पूछ सकते हैं कि यह क्यो आवश्यक है ? क्यो न एक अध्यापक किसी विषय की मूल आरभिक जानकारी कर ले और उसी को अच्छी तरह याद कर आगे न पढे ? एक डाकिया शहर की हर सडक और गली का नाम नही याद करता। वह तो सिर्फ अपने इलाके की ही जानकारी रखता है। फ्राँस के किसी छोटे से कस्बे मे पढाने वाले अध्यापक के पास शायद ही कोई ऐसा विद्यार्थी आये जो कभी प्रसिद्ध लेखक प्राउस्ट की रचनाएँ समझ सके। प्राउस्ट के उपन्यासो को वह क्यो पढे ? स्कूल मे प्रारभिक रसायनशास्त्र पढाने वाला अध्यापक अपने को उसके आधुनिकतम खोजो से क्यो अवगत रक्खे ? रसायन-शास्त्र मे तो तत्त्वो की सख्या सीमित है और वे बदलते भी नही। फिर ऐसा क्यो किया जाय ?

इस प्रश्न के दो उत्तर हैं, पहला तो यह है कि कोई आदमी किसी महत्त्वपूर्ण विषय मे आगे की जानकारी के बिना उस विषय की प्रारभिक बातो को नही समझ सकता। कम-

से-कम पढाने के लिये जो जानकारी होनी ज़रूरी है वह तो नही हो सकती। हर रोज़ वडी-वडी खेदजनक गलतियाँ न केवल अध्यापको से होती हैं वल्कि पत्रकारो, रेडियो प्रसारण के अधिकारियो जैसे लोगो से भी हो जाती हैं जिनका जनता से सम्पर्क होता है। इस भूल का कारण यह है कि वे उन वातो को विश्वास के साथ कहते हैं जिनको उन्होने किसी शव्द-कोष मे पढा था और जो गलत थी, या फिर किसी गलत वात को उन्होने किसी विशेषज्ञ के मुँह से कभी सुनी थी जिसके वे प्रशसक हैं और जिनके अपरिपक्व विचारो को उन्होने तथ्य ही समझ लिया था। कई अध्यापक अपने ही विषय के किसी तथ्य को समझाते समय अपने किसी मित्र अध्यापक द्वारा की गयी उस विषय की व्याख्या के पचडे मे पड जाते हैं या उनके विचारो की वैसी कल्पना में अपने को वहा देते हैं जो विचार न केवल पूर्णतया गलत हैं वल्कि जिसको उन्होने स्वय ही ठीक कर लिया होता, अगर इनको इस विषय का विस्तृत ज्ञान होता।

दूसरा जवाब यह है कि आदमी के मस्तिष्क मे ज्ञान सचित करने की अपूर्व क्षमता है। हमें मालूम है कि एक शिशु को जीवित रखने के लिए कम से कम कितनी खुराक की आवश्यकता होगी। हमे यह भी मालूम है कि ज्यादा से ज्यादा कितनी मात्रा मे हम भोजन खा सकते हैं। लेकिन किसी को न तो यह मालूम है और न वह अनुमान ही लगा सकता है कि एक शिशु को कितनी मात्रा में ज्ञान की आवश्यकता होगी। साथ ही यह भी नही मालूम कि अगर उसे सही ढग से शिक्षा दी गयी तो क्या वह उसे ग्रहण कर लेगा ? अत किसी वच्चे को किसी विषय के प्राथमिक बातो की भी शिक्षा देना उपयुक्त नही जव अध्यापक मे इतनी योग्यता न हो कि वह वच्चे द्वारा पूछे गये उस विपय पर वडी और भीतरी गहराई की बातो से सबद्ध सवलो के जवाव देने की क्षमता न हो। और एक अध्यापक के दृष्टिकोण से ऐसा करना बडा कठिन होता है। उसे ज़वानी भले ही याद कर लिया जाय लेकिन रचनात्मक दृष्टि से उसे शायद ही समझा जाता है और उसके प्रति कभी अभिरुचि पैंदा नही होती। यदि कोई ऐसा विपय हो जिसको पढने से दिमाग कल्पना की ऐसी उडानें भरने लगे जिसकी कोई सीमा नही और अगर उस विषय को पढाने वाला अच्छे ढग से उन्हे पढाता जाय तो वे विद्यार्थी उस विषय के प्राथमिक महत्त्व की बातें जानने के लिए उत्सुक हो जायेंगे और स्वय उसमे आगे बढते चले जायेंगे।

युवक बूढो से घृणा करते हैं। इसके कई कारण हैं। इनमे से एक तो यह है कि वे यह अनुभव करते हैं कि बडो के विचार सीमित और जकडे हुए होते हैं। जब कभी वे किसी वैसे स्त्री या पुरुष से मिलते हैं जो ऐसी बातें नही करते जिसकी उन्हे आशा होती है और उनको दुनिया के अद्‌भुत् रूप की अनोखी कहानियाँ सुनाते हैं, वे जीवन की वैसी बातो पर ज्यादा प्रकाश डालते हैं जिसको बच्चे साधारण और नीरस समझते हैं, और जिन स्त्री पुरुषो को वे यह समझते हैं कि वे भी ठीक उन्ही की तरह सजीव, सचेत, सबल और रुचि रखते हैं तो वे वैसे स्त्री या पुरुष की प्रशसा करते हैं।

यह ठीक है कि हम अध्यापको में सारा दिन उतनी स्फूर्ति और उतना बल नही हो

सकता। फिर भी अगर हम एक अध्यापक हैं तो हम मे यह क्षमता जरूर होनी चाहिए। हम अपने विषय के प्रति इतने उत्सुक हो कि उनके साधारण तथ्यो को उन विद्यार्थियो को रोचक ढँग से समझा सकें। उनको यदि ये बातें बतायी न गयी तो सभव है उस विषय के प्रति उनकी अभिरुचि खत्म हो जाती है या फिर भी जानने की इच्छा रहने पर उन्हे निराश होना पडता है।

बेढगी पढाई का एक मूल कारण इस सिद्धान्त का बहिष्कार है जिसकी वजह से विद्यार्थी स्कूलो और विश्वविद्यालयो से घृणा करने लगते हैं और जिसके फलस्वरूप वे ज्ञान के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो से वचित रह जाते हैं। मैंने अपने जीवन मे इसका सबसे उत्तम उदाहरण अपने ही एक मित्र मे पाया जो एक बडी विश्वविद्यालय मे पढाते थे। एक दर्मयाने उम्र का आदमी एक बार उनके पास गया और उनसे बोला, "मे वुडसाइड स्कूल मे फ्रेंच पढाता हूँ और मे चाहता हूँ कि उस भाषा की अपनी जानकारी को दुहराने के लिए यहाँ दाखिल हो जाऊँ।" मेरे मित्र ने जवाब मे उससे पूछा, "बात तो ठीक है लेकिन आप छोटी जमात को पढाते हैं या बडी को ?" उस अध्यापक ने जवाब दिया, "नही मैं तो सिर्फ पहली दो जमातो को ही पढाता हूँ। उसके आगे तो मैंने कभी पढाया ही नही।" मेरे मित्र ने फिर कहा, "ठीक है मेरे यहाँ भी सोबो (Sorbonne) से एक सज्जन आये हैं। मान लीजिये अगर आपको यह काम दिया जाय कि आप उन्हे ला फोते (La Fountaine) और मोलिए (Molıe're) की रचनाएँ पढाने को दी जायँ तो क्या आपसे यह सम्भव हो सकेगा ?" वह अध्यापक उलझन मे पड गया और चुप रहा।

मेरे मित्र ने पूछा, "आप तो ला फोते (La Fountaıne) को तो जानते ही होगे जिसने बडी सुन्दर हितोपदेशक बाल-कथाएँ लिखी हैं। और मोलिए (Molıe're) के उपन्यास "दी माइजर (The Mıser) और दी स्कूल फॉर वाइवस (The School for Wıves) भी तो आपने जरूर ही पढे होगे। इन सुखान्त उपन्यासो को जितनी बार आप पढें उतना ही रस मिलता है।"

वह अध्यापक फिर भी कुछ न बोला। थोड़ी देर बाद उसने कहा, "नही महाशय, मुझे उतना सारा नही पढना है। मैं तो केवल फ्रेंच भाषा के प्रारम्भिक कोर्स को दुहराना चाहता हूँ।"

मेरे मित्र ने जवाब दिया, "लेकिन यह सब तो आपको पहले से ही मालूम है। ये सब तो पुस्तक मे भी मिल जायेगा। व्याकरण के सौ पन्ने और शब्दो के अर्थ तो आपको जरूर ही कठस्त होगे। वास्तव मे पढने-पढाने का मकसद यह है कि लडके आगे चलकर अच्छी पुस्तकें पढ सकें। ला फोते की हितोपदेशक कथायें वे साथ-साथ पढ सकते हैं। अगर आप सारेट्सस का कोर्स (Sarresat's Course) पढें तो आपको ला फोते के रोचक और व्यगपूर्ण रचनाओ की जानकारी होगी, उनकी कलापूर्ण भाषा, और पैनी बुद्धि से आपका परिचय होगा। आपको उपयोगी तथ्य भी मिलेंगे जिनका प्रयोग आप पढाते समय कर सकते हैं।"

"हूँ।"

और मेरे मित्र ने जोश से कहा, "वे विद्यार्थी भी मोलिए के प्रति अभिरुचि दिखाने लगेंगे। शायद उनकी रचनाएँ प्रारम्भिक कक्षाओ के विद्यार्थियो को समझने मे कठिनाई होती है लेकिन आप उन बच्चो को मोलिए के विषय मे बता सकते हैं, उनके सबसे बढिया कहानी के प्लाट के बारे मे उनको जानकारी दिला सकते हैं, एकाध दृश्य से उनका परिचय करा सकते हैं जहाँ हार्पेगन (Harpagon) को यह मालूम होता है कि उसे लूट लिया गया है और अपने को गिरफ्तार करने की कोशिश करता है और स्वभाषण करता हुआ कहता है, "Rends-moi mon argent, coquin ! Ah c'est moi !" आपको याद है न। वह कितना सुन्दर दृश्य है। उससे उनको पूरे नाटक को पढने की प्रेरणा मिलेगी।"

फिर उस मेहमान ने चलने के लिए अपनी टोपी उठाते हुए कहा, "नही महाशय, मुझे तो सिर्फ छोटी जमात मे फ्रेंच पढाने की तनख्वाह मिलती है। मुझे उतना आगे पढने में तो कोई लाभ नही दिखाई देता। शायद मैं कभी और कही भी इसका उपयोग न कर सकूँगा।"

"लेकिन अगर यह पढाने के काम मे आपके लिए उपयोगी न हुआ तो कम से कम आप स्वय तो उसके आनन्द का अवश्य ही अनुभव करेंगे। क्या आपको मोलिए की रचनाएँ नही अच्छी लगती ?" मेरे मित्र ने फिर पूछा।

उस लम्बे आदमी ने सिर हिलाकर कहा, "नही, मैं न तो कभी उनकी रचनाएँ पढाता हूँ और न पढाऊँगा। सच पूछिये तो मुझे फ्रेंच भाषा ही अच्छी नही लगती। मुझे तो केवल गेंद अच्छा लगता है। वुडसाइड मे हम लोगो की एक अच्छी फुटबाल टीम भी है।"

मेरे मित्र ने वहाँ एक गलती की जब उन्होने उस सज्जन से यह कहा, "तो फिर आप फ्रेंच भाषा पढाने का काम छोडकर फुटबाल सिखाने का काम क्यो नही करते ?"

उस आदमी ने जाते हुए कहा, "मैं तो यहाँ फ्रेंच भाषा की प्राथमिक शिक्षा के लिये आया था। अगर उस मामले मे मेरी सहायता नही कर सकते तो मैं वही करूँगा। अच्छा नमस्ते।"

हमने फिर कभी उस सज्जन को नही देखा। फिर भी यह अनुमान लगाना ठीक नही कि उन्होने ला फोते या मोलिए की रचनाएँ नही पढी। शिक्षा मे सबसे अच्छी और आश्चर्य की बात यह है कि इससे जो ज्ञान मिलता है वह ठीक वैसा ही मालूम होता है जैसे कि किसी बजर धरती मे बीज बोये जायें और फिर भी वे बीज उगें, उनकी जड धीरे-धीरे फैले और जैसे-जैसे दिन बीतते जायें वे बडे हो। कभी-कभी वे पौधे बडे घने हो जाते हैं और दूसरे पौधो के सयोग से बडे बेढगे बन जाते हैं। फिर भी उनके जीवन मे तारतम्य बना रहता है। सम्भव है कि वर्षों बाद वुडसाइड के उस व्यक्ति ने जीवन का उद्देश्य समझा और मेरे मित्र की बातो को याद कर अपने विषय मे सच्ची दिलचस्पी ली। उसने शायद किसी दूसरी यूनिवर्सिटी में जाकर ला फोते और मोलिए के बारे मे जानकारी

हासिल करना शुरू किया होगा। सम्भव है अब उसने ला फोते की कृति "दी माइज़र" को स्वय अनूदित किया हो और स्वय एक निर्माता और नाटच प्रबन्धक बनकर वुडसाइड में उस नाटक का प्रदर्शन करता हो।

यह भी हो सकता है कि उसने ऐसा न किया हो। अगर उसने ऐसा नही किया है तो वह भी उन लाखो लोगो मे एक है जो जिस व्यवसाय में अपनी सारी जिन्दगी गुज़ार देते हैं उसी से घृणा करते हैं। वे लोग कम से कम काम करते हैं और कभी उतना भी नही। मुझे इसका अनुभव स्काटलैण्ड में हुआ। वहाँ की गाने-बजाने के साज़ सामान की दूकानो में काउन्टर पर काम करने वाली लडकी से अगर आप फ्रेड्रिक चौपिन (Fre'de'ric chopin) या होगी कार्मिकेल (Hoagy Carmichael) के रिकार्ड मांगे, जिसका नाम उस लडकी ने कभी पहले सुना न हो तो उसे यह नही मालूम होता कि वे रेकार्ड कहाँ हैं और यह उस दुकान के मालिक के आने तक इन्तजार करेगी क्योकि उसी को इसका पता होता है। अगर वही लडकी रेशमी मोजे (जुराबें) वेचने का काम करती तो शायद उसे विभिन्न किस्म के रेशम भी मोजो के रग के फर्क की भी पूरी जानकारी होती। लेकिन वह तो बेमन से व्यवसाय कर रही थी। फिर उसे इस बात की चिंता ही क्यो होती ?

इससे मुझे सगीतज्ञ टोस्कानीनी (Toscanini) और उसके पहले वायलिन वादक की कथा याद आ जाती है। एक बार टोस्कानीनी किसी नये नगर मे पहुँचे और एक ऐसे आर्केस्ट्रा (Orchestra) का निर्देशन किया जो उसने पहले कभी नही किया। उसने उसका आरम्भ किसी साधारण राग से ही किया। एक दो मिनट के वाद उसे अनुभव हुआ कि उसकी पहले वायलिन वादक की वायलिन भद्दी तरह से बज रही है। वह उसे बजा तो ठीक रहा था लेकिन उसका चेहरा ऐंठा-सा लग रहा था। जब उसने नये राग को शुरू करने के लिए नया पन्ना उलटा तो उसका चेहरा ऐसा दीखने लगा जैसे वह बडे कष्ट का अनुभव कर रह हो। आर्केस्ट्रा रोकते हुए टोस्कानीनी ने उससे कहा, "कन्सर्ट (Consert) मास्टर, क्या तुम बीमार हो ?"

वायलिन बजाने वाले का चेहरा तुरन्त सामान्य स्थिति मे आ गया और वह बोला, "नही धन्यवाद, मैं बिलकुल ठीक हूँ महाशय, आप चलते जायें।"

"ठीक है, अगर आप यह समझते हैं कि आप बिलकुल ठीक हैं तो इस जगह से फिर वजाना शुरू करें।" लेकिन फिर वे रुक गये। दूसरी बार टोस्कानीनी ने वायलिन वादक की ओर देखा और उसने उसकी हालत पहले से ज्यादा खराब पायी। उसका मुँह एक तरफ मुडा जा रहा था। उसकी दातें उसकी लोमडी जैसी होठो के बीच दिखाई पड रही थी, उसका भौंहे इस तरह अलग-अलग हो रही थी जिस तरह खेत मे हल चलाने के बाद मिट्टी अलग-अलग हो जाती है। उसका सारा वदन पसीने से तर हो रहा था और वह ज़ोर-ज़ोर से साँस ले रहा था।

यह देखकर टोस्कानीनी ने उससे कहा, "क्यो कौन्सर्ट मास्टर, आप तो बीमार मालूम

"हूँ।"

और मेरे मित्र ने जोश से कहा, "वे विद्यार्थी भी मोलिए के प्रति अभिरुचि दिखाने लगेंगे। शायद उनकी रचनाएँ प्रारम्भिक कक्षाओ के विद्यार्थियो को समझने मे कठिनाई होती है लेकिन आप उन बच्चो को मोलिए के विषय मे बता सकते हैं, उनके सबसे बढिया कहानी के प्लाट के बारे मे उनको जानकारी दिला सकते हैं, एकाध दृश्य से उनका परिचय करा सकते हैं जहाँ हार्पेगन (Harpagon) को यह मालूम होता है कि उसे लूट लिया गया है और अपने को गिरफ्तार करने की कोशिश करता है और स्वभापण करता हुआ कहता है, "Rends-moı mon argent, coquıu ! Ah c'est moı !" आपको याद है न। वह कितना सुन्दर दृश्य है। उससे उनको पूरे नाटक को पढने की प्रेरणा मिलेगी।"

फिर उस मेहमान ने चलने के लिए अपनी टोपी उठाते हुए कहा, "नही महाशय, मुझे तो सिर्फ छोटी जमात मे फ्रेंच पढाने की तनख्वाह मिलती है। मुझे उतना आगे पढने में तो कोई लाभ नही दिखाई देता। शायद मैं कभी और कही भी इसका उपयोग न कर सकूँगा।"

"लेकिन अगर यह पढाने के काम मे आपके लिए उपयोगी न हुआ तो कम से कम आप स्वय तो उसके आनन्द का अवश्य ही अनुभव करेंगे। क्या आपको मोलिए की रचनाएँ नही अच्छी लगती ?" मेरे मित्र ने फिर पूछा।

उस लम्बे आदमी ने सिर हिलाकर कहा, "नही, मैं न तो कभी उनकी रचनाएँ पढाता हूँ और न पढाऊँगा। सच पूछिये तो मुझे फ्रेंच भाषा ही अच्छी नही लगती। मुझे तो केवल गेंद अच्छा लगता है। वुडसाइड में हम लोगो की एक अच्छी फुटबाल टीम भी है।"

मेरे मित्र ने वहाँ एक गलती की जब उन्होने उस सज्जन से यह कहा, "तो फिर आप फ्रेंच भाषा पढाने का काम छोडकर फुटबाल सिखाने का काम क्यो नही करते ?"

उस आदमी ने जाते हुए कहा, "मैं तो यहाँ फ्रेंच भाषा की प्राथमिक शिक्षा के लिये आया था। अगर उस मामले मे मेरी सहायता नही कर सकते तो मैं वही करूँगा। अच्छा नमस्ते।"

हमने फिर कभी उस सज्जन को नही देखा। फिर भी यह अनुमान लगाना ठीक नही कि उन्होने ला फोते या मोलिए की रचनाएँ नही पढी। शिक्षा मे सबसे अच्छी और आश्चर्य की बात यह है कि इससे जो ज्ञान मिलता है वह ठीक वैसा ही मालूम होता है जैसे कि किसी बजर धरती मे बीज बोये जायें और फिर भी वे बीज उगें, उनकी जड धीरे-धीरे फैले और जैसे-जैसे दिन बीतते जायें वे बडे हो। कभी-कभी वे पौधे बडे घने हो जाते हैं और दूसरे पौधो के सयोग से बडे बेढगे बन जाते हैं। फिर भी उनके जीवन मे तारतम्य बना रहता है। सम्भव है कि वर्षों बाद वुडसाइड के उस व्यक्ति ने जीवन का उद्देश्य समझा और मेरे मित्र की बातो को याद कर अपने विषय मे सच्ची दिलचस्पी ली। उसने शायद किसी दूसरी यूनिवर्सिटी मे जाकर ला फोते और मोलिए के बारे मे जानकारी

चाहे उनका यह चाव नकली हो या स्वाभाविक, तो यह बात यहाँ ज्यादा महत्त्व नही रखती। इस समय तक तो वह चाव बिलकुल वास्तविक है। इसका परिणाम यह है कि वे एक स्टाको के कुशल दलाल हैं। उनकी इस चाव से उनको दिन पर दिन अनुभव बढता है, उनका यह अनुभव उनके परखने और निर्णय करने की अधिकाधिक योग्यता प्रदान करता है और वे न केवल एक सफल व्यक्ति हैं बल्कि वे खुश भी हैं।

मान लीजिये वह एक ऐसे युवक से मिलता है जिसने इस उद्देश्य से व्यापार करना शुरू किया हो कि आगे चलकर वह भी दलाल बनेगा और वह यह देखता है कि उस युवक को न तो इस बात की जानकारी ही है और न वह उसे जानना चाहता है कि आँग्ल इरानियन ऑयल कम्पनी अपना मुनाफा बढा रही है तो वह उसे सलाह देगा कि स्टाक एक्सचेंज को छोडकर वह युवक कोई और धधा पकडे। उसी तरह अगर एक लडकी (विवाह होने तक) इतिहास पढाकर अपनी रोज़ी कमाना चाहे और वह थोडा बहुत भी अगर यह न जाने कि राजनीति क्या है, जीवन कथा क्या होती है, दूसरे जमानो में लोगो की प्रवृत्ति और उनके आचरण कैसे होते थे या वर्साइलस की सधि और क्रुसेड्स जैसी महत्त्वपूर्ण घटनाओ पर विभिन्न विचार और टीकाएँ क्या हैं तो उसके लिए इतिहास पढाना व्यर्थ है। अगर वही विषय वह पढाती है तो उसको वह गलत ढग से पढाना शुरू करेगी और आगे चलकर उसका पढाने का स्तर गिरता चला जायेगा क्योकि उस विषय से उसकी नफरत दिन पर दिन बढती ही चली जायेगी। फलत, वह एक ऐसे घोडे की तरह हो जायेगी जो अनाज पीसने वाली चक्की मे जुता हो और जो बिना किसी आशा के निरन्तर उस चक्की के चारो ओर चक्कर काटता रहता है।

यह ठीक है कि लगभग सभी अध्यापक अपने विषय के कुछ अश से नफरत करते हैं। इतिहास के कई अच्छे अध्यापक मध्य युग के शुरू का भाग छोड देते हैं या उन अर्थ सम्बन्धी आँकडो के सकलन की ओर ध्यान नही देते जिसमें अलग-अलग समय मे किरायो, कीमतो और मजदूरी की दरो का पारस्परिक सम्बन्ध दिखाया गया है। लेकिन तब वह अध्यापक (स्त्री या पुरुष) उस अभाव को स्वीकार करता है और उस विषय के सम्बन्धित भागो की आवश्यक बातो को सीखता है। अब क्योकि वह यह अनुभव करता है कि उस विषय की उपेक्षा करने का वह अपराधी है। इसलिए उस विषय के दूसरे रुचिकर भागो में वह पूरी तरह जुट जाता है। लेकिन सम्पूर्ण विषय को नापसन्द करना, इतिहास का अध्यापक होते हुए इतिहास पढाने मे नीरसता अनुभव करना, पढाना तो फ्रेंच लेकिन कभी घर पर फ्रेंच की पुस्तक न पढने से निश्चय ही वह विषय या तो हमेशा उसके लिये दुख का कारण बनेगा या उसे मृतप्राय ही बना देगा। जरा सोचिये, आपको कितना आश्चर्य होगा अगर आपका डाक्टर आपसे यह कहे कि व्यक्तिगत रूप से उसे रोगी के उपचार की कला के सम्बन्ध मे कुछ भी सीखने की चिंता नही रहती, वह कभी कोई आरोग्य सम्बन्धी पत्र नही पढता और उसे साधारण रोगो के इलाज के नये तरीको का पता नही है। अगर वह आप से यह कहे कि अपनी रोज़ी कमाने के अलावा इस बात की

पड रहे हैं। क्या आप घर जाना चाहते हैं ?"

"नही-नही आप चलते जायें।" उसने उत्तर दिया। "लेकिन मैं चाहता हूँ कि आप आराम करे। आपको क्या हो गया है ? क्या आपको कोई दौरा आ रहा है ? थोडी देर लेटना आप पसद करेंगे ?"

"नही, मैं बीमार नही हूँ !" उस वादक ने उत्तर दिया।

"लेकिन फिर कोई वजह तो जरूर है। आप तो बिलकुल भयभीत मालूम पडते हैं, आप हर वक्त तो चेहरा ऐसा बनाये रहते हैं जैसे आप बडे कष्ट मे हो और निश्चय ही आपको कोई दुख है · ·· ।"

"अगर आप सच पूछते हैं तो मुझे गाने-बजाने से ही नफरत है।" उसने जवाब दिया।

देखिये तो यह कितनी हास्यास्पद बात है। क्या यह बात नही है ? लेकिन ससार भर मे ऐसे लाखो लोग हैं जो हर रोज ऐसा करते हैं। उनको वह काम करना पडता है जिससे वे नफरत करते हैं। वे बडी अनिच्छा और अयोग्यता से अपना काम करते हैं। वे अपने काम को अपने ही लिए नही दूसरो के लिए भी अत्यन्त कठिन बना देते हैं। कभी-कभी इससे कोई फर्क नही पडता। अगर गाने के साज-सामान की दुकान मे उस लडकी को किसी के गाये हुए गाने का रेकार्ड नही मिलता तो कोई ग्राहक उस दुकान के मालिक के आने तक ठहर सकता है या सीधे रेकार्ड बनाने वालो को लिखकर उसे मगा सकता है। लेकिन एक अध्यापक के लिए तो यह बडा ही जरूरी है जिसका काम बच्चो के दिमाग मे किसी महत्त्वपूर्ण विषय के प्रति अभिरुचि पैदा करना है। ज़रा सोचिये, अपने विद्यार्थियो को अपनी हर चेष्टा, अपने हर स्वर और शब्द से यदि अध्यापक उन्हे यह दिखाये कि जिस विषय को बच्चे पढते हैं वे पढने योग्य नही है और पढाई करना समय व्यर्थ गवाने के सिवा और कुछ नही, कितना भयानक होगा। (याद रक्खें बच्चे ऐसी बातें बडी जल्दी सीख लेते हैं और उसकी तरफ बडी चेतना होती है)।

इसलिये अध्यापक के लिये पहली जरूरी बात यह है कि उसको अपने विषय का ज्ञान होना चाहिये। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि पढाने के साथ-साथ उसे स्वय भी अपनी जानकारी बढानी चाहिये।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उस विषय के प्रति उसकी अभिरुचि होनी चाहिये। ये दोनो बातें एक दूसरे से सम्बद्ध होती हैं क्योकि किसी विषय के प्रति स्वाभाविक अभिरुचि का अनुभव किये बिना उसको कई साल तक लगातार सिखाते जाना असम्भव है। मेरे एक मित्र हैं जो दलाली का काम करते हैं। वे हर साल पूँजीगत विषयो की जानकरी बढाते हैं। वे पिछले १९२२ तक के ४० महत्त्वपूर्ण स्टाको के चढाव और उतार के भाव आपको ज़बानी सुना सकते हैं। उन स्टाको के सभी डायरेक्टरो के नाम तक उसे याद हैं। अगर मैं इतना याद करूँ तो मर ही जाऊँ। हाँ, मैं भी इसे कर सकता हूँ लेकिन तभी जब अथक परिश्रम करूँ। जब वह फ्रास मे होते हैं तब वहाँ के सामाचार पत्रो में व्यापार सम्बन्धी समाचार बडे चाव से और उत्सुकता से पढते हैं यद्यपि यूरोपियन स्टाक का व्यापार वे नही करते,

चाहे उनका यह चाव नकली हो या स्वाभाविक, तो यह बात यहाँ ज्यादा महत्त्व नही रखती। इस समय तक तो वह चाव बिलकुल वास्तविक है। इसका परिणाम यह है कि वे एक स्टाको के कुशल दलाल हैं। उनकी इस चाव से उनको दिन पर दिन अनुभव बढता है, उनका यह अनुभव उनके परखने और निर्णय करने की अधिकाधिक योग्यता प्रदान करता है और वे न केवल एक सफल व्यक्ति हैं बल्कि वे खुश भी हैं।

मान लीजिये वह एक ऐसे युवक से मिलता है जिसने इस उद्देश्य से व्यापार करना शुरू किया हो कि आगे चलकर वह भी दलाल बनेगा और वह यह देखता है कि उस युवक को न तो इस बात की जानकारी ही है और न वह उसे जानना चाहता है कि आँग्ल इरानियन ऑयल कम्पनी अपना मुनाफा बढा रही है तो वह उसे सलाह देगा कि स्टाक एक्सचेंज को छोडकर वह युवक कोई और धधा पकडे। उसी तरह अगर एक लडकी (विवाह होने तक) इतिहास पढाकर अपनी रोजी कमाना चाहे और वह थोडा बहुत भी अगर यह न जाने कि राजनीति क्या है, जीवन कथा क्या होती है, दूसरे जमानो मे लोगो की प्रवृत्ति और उनके आचरण कैसे होते थे या वर्साइलस की सधि और क्रुसेड्स जैसी महत्त्वपूर्ण घटनाओ पर विभिन्न विचार और टीकाएँ क्या हैं तो उसके लिए इतिहास पढाना व्यर्थ है। अगर वही विषय वह पढाती है तो उसको वह गलत ढग से पढाना शुरू करेगी और आगे चलकर उसका पढाने का स्तर गिरता चला जायेगा क्योकि उस विषय से उसकी नफरत दिन पर दिन बढती ही चली जायेगी। फलत, वह एक ऐसे घोडे की तरह हो जायेगी जो अनाज पीसने वाली चक्की मे जुता हो और जो बिना किसी आशा के निरन्तर उस चक्की के चारो ओर चक्कर काटता रहता है।

यह ठीक है कि लगभग सभी अध्यापक अपने विषय के कुछ अश से नफरत करते हैं। इतिहास के कई अच्छे अध्यापक मध्य युग के शुरू का भाग छोड देते हैं या उन अर्थ सम्बन्धी आँकडो के सकलन की ओर ध्यान नही देते जिसमें अलग-अलग समय मे किरायो, कीमतो और मजदूरी की दरो का पारस्परिक सम्बन्ध दिखाया गया है। लेकिन तब वह अध्यापक (स्त्री या पुरुष) उस अभाव को स्वीकार करता है और उस विषय के सम्बन्धित भागो की आवश्यक बातो को सीखता है। अब क्योकि वह यह अनुभव करता है कि उस विषय की उपेक्षा करने का वह अपराधी है। इसलिए उस विषय के दूसरे रुचिकर भागो मे वह पूरी तरह जुट जाता है। लेकिन सम्पूर्ण विषय को नापसन्द करना, इतिहास का अध्यापक होते हुए इतिहास पढाने मे नीरसता अनुभव करना, पढाना तो फ्रेंच लेकिन कभी घर पर फ्रेंच की पुस्तक न पढने से निश्चय ही वह विषय या तो हमेशा उसके लिये दुख का कारण बनेगा या उसे मृतप्राय ही बना देगा। जरा सोचिये, आपको कितना आश्चर्य होगा अगर आपका डाक्टर आपसे यह कहे कि व्यक्तिगत रूप से उसे रोगी के उपचार की कला के सम्बन्ध मे कुछ भी सीखने की चिंता नही रहती, वह कभी कोई आरोग्य सम्बन्धी पत्र नही पढता और उसे साधारण रोगो के इलाज के नये तरीकों का पता नही है। अगर वह आप से यह कहे कि अपनी रोज़ी कमाने के अलावा इस बात की

बिलकुल चिंता नही करता कि उसका मरीज अच्छा है या बीमार और यह बताये कि वास्तव मे उसे पर्वतारोहण पसद हैं तो शायद आप उस डाक्टर से इलाज नही करायेंगे। लेकिन विद्यार्थी अपने अध्यापक को नही बदल सकते। कम से कम उस अवस्था तक तो बिलकुल ही नही जब तक वे किसी यूनिवर्सिटी मे नही पहुँच जाते और हो सकता है उस समय भी वे ऐसा न कर सके। कभी-कभी विद्यार्थियो को दिमाग के इन डाक्टरो (अध्यापको) पर अपने को इलाज के लिये छोड देना पडता हे जो अपने रोगियो को निकम्मा समझते हैं और यह भी समझते हैं कि उनका इलाज करना बेकार है। इसमे आश्चर्य नही कि वे शिक्षा मे अक्सर विश्वास नही करते।

बच्चे बडो को इसलिये नही पसन्द करते क्योकि वे उनके दिलोदिमाग जकडे होते हैं, बल्कि वे उनसे नफरत इसलिए भी करते हैं क्योंकि बडे अविश्वासी होते हैं। बच्चे बडे सीधे होते हैं। वे टेढी बात करना नही जानते और वे बडे निर्मल होते हैं। आपको पाखडी लडका या लडकी शायद ही मिले। वे या तो दुष्ट होगे या आध्यात्मिक दृष्टि से कुठित। वे यह जानते हैं कि बडी उम्र वाले चालाक होते हैं और उनके हाथ मे अधिकार होता है। वे केवल एक ही बात की परिकल्पना नही कर सकते और वह यह कि बडे भी धोखा दे सकते हैं। हजारो बच्चे बदमाशो और शैतानो की प्रशसा और उनका अनुकरण करते हैं। इसीलिए क्योकि उन्होने यह अनुभव किया है कि वे लोग बहादुर और दृढ स्वभाव के होते हैं और जिन्होने उपयोगी बनने की बजाय राह का रोडा बनना ही निश्चित किया हो। लेकिन वैसे लडके बहुत ही कम हैं जिन्होने किसी कैदी या जालसाजी करने वाले को चाहा हो। इसलिए बच्चे अपने बली और क्रूर माँ-बाप को बर्दाश्त कर लेंगे और कभी-कभी उनसे काफी कुछ सीख भी लेगे, लेकिन वे एक पाखडी की ओर घृणा और कटाक्ष की नजर से देखते हैं।

जो अध्यापक अपने विषय से नफरत करता है और उससे परामुख रहता है, उसको हमेशा पाखडी हो जाने का भय रहता है। जरा आप सोचें इसकी दूसरी सूरत क्या हो सकती है ? मान लीजिये कि आप विद्यार्थियो को रसायन-शास्त्र यह समझकर पढा रहे हैं कि यह विषय पढने लायक नही होता। वैसी दशा मे आप विद्यार्थियो को वह विषय पढने के लिए जोर इसलिए देंगे कि अगर वे उसे नही पढते तो आप उन्हे दड देंगे या आप यह कहकर उन्हे पढने की सलाह देंगे कि उसे पढकर वे भविष्य में अच्छी नौकरी पायेंगे। या हो सकता है आप उनको हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के मिलाये जाने की प्रक्रिया बनाकर यह बहाना बनायें कि वह विषय बडा ही रोचक है और इसलिये उनको उसे पढना चाहिये। इनमें से पहली अवस्था मे विद्यार्थी उस विषय को अनिच्छा से और शायद उसे पूरा नही सीखेंगे—यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आप कैसे इलाके मे रहते हैं। (उदाहरणार्थ जर्मनी के किसी स्कूल में विद्यार्थी उसे अच्छी तरह सीख लेंगे जहाँ आस्ट्रेलिया के विद्या-र्थियो को इसका ज्ञान बहुत कम होगा)। दूसरी अवस्था मे कुछ विद्यार्थी आप मे विश्वास कर उस विषय को अच्छी तरह सीखेंगे। तीसरी दशा में कोई भी आप पर विश्वास नही

करेगा और आप उस विद्यार्थी के प्रति क्षोभ दिखायेंगे जो हो सकता है आगे चल कर एक अच्छा रसायन शास्त्री बन जाये।

अगर सचमुच आप अपने विषय मे आनन्द लेते हैं तो थके होने पर भी आप आसानी से पढा सकेंगे और जब आप तरोताजा हो उस समय तो पढाने मे और भी आनन्द आयेगा।

आप किसी नयी बात, किसी चर्चा के विषय या किसी रोचक दृष्टिकोण को समझाने मे कठिनाई अनुभव नही करेंगे। अगर दूसरे अध्यापको की तरह आपसे भी कोई गलती हो जाय या आपको कोई फार्मूला याद न रहे या आप Rv nrw और Kpu nrw मे लटपटा जाये तो आपको उससे बचने के लिए विद्यार्थियो को धोखा देने की जरूरत नही पडेगी। आप साफ-साफ यह स्वीकार करें कि आप वह भूल गये हैं या यो कहे आप किसी से सही बात पूछ भी सकते हैं (या चालाकी से आप यह कह सकते हैं कि मैं इस बात को देखूंगा)। इससे क्लास मे आपका मान बना रहेगा और विद्यर्थी आपकी ओर ध्यान देगे क्योकि बच्चो को पढाने के लिये हर बात की जानकारी हो, यह कोई जरूरी नही। वे मानते हैं कि सारी बातें जानी नही जा सकती। हाँ, वे इतना जरूर चाहते हैं कि उनका अध्यापक निष्कपट हो। इससे हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि अगर आप अध्यापक बनना चाहते हैं तो आपको अपना विषय बडी सावधानी से चुनना चाहिये। यह ठीक है कि अगर हमेशा नही तो शुरू मे तो जरूर ही हर अध्यापक को स्कूल में सभी विषय पढाने पडते हैं। लेकिन वे स्वय यह निर्णय कर सकते हैं कि उनके लिये कौन से विषय आवश्यक हैं और तद्नुसार वह आगे बढ सकता है। भविष्य में सीनियर बन जाने पर वे कैसे विपय पढायेंगे यह भी फैसला कर सकते हैं।

वडे अचरज की बात है कि विश्वविद्यालय के तरुण अध्यापक अक्सर अपने पाठ्य विषय को चुनने मे लापरवाही करते हैं। मान लीजिये वे अँग्रेजी पढाने का काम करते हैं। शुरू के कुछ वर्षो मे उनको छोटे-छोटे निबन्ध पढाने और साधारण व्याख्यान देने होते हैं। इस अवधि मे उनका अधिकतर समय अपने विवाह, परिवार की देख-रेख और घरेलू हिसाब-किताब मे ही निकल जाता है। इसके साथ ही वे गलती से उसी उपन्यास पर कई लेक्चर दे देते हैं जिसको किसी दूसरे अध्यापक ने पढाया था जो अव अवकाश ग्रहण कर चुका है। फिर वे किसी दूसरी क्लास को सत्रहवी सदी का गद्य पढाते हैं जो क्लास के लिए हाल ही मे सत्रहवी सदी के पद्य के कोर्स पर निर्धारित किया गया है। इस तरह उनके तीन साल निकल जाते हैं और वे इसी अर्से मे उन कुछ रोचक विपयो पर एकाध लेख भी लिख देते हैं जो उनके सामने आते है। जैसे "The Princess Cosamassima" पर नयी टीका आदि। वे उस समय तक विद्यार्थियो के वहुत से लेख भी पढते हैं। इसी बीच उनका प्रवन्ध सम्वन्धी दायित्व भी वढ जाता है जैसे यूनिवर्सिटी परिपद का सदस्य वन जाना या उच्च अध्यापको के सघ का सदस्य हो जाना या पेरिफेसिस प्रेस का सलाहकार वन जाना, जायन्ट बोर्ड का परीक्षक हो जाना आदि। उधर

उनके बच्चे भी बडे होते जाते हैं। साथ-साथ खाने पीने पर ज्यादा खर्च आने लगता है। किसी साल उन्हे किसी विषय पर कई आख्यान देने पडते हैं। कभी उनको नये लेखको की रचनाएँ पढनी पडती है शायद इसलिए कि वे उनका उपयोग किसी दूसरे लेक्चर कोर्स मे कर सकें यद्यपि नये लेखको की रचनाओ से सत्रहवी सदी के गद्य मे अन्तर नही पडेगा। फिर भी कई विषयो का ज्ञान रखना अच्छी बात है जिससे कभी काम आ जाय और इसी तरह वे चलते जाते हैं। कभी यहाँ पढा लिया, कभी वहाँ। कभी एक विषय, कभी दूसरा। कुछ तो लाचारी की वजह से और कुछ अपनी सुस्ती की वजह से। आखिर मे चालीस साल के बाद उनकी आँख खुलती है और वे देखते हैं कि वास्तव मे उनका उससे कोई सच्चा हित नही, न ही वे कोई बडी पुस्तक ही लिख पाये हैं और इस तरह केवल सदिग्ध अर्थ मे ही उनका मान है। वे फिर भी सतुष्ट हो सकते हैं क्योकि ससार के उच्च साहित्य की शिक्षा देने का काम सचमुच बडा सुखदायी होता है। फिर भी उनमे यह भावना उत्पन्न होगी कि उन्होने मौका हाथ से निकाल दिया।

अपने मार्ग को उन्होने स्वय नही चुना। वास्तव मे उन्होने उसको नियोजित नही किया। दिन बीतते गये और वे कभी इधर कभी उधर भटकते रहे। इतिहास प्रसिद्ध विद्वानो ने ऐसी गलतियाँ की। वे महान् व्यक्ति और असाधारण विद्यार्थी थे लेकिन वे ससार को उतना नही दे सके जितना वे दे सकते थे। कुछ कम प्रसिद्ध विद्वानो ने अपनी विद्वता का सही उपयोग न कर अक्सर उसे व्यर्थ गँवा दिया। अक्सर यह कहते सुना गया है कि फलाँ व्यक्ति एक अच्छी पुस्तक लिख सकते थे लेकिन वे उसको टालते गये और अवसर निकल जाने की वजह से वे ऐसा न कर सके।

आप जानते हैं कि जर्मन अपने काम की योजना कितनी सावधानी से तैयार करते हैं। जब कोई जर्मन युवक अपना व्यवसाय आरम्भ करता तब वह तीन चार ऐसे क्षेत्र चुन लेता जिसमें उसकी सच्ची अभिरुचि हो, जिन क्षेत्रो मे काफी काम करने की गुँजाइश होती और जिनका महत्त्व यह था कि—वे एक दूसरे से सम्बद्ध होते और—जिसका सबसे बडा महत्त्व यह था—कि वह अनुभव करता कि उन सभी क्षेत्रो का केन्द्र वही विषय है जिसको उसने चुना है। वह उन विषयो पर अपने लेक्चर तैयार करता जाता। इस तरह हर विषय पर तथ्यो को इकट्ठा करता जाता जो आगे चलकर हर विषय पर पुस्तको के रूप में तैयार हो जाता है। अगर वह मेहनती और ज्ञानग्राही हुआ तो वह तीन-चार पुस्तको का लेखक बन जायेगा जिसमे हर पुस्तक एक दूसरे पर प्रकाश डालेगी। इसके बाद वह इन्ही क्षेत्रो या इनसे सम्बद्ध दूसरे विषयो पर अपनी जानकारी बढायेगा और उन पर व्याख्यान देगा। इससे हर विषय, समय बीतने के साथ-साथ विस्तृत होता चला जायेगा और अन्त मे उस सम्पूर्ण विषय का विश्वस्त जानकार बन जायेगा। इस तरह के अध्ययन से किसी विषय की गहरी जानकारी प्राप्त होती है। वैसे विद्वान्, जिन्होने अपने पढने और पढाने की योजना इस ढग से बनायी उन्होने पच्चास साठ-वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते यह देखा कि उनको पढाई मे इतना चाव और उनकी जान-

कारी इतनी ज्यादा हो गयी थी जिससे तीन पीढी तक उनका काम चल जाय।

मान लीजिये वैसा ही कोई व्यक्ति दर्शन शास्त्र पढाना ही अपना व्यवसाय चुनता है। हो सकता है अपने लेक्चरो के प्रथम चरण में पढाने का विषय "सचाई के आधुनिक सिद्धान्त" चुनता है। या मान लीजिये वह "मनुष्य को भगवान् का ज्ञान कैसे हुआ इसकी ऐतिहासिक जाँच" जैसा विषय पढाने के लिए चुनता है। या मान लीजिये स्नातक स्तर के विद्यार्थियो की क्लास मे वह "आत्मज्ञान" जैसे विषय पर वाद-विवाद आयोजित करता है (जब हम किसी वाह्य वस्तु को देखते हैं तो हमे क्या अनुभव होता है? हाथ, पाँव आदि अवयवो से हम कैसी बातें सीख सकते हैं?) वह अपनी जानकारी बढाता जायेगा और भविष्य मे आयोजित की जाने वाली गोष्ठी जिसका विषय "आत्मा और शरीर" हो वह उसमे भाग लेगा। (जिसमे यह विचार हो कि उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है? शरीर और आत्मा क्या होते हैं? क्या शरीर मे आत्मा होती है या क्या आत्मा के साथ शरीर भी होता है? और क्या उनमे से एक तत्व है और दूसरा उसका निवास स्थान?) सत्य जैसे विषय पर वह जो लेक्चर देगा उससे वह तर्क शास्त्र (जिसमे वर्तमान आकिक तर्क भी शामिल है) और शव्दो की उत्पत्ति जैसे महत्त्वपूर्ण विषयो के निकट सम्पर्क मे आ जायेगा जो दूसरी ओर नैतिक विषयो से भी सम्वद्ध होगा। 'भगवान् मे आस्था' के बारे मे जो विचार-विनिमय होगा उससे अध्यापक का इतिहास का ज्ञान बढेगा क्योकि इतिहास की पर्याप्त जानकारी लोगो को नही होती। इस ज्ञान से शायद वह धर्म या प्राचीन धार्मिक सस्थाओ के बारे मे कोई पुस्तक लिख सके। आत्मज्ञान जैसी समस्या पर कितने दार्शनिको ने अपने जीवन बिता दिये। इसमे भी कई गूढ प्रश्न आते हैं। जैसे वाह्य ससार किस हद तक वास्तविक है? वह कौनसी सीमा है जिसके आगे मानव मस्तिष्क सोच नही सकता? विज्ञान से किस तरह की जानकारी मिलती है? (और जैसा कि आप देखते हैं ये सब बाते हमे "सत्य" के समाधान की ओर ही एक दूसरे मार्ग से ले जाती हैं)। अन्त मे "आत्मा और शरीर" विपयक बातो का अध्ययन उसको उसे मनोविज्ञान की ओर ले जायेगा। उसे आत्म-निर्माण विषयक जानकारी होगी। यही नही उसे पशुओ की वुद्धिमता और उनके नैतिकता जैसे विपय की ओर ले जायेगा जिस विषय पर अभी तक कम जानकारी मिली है। इस तरह एक दूसरे मार्ग से वह एक ऐसे क्षेत्र में आ जायेगा जिसका पथ ज्ञान की रोशनी से आलोकित होता जा रहा है और जो आत्मा को परमात्मा की जानकारी दिलाने की ओर वढ रहा है।

इन सव मे से एक भी विषय कोई आदमी अपने कार्यकाल मे खत्म नही कर सकता लेकिन सम्भव है कि इस अर्से में वह उन सभी विषयो पर अपनी जानकारी वढाये और जैसे-जैसे जानकारी पाता जाय वैसे-वैसे वह ज्यादा अच्छा, सुसज्जित और प्रभावोत्पादक अध्यापक वन जाये। हमे उनसे आशा करनी चाहिये कि कुछ रोचक पुस्तकें लिखने की जगह वे उन सभी क्षेत्रो मे अनुसधान के लिये नये-नये प्रसग चुने जैसे-जैसे वे उनमे आगे वढते जाते हैं। उनको चाहिए कि अपने विद्यार्थियो की अभिरुचि के अनुमार उनको भी

दूसरे विषयो की जानकारी बढाने की सलाह दे जिससे वे भी मनुष्य की ज्ञान राशि को बढाने मे योग दे। इसमे केवल एक ही डर है। वह आगे बढने के लिए कही इतना उत्सुक न हो जाय कि शायद ही वह किसी पुस्तक को पढने मे अपने मन को केन्द्रित कर सके। लेकिन अगर उसने अपने काम की योजना पहले ही तैयार कर ली है तो उसमें इतनी दूरदर्शिता और इतना उत्साह होगा कि वह जितनी प्रगति करता है और जो कुछ पता लगाता है उसे नियोजित ढग से लिपिबद्ध करता जायेगा।

तब केवल अपने पढाने के विषय को चुन लेना काफी नही। एक अध्यापक अपने विषय का कुछ ऐसा भाग चुन लेगा जो न केवल रोचक हो बल्कि जो ज्ञानवर्धक भी हो। इससे वह अनुभव करेगा कि जैसे-जैसे विषय मे उसकी जानकारी बढती है वैसे वैसे उसमे उसका प्रभुत्व भी बढता जा रहा है। यही नही इससे वह अपने दिल मे यह कभी महसूस नही करेगा कि वह सिर्फ किसी तरह अपने दिन काट रहा है और उसे विद्यार्थियो को किसी तरह व्यस्त रखना है। जब मैं फ्रेंच पढता था उस समय हमे फ्रेंच पढाने वाली अध्यापिका स्थूलकाय शरीर वाली एक बुजुर्ग हँसमुख औरत थी। उसे विक्टर ह्यूगो की रचनाएँ बडी भाती थी। फ्रेंच के कई अध्यापको को रेसिन के दुखान्त उपन्यास बडे प्रिय लगते हैं और उन्होने जो अनुष्ठान सुने है उसके बारे मे आपको बता भी सकते है। कुछ वर्लेन और बुडेलयर को पसन्द करते है। लेकिन स्वय फ्रास मे ही वैसे लोग बहुत कम हैं जो ह्यूगो की रचनाएँ पसन्द करते है। लेकिन हमारी अध्यापिका कुमारी ग्रोन उसे बेहद पसन्द करती थी। जब उन्होने "दी चेष्टाइजमेंट" से बडी आतिशबाजी के दृश्य का वर्णन पढकर सुनाया तो जैसे कि वाटरलू के वर्णन से उत्साह पैदा हो जाता है ठीक उसी तरह ऐसा लगता था कि वे भी उत्साहित हो गयी है। उनको उस उपन्यास का अच्छा ज्ञान था। उन्ही की प्रेरणा से मैंने "दी ट्रेलर्स ऑफ दी सी" पढा।

जब वे हमे फ्रेंच मे छोटे बच्चो की कविताएँ पढकर सुनाती तो हम सब, कुछ उलझन मे पड जाते लेकिन मन-ही-मन खुश भी होते थे। कई बार जब हम अपने पाठ तैयार करके नही लाते तो बचने के लिये हम उनसे क्लास मे ह्यूगो के बारे मे बात छेड देते और हम यह अनुभव करते कि जब वे उसके बारे मे बोलती तो उनकी आभा पर सच्चा उत्साह होता और उनकी वाणी में उसी भावना का स्पन्दन होता। उस क्लास को छोडने से पहले हम मे से हरेक ने यह जान लिया था कि विक्टर ह्यूगो सबसे बडा फ्रेंच कवि था यद्यपि हम लोगो को इस पर यकीन नही आता फिर भी हमने इतना जरूर जान लिया कि उनकी कविताएँ सचमुच महान् थी, उनमे रोचकता होती है जिससे हृदय प्रफुल्लित हो उठे। हमने यह भी जान लिया कि फ्रेंच कविताओ मे कौनसी चीज पढने योग्य होती हैं। कवि मलार्मे की एक कविता के ये अन्तिम छन्द (जो नीचे दिये गये है) पढने के बहुत दिन बाद भी।

Je suis hante, L'Azur ! L'Azur ! L'Azur ! L'Azur

अपनी अध्यापिका कुमारी ग्रोन का सुन्दर और मधुर शब्दो मे

Waterloo ! Waterloo ! Waterloo ! morne plaine !

गाना आज भी मुझे याद है।

पढाने के लिए तीसरी आवश्यक बात यह है कि शिक्षार्थियो को प्यार किया जाय। अगर आप लडके-लडकियो या युवक-युवतियो से स्नेह नही करते तो आप पढाने का काम न करे। बच्चो से प्यार करना आसान होता है क्योकि वे बच्चे जो हैं। उनमे सिवा इसके कोई दोष नही होता कि वे आपसे अपनी अज्ञानता, छिछलापन और अनुभव के अभाव को दूर करने के लिए कहते हैं। लेकिन सच्चा दोष उनमें नही होता। वह तो हम बुजुर्ग मर्द औरतो मे होता है। उन दोषो मे कुछ तो ऐसे होते हैं जो हमको रोग की तरह पकड लेते हैं, कुछ वैसे हैं जिनको हम ही जन्म देते हैं गुण समझ कर उनको विकसित करते हैं। स्वाभाविक अहकार, जानबूझ कर बच्चो के प्रति निर्दय बनना, कायरता, महालालची स्वभाव, आत्म-तृप्ति के एिल घृणित काम करना, शरीर और दिमाग की सुस्ती ये सब दोष शरीर मे वर्षो के सचन के बाद ही आते हैं। हमारे चेहरे और हमारी वाणी मे उनका आभास मिलने लगता है। यही नही वे अन्तरतम मे भी व्याप्त हो जाते है। बच्चे उस तरह के अपराध नही करते।

वे बलवान, चतुर और दयालु बनने का प्रयास करते हैं। जब हम इस बात की ओर ध्यान देते हैं तब तो बच्चो को प्यार न करना कठिन है।

किसी अध्यापक को बच्चो से इसलिए प्रेम नही होना चाहिए क्योकि वे बच्चे हैं। खुद भी उसको बच्चो की सगति मे आनन्द का अनुभव करना चाहिए। अमेरिका मे शिक्षा की बडी सुन्दर परिभाषा की गयी है। एक लघु कविता मे ऐसा उल्लेख है कि मार्क हॉप्किन्स एक बेंच के एक ओर बैठे हैं और दूसरी तरफ एक विद्यार्थी बैठा है। मार्क हॉप्किन्स एक प्रख्यात अध्यापक थे। लेकिन जब दस विद्यार्थी उनके सामने बेंच पर बैठते तो वे उनके सामने खडे होकर और भी अच्छे ढग से पढाते थे। आगे चल कर हम इस बात पर विचार करेंगे कि ऐसी शिक्षा के क्या लाभ है जिसमे अध्यापक विद्यार्थियो पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देता है और अलग-अलग तरह के क्लासो के क्या लाभ हैं। इसी बीच यहाँ केवल इतना ही कह देना उचित समझता हूँ कि ससार मे विद्यार्थियो की सख्या अध्यापको से कई गुनी ज्यादा है जिसका परिणाम यह है कि एक औसत अध्यापक को बीस से चालीस विद्यार्थियो की जमात पर हर दिन कई घण्टे लगाने पडते हैं। जब तक वह अध्यापक बच्चो से प्रेम न करे तब तक वह उनको अच्छी तरह कभी पढा नही सकता। उसके लिए यह आशा करना कि उन विद्यार्थियो मे से दो-तीन सयाने हैं या वे सभी सयाने है, भूल होगी। वे सदा अबोध ही होते है और उनके अलावा उन जैसे अबोध विद्यार्थियो की सख्या बहुत होगी।

विशेष परिस्थितियो मे किसी-किसी सस्था मे वैसे अध्यापक भी खप सकते है और प्रशसा के पात्र भी बन सकते थे जिनको बच्चो के बडे-बडे झुण्ड से नफरत हो और जो

वच्चो के बीच घबराने लगते है। हो मकता है कि एक विद्वान् जिसने किसी कठिन विपय का गहरा अध्ययन किया हो लेकिन उसको वह विपय पढाना न आता हो या अपने छोटे श्रोताओ के सामने उसे वोलने मे उलझन या सकोच अनुभव हो। फिर भी अगर उनका मान और उनकी विद्वता प्रसिद्ध है तो इन्ही दो विशेपताओ के कारण अगर उसकी आवाज धीमी भी हुई और स्वय चाहे वह मद बुद्धि ही क्यो न हो फिर भी सारी क्लास उसकी ओर ध्यान देगी। उसके आख्यान को सुनने वाले कई विद्यार्थी उत्साहित हो जायेंगे—उनके पढाने की वजह से नही वल्कि उन जैसे विलक्षण प्रतिभावान व्यक्ति के सम्पर्क मे आने से जो उत्तेजना पैदा होती है उसकी वजह से ससार की कई वडी-वडी यूनिवर्सिटियो मे ऐसे विद्वान् होते है। साधारणत, वैसे विद्वान शुरू के वीस-तीस साल तक वहुत ही बुरे अध्यापक होते है, अपनी ख्याति की चरम सीमा पर जव होते हैं उस समय भी वे अच्छे अध्यापक नही बन पाते। लेकिन जव वे व्युत्पत्ति-शास्त्र या मूर्तिकला जैसे विपयो की पूरी जानकारी पा लेते हैं तो उनके लिए पढाने का अधिकाश काम उनके दिमाग मे सचित विद्वता द्वारा ही किया जाने लगता है। शान्त, एकाग्रचित्त और जिज्ञासु होकर सारी क्लास उनका आख्यान सुनती है। उनकी धीमी आवाज भी चुपचाप सुन रहे क्लास में जैसे गूँजने लगती है। यहाँ तक कि विद्यार्थियो की चाव की वजह से अध्यापक के अधूरे विचार भी पूरे वन जाते हैं, और धुँधली स्मृतियाँ स्पष्ट वन जाती हैं। यद्यपि मैंने (STO) आइन्सटाइन का आख्यान कभी नही सुना है और मैं यह नही मानता कि वे पढाने मे अपनी आर्थिक शक्ति लगायेंगे, न ही मैं ज्योतिप-भौतिक समझता हूँ फिर भी मैं उनका भाषण सुनूँगा क्योकि मैं जानता हूँ कि मुझे उससे कुछ सीखना है।

लेकिन हम मे मे अधिको को, जो शायद अपनी विलक्षण विद्वता और मान होने की वजह से कभी नौकरी करना पसद न करेंगे, उनके लिए यह ज़रूरी है कि वे अध्यापन व्यवसाय के वातावरण मे खुश रहे। उनको वीस-तीस स्वस्थ वच्चो की क्लास मे पढाने मे बल का अनुभव करना चाहिए और सामूहिक रूप से रहने की भावना से पैदा होने वाली खुशी से और ज्यादा चाव से पढाने की प्रेरणा लेनी चाहिये। हर धन्धे का विशेष वातावरण होता है। उसकी विशेष स्थिति होती है। जो लोग जिस धन्धे मे लगे हो, उनको उसी वातावरण में सन्तोष अनुभव करना वडा आवश्यक है। अगर आप एक-व्यवस्थित परिवार बनाना चाहते हैं और चाहते हैं कि आप के पास चिंतन के लिए समय मिले तो आपको कभी एक अभिनेता (एक्टर) बनने की बात नही सोचनी चाहिए। अगर आपको दफ्तर का शोरगुल पसन्द नही, यात्रा करना या अक्समात मेहमानो का घर मे आ धमकना नही भाता तो आप कभी भी पत्रकार न वनें। आपको यह भी समझ लेना चाहिए कि आप जीवन-पर्यन्त अपने व्यवसाय से परागमुख न होगे। उसी तरह अगर आप बच्चो के वडे-वडे समूहो में रहने में खुशी नही अनुभव करते और हमेशा किसी प्रयोगशाला मे काम करना पसन्द करते या किसी पुस्तकालय मे किताबो के अध्ययन मे ज्यादा आनन्द का अनुभव करते हैं तो आप कभी एक अच्छे अध्यापक नही बन सकते।

यह ठीक है कि कोई भी आदमी हमेशा बच्चो की सगति पसन्द नही करेगा। अध्यापक के जीवन की खुशी की एक आवश्यकता यह है कि बच्चो के शोरगुल और शैतान स्वभाव से अलग होने के लिए कभी-कभी किसी शान्त पुस्तकालय या किसी छोटे से बाग मे निकल जाय। इस धन्धे की सबसे बडी कठिनाई यह है कि इसमे अवकाश बहुत कम मिलता है, हर समय दिन को काम मे व्यस्त रहना पडता है और अध्यापक को अपने व्यवसायिक जीवन का हर दिन उन बच्चो मे ही बिता देना पडता है। फिर भी यह व्यवसाय हमारे ऊपर थोपा नही गया है। उसे हम स्वेच्छा से अपनाते हैं। यह बात भी है कि जो लोग यह धन्धा अपनाते है वे अक्सर उससे सुख पाते है। आप इतना याद रक्खे कि आपको बच्चो के उत्साह और बल से अपने को अलग नही रखना है। आपको कभी उस पुलिस अधिकारी की तरह नही बनना है जो हमेशा भीड की निगरानी करता रहता है। आपको अपने गिरोह का नेता बनना चाहिये। यह नेतृत्व उस नेतृत्व से कही ज्यादा ऊँचा होता है जो एक कलाकार अपने श्रोताओ का करता है या उस सन्त-महात्मा के नेतृत्व से नीचे है जो पूजा के समय वह करता है या उस नेतृत्व से कही अधिक उदार होता है जो एक ऑफिसर अपने मातहत अधिकारियो का करता है। आपको अपने को हमेशा उस प्रकाण्ड वक्ता के समान समझना चाहिये जो जब अपने श्रोताओ के सामने भाषण देने चलता है उस समय कुछ तो उसके समर्थक होते है कुछ आलोचक। लेकिन जो थोडी देर के बाद यह देखता है कि सभी उसके समर्थक बन गये है। वैसा अध्यापक ऊपर उठता और आगे बढता चला जाता है। उसकी इस प्रगति मे उसे प्रेरणा शरीर के बाहर से आती है। वह शक्ति है उन बच्चो की जिनका वह हृदय और जिनकी वह वाणी बन गया है। एक सफल अध्यापक सदा यह अनुभव करता है कि उसको पढाने की प्रेरणा उन्ही विद्यार्थियो से मिल रही है। अगर वह उस शक्ति से लाभ उठाने मे सफल हुआ तो कभी वह थकान का अनुभव नही करेगा। कम से कम उस समय तक तो बिल्कुल नही जब तक वह पढा रहा हो।

इस बात पर एक गम्भीर आपत्ति हो सकती है। आप कहेगे, "कई ऐसे क्लास हैं जिनको बिल्कुल पसन्द नही किया जा सकता। कई ऐसे अध्यापक होते है जिनको बडे ही खराब विद्यार्थियो से पाला पडता है। कई ऐसे स्कूल हैं जहाँ लडकियाँ केवल यौन सम्बन्धी बातें ही सोचती हैं और लडके सिवा लडने-झगडने के और कोई दूसरी बात नही सोचते और वे सब विद्यार्थी अध्यापक, स्कूल और शिक्षा सबको घृणा की दृष्टि से देखते हैं। भला उनसे प्यार करना कैसे सम्भव हो सकता है ?

यह बात बिल्कुल ठीक है। कुछ स्कूल नर्क जैसे लगते है। डिकेन्स जब "डोथेबॉइज़ हाल" का वर्णन करता है तो वहाँ की सबसे भयानक बात यह बताता है कि अध्यापक और उसका परिवार विद्यार्थियो पर बडा अत्याचार करते थे।

जब कीट (Keate) एटन मे हेडमास्टर था उस समय उसके सामने शैतान से शैतान

विद्यार्थी के होश उड जाते थे और अगर लैटिन मे कविता लिखने मे एक भी गलती हो जाती तो उसका मूल्य उन्हे "आँसूओ और खून" से चुकाना पडता था लेकिन आजकल विद्यार्थी अध्यापक को भी भयभीत कर देते है। न्यूयार्क मे कई ऐसे स्कूल हैं जहाँ के अधिकारियो की सुरक्षा के लिए पुलिस बुलानी पडती है। मिस्टर यग ने "जेडी ग्रीनवे" (Jadıc G.een-way) नामक एक रोचक उपन्यास लिखा है जिसमे ब्रुकलीन मे रहने वाली एक नीग्रो लडकी की कथा लिखी गयी है। (मिस्टर यग ने न्यूयार्क के स्कूलो मे कई साल काम किया है) उस उपन्यास मे उन्होने शहर के अध्यापको की समस्याओ पर प्रकाश डाला है। उसकी सोलह वर्षीय नायिका, जेडी को, अपने युवक मित्र के सम्पर्क मे आने पर गुप्त रोग हो गया। उसका मित्र नौ सेना मे काम करता था। जब एक दूसरी लडकी ने जेडी पर कटाक्ष किया तो उसने उस पर एक छुरी से प्रहार किया। जेडी सदा अपने साथ छुरी इसलिए रखती थी जिससे रस्ता चलते लडके उससे बलात्कार न करे। वैसे स्कूलो की क्लास मे ही भयकर मारपीट शुरू हो जाती है और अगर अध्यापक उस विद्यार्थी को वहाँ दण्ड दिया तो हो सकता है विद्यार्थी उन पर ही आक्रमण कर दे या छुट्टी के बाद उनके पीछे लग जाय या अपमान का बदला लेने के लिए वह अपने बडे भाई को ही बुला लाये। मैं ऐसे अध्यापको को जानता हूँ जो वास्तव मे अपने विद्यार्थियो से बहुत डरते हैं और जब घटी बजती है तो वे चैन की साँस लेते हैं कि चलो आज तो भय से छुटकारा मिला।

इन स्कूलो मे इतनी ही बुरी बात यह भी होती है कि लडके-लडकियाँ पढाई करना नही चाहते। वे यह समझते हैं कि स्कूल एक कैदखाने की तरह होता है और वहाँ जाना समय व्यर्थ गँवाने के समान है। या तो वैसे विद्यार्थी स्कूल के बाहर पैसे बनाते हैं या सिर्फ स्कूल के बाहर ही रहते या कही सडक के मोड पर खडे रहते हैं। चूंकि उनकी उम्र बीस-बाईस साल से कम ही होती है इसलिए वे जल्दी से बडे होने के लिए बेचैन होने लगते है। एक ऐसे ही लडके ने अपने लेख मे यह लिख दिया था, "The pleasures of child-hood are nothing to the joys of adultery" उनको छोटे-छोटे बच्चो के साथ स्कूलो मे रहने में बडा क्षोभ अनुभव होता है क्योकि उनकी वही अभिलाषा होती है कि वे भी वयस्क होते, पैसे कमाते होते और एक स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करते। उनको ससार का भूगोल, अपने महादेश का इतिहास या अपने देश के साहित्य को पढने से उनकी अभि-लाषाओ के और अच्छी तरह से पूरे होने के कोई लक्षण दिखाई नही देते।

वर्ग और जाति भेद से भी कभी-कभी क्षोभ बढता है। हो सकता है कि अमेरिका मे नीग्रो विद्यार्थी किसी गोरे अध्यापक से पढना नापसद करे। क्योकि नीग्रो उन सभी बातो से घृणा करते हैं जिनसे इस बात की याद आती हो कि उनके पूर्वज गुलाम थे और वे अपने मन मे सोचते हैं कि ("उन्हें यह बताने की जरूरत नही कि मैं क्या करूँ") हाल ही की बात है कि पोर्टोरिको के रहने वाले भारी सख्या मे न्यूयार्क पहुँचे। वे अमेरिकी नागरिक हैं और उनकी भाषा स्पेनिश है। उनके बच्चे हँसमुख होते हैं, उनकी आँखे बडी-बडी होती है और मुस्कान दीप्तिमय। लेकिन जब वे एक ऐसे क्लास मे

दाखिल होते है जहाँ अँग्रेजी मे पढाई होती है तो उनको पढाई कठिन मालूम पडती है और वे क्षुब्ध हो जाते हैं। ग्लासगो से लेकर वॉल्परायसो तक, ससार की सभी गन्दी बस्तियो के स्कूलो मे विद्यार्थी अध्यापको को घृणा की दृष्टि से देखते है क्योकि उनका अध्यापक बोल-चाल और देखने मे मध्य वर्ग का आदमी मालूम पडता है जहाँ वे बच्चे मज़दूर श्रेणी के होते हैं। यदि उनके माता-पिता साम्यवादी है तो वे अपने बच्चो को उन स्कूलो से घृणा करना सिखायेंगे क्योकि उनके विचार मे वे स्कूल पूंजीवादियो के जुल्म का साधन मात्र है।

यह सब सच है और बडी गभीर बाते है। लेकिन यह बात किसी देश मे किसी खास समय मे कुछ ही स्कूलो पर लागू होती है। इसका मतलब यह नही कि यह कोई समस्या नही है। लेकिन इतना जरूर है कि यह शिक्षा की मूल समस्या नही है।

यह एक सामाजिक समस्या है क्योकि यह समस्या शिक्षा मे असफलताओ की वजह से नही पैदा हुई बल्कि समाज की कुरीतियो के कारण पैदा हुई है। यह समस्या तब पैदा हुई जब साक्षरता का सिद्धान्त घनी आबादी वाले औद्यगिक राष्ट्रो मे लागू किया गया। इसका अर्थ यह था कि शिक्षा प्राप्त करना बडप्पन की बात न रही। साथ ही उसे वैयक्तिक विकास के लिए नितान्त आवश्यक नही समझा गया। उसे स्वर्गोपयोगी समझा गया लेकिन उसमे उकता देने वाले अनुशासन को सब स्वीकार करने को तैयार न थे। शिक्षा और समाज सेवी कभी-कभी ऐसी बातें करते है मानो वैसे सब लोग पढने के लिये मन-ही-मन बेचैन हो रहे हो। जिनको पहले शिक्षा न मिली थी। कईयो ने ऐसा अनुभव किया और अगर वे निर्धन थे तो उन्होने शिक्षा प्राप्त करने के लिये बडे-बडे बलिदान दिये। हमारे पूर्वजो मे कई ऐसे थे जिन्होने पढाई की उतनी ही कम चिन्ता की जितनी मैं ताश मे ब्रिज की करता हूँ और उन्होने इतिहास पढने की उसी तरह पर्वाह नही की जैसे मैं ताश की बारीकियो की करता हूँ। इस तरह आज गाँवो मे कई ऐसे बच्चे है जो किसान बनना चाहते है और इसलिये वे सिवाय खेती के और कुछ पढना नही चाहते। उसी तरह शहर मे कई ऐसे बच्चे है जो कारखाने के मजदूर बनना चाहते है और ऐसा कुछ भी सीखना नही चाहते जिससे कुछ निश्चित आय न होती हो। उनके अलावा और हजारो ऐसे है जो यह महसूस करते है कि समाज मे उनके लिए कोई स्थान नही और नियमित जीवन या रोजगार से उनको कोई लाभ न होगा। इसलिए वे (कभी बिना सोचे समझे) इसमें विश्वास करने लगते हैं कि स्कूल जैसी कोई सामाजिक सस्था ज्यादा उपयोगी नही होती और वहाँ की दिनचर्या और नियम केवल उन्हे बन्दी बनाने, कष्ट पहुँचाने और तग करने के लिए होते है।

सबसे कठिन समस्या तो इसी आखिरी वर्ग मे आने वाले विद्यार्थियो की है। लेकिन सिर्फ अध्यापक ही इस समस्या को सुलझा नही सकता। ससार का अच्छा से अच्छा स्कूल वैसे बच्चो की रक्षा नही कर सकता जो स्कूल से नफरत करते हो, उसकी और जिस समाज ने उसको बनाया है उसकी आस्था पर सन्देह करते हो। शिक्षा मे "किसी तरह का सुधार" बिगडे हुए बच्चो और क्लास के दूसरे बच्चो के बीच खडी दीवार को सदा के लिए

नही कर सकते। नगरपालिका, धार्मिक सस्थाओ, स्थानिक राजनैतिक सस्थाओ, पुलिस, माता-पिता और सब नागरिको को मिलकर इस समस्या को सुलझाने का यत्न करना चाहिए। अध्यापक और पुलिस अधिकारी इस दिशा मे काफी सन्तोपजनक काम कर रहे हैं लेकिन बाकी काम को औरो को ही पूरा करना होगा। इस दिशा मे शिक्षा अपना योग-दान दे रही है।

तब तक अध्यापक क्या करें ? उसके लिए उस क्लास से प्यार करना बडा कठिन है जिसका कोई बालक पढने से जी चुराता है और अपनी किताबे फाड देता है या अपनी ही क्लास मे पेशाब करता है। वैसे बच्चो को कैसे पढाया जाय ? वह कैसे उनके बारे मे सोचे ?

जहाँ तक हो सके अध्यापक को उनसे सहानुभूति होनी चाहिये। प्रत्यक्षत, उनकी हालत पर तरस खाना उन बच्चो मे रोष पैदा कर देगा। इसलिए अध्यापक को एक ऐसे डाक्टर की तरह अपने उन रोगियो की हालत पर गौर करना चाहिये जो दर्द से आधा पागल हो जाते हैं। जरा विचार करिये, अगर किसी औरत ने अपने को शराब पीकर पागल बना दिया हो तो भी एक कुशल डाक्टर उसे भला-बुरा कहने या दोष देने की बजाय उसका इलाज ऐसी सहानुभूति से करता है मानो वह स्त्री रास्ता चलते किसी दुर्घटना का शिकार हो गयी है। सचमुच यदि देखा जाय तो ये ढीठ और दुष्ट बच्चे और ये दुर्बल और पथभ्रष्ट लडकियाँ ऐसे ही विरोधी और विस्फोटक शक्तियो के शिकार होते हैं जिसका परिणाम एक मोटर दुर्घटना से कही ज्यादा भयकर होता है। अधिकतर बीमारो की तरह वे भी यह नही अन्दाजा लगा सकते कि उन्हे कौनसा रोग सता रहा है और कैसा सघर्ष उन्हे खाये जा रहा है। उनके बडे होने तक तो उन्हे जरूर ही कुछ ऐसे मौके मिलेंगे जब उन्हे कुछ नैतिक निर्णय करने पडेगे या समाज का विस्तृत विधान उन्हे समझ मे आयेगा। लेकिन बचपन मे तो बच्चो मे क्रिया से अधिक प्रतिकिया की ही क्षमता होती है। उनको सम्भालने का अच्छा ढग यही है कि उनके प्रति सहानुभूति बरती जाय और जैसा डाक्टर अपने रोगियो के साथ करते है ऐसा काम न किया जाय जिससे वे न स्वय को या दूसरो को नुकसान पहुँचा सकें।

वैसी परिस्थितियो में अध्यापक की अपेक्षा अध्यापिका का काम ज्यादा कठिन होता है। लडकियाँ उससे इसलिए घृणा करती है क्योकि वह उम्र में उनसे बडी होती हैं और लडके इसलिए कि वह कमज़ोर होते है। वैसे दुसाध्य स्कूलो मे पढने के लिए अध्यापिका को लगाना बेकार है। इसलिए वैसे स्कूलो में मर्द अध्यापको को ही पढाने के लिए रखना आवश्यक सुधार है, लडकियाँ अध्यापक की इज्ज़त करेंगी और चाहे कुछ भी हो लडके उससे नफरत नही करेंगे। यदि अध्यापक में शारीरिक और मनोवैज्ञा-निक शक्ति होगी तो वह उन पर कुछ समय के लिए जरूरी अपनी प्रभुता जमा लेगा। अगर वह अच्छा खिलाडी हुआ तो परस्पर भेद को दूर कर वह कभी-कभी उनके साथ मिलकर काम भी कर सकता है। एक पुरानी रूसी फिल्म मे क्रान्ति के बाद रूस

के बडे-बडे शहरो मे फिरने वाले बेघर बच्चो को दिखाया गया था। उसमे यह भी दिखाया गया था कि उन बच्चो के एक दल का पुनर्निर्माण करने के लिए कैसे ठोस और सफल प्रयत्न किया गया। सबसे पहले उनको पकडकर गाँव के एक स्कूल मे भेज दिया गया। पुलिस को यह काम करना पडा क्योकि वे चूहो की तरह बच निकलते थे और वनबिलाव की तरह लडते रहते थे। (लेकिन इसकी उलझन पर गौर करे। ऐसे कठिन बच्चो को सुधारने की कोशिश करना वडा कठिन है जब तक उन्हे गन्दे वातावरण मे फिरते रहने की छूट हो)। ज्योही वे गाँव वाले स्कूल मे पहुँचे उन्होने स्कूल का सत्यानाश कर दिया। मेज कुर्सियाँ जला डाली, चोरी छिपे वही शराब बनाने लगे, बागीचा और मकान को बर्बाद कर दिया, उनके फसाद से सारा काम रुक गया। उनका एक अध्यापक था, उसने उनको रोका नही। यदि वह ऐसा न करता तो उन्होने शायद उसके टुकडे-टुकडे कर दिये होते। वह उनके हगामो में शामिल भी हुआ। जब इनके दिमाग से स्वच्छन्द विचरण का पहला नशा दूर हो गया और पहले वाली जगह से हटाये जाने के विरुद्ध उनकी आपत्तियो की कोई सुनवाई न हुई, तब उन्हे अपनी असुविधाओ का आभास हुआ।

सारे फर्श पर खाना गिरा पडा था। उसके पास कोई काम न थ। हाथ पर हाथ धरे वे अब उकता गये और रहने की अपनी जगह को कुछ ठीक-ठाक करने के लिए उसको साफ करना शुरू कर दिया। यह काम कुछ कार्यशील बच्चो ने आरम्भ किया अध्यापक ने उनकी मदद की उन्होने उसकी राय मानी और तब उस अध्यापक ने उनको उस जगह को फिर से बनाने की बातें सिखायी। उन्होने उस जगह को ठीक-ठाक किया वे शिल्प कला सीखने लगे। वे अपने आराम के लिए चीज़ें बनाते और उनको काफी औज़ार भी दिये गय। उनको अपने काम पर सन्तोष होता और वे अपने ऐसे निठल्ले दोस्तो से घृणा करते जो काम से जी चुराते या जो हाथ पर हाथ रख कर बैठना पसन्द करते थे। उस अध्यापक को उन्होने कोई बाहरी दबाव न समझ कर अपने ही ग्रुप के एक सदस्य के रूप में स्वीकार किया। वे अध्यापक की क्षमता और उसकी आस्था की प्रशसा करते और प्राय निष्पक्ष सलाह माँगते। फिल्म के अन्त मे यह दिखाया गया था कि किसी तरह युवको का एक सजीव समाज बना है जो केवल दो ही साल पहले शहर की गलियो मे घूमने वाले लफगे और खूनी थे।

अमेरिका मे फ्लानेगन नाम के एक पादरी ने भी "वायजटाउन" नामक सस्था खोली थी जिसमें बच्चो के पुनर्वास का उसी तरह का काम शुरू किया गया था। इस तरह की और भी कई शिक्षा की सफल योजनाएँ चलायी गयी है। लेकिन इन सबो की सफलता एक मूल बात पर निर्भर है अर्थात् बच्चो को बुरे समाज के सम्पर्क और प्रभाव से रक्षा करना। रूस का वह अध्यापक मोस्को की अन्धेरी कोठरियो मे रहने वाले इन बेजप्रीजोरनिकी (Brızprızornıkı) बच्चो को कभी भी नही सुधार पाते अगर उन्हे वहाँ से हटाया नही गया होता। नयी बस्ती मे पहुँचने के बाद वे भाग नही सके इसलिए

उन्हे एक नये जीवन का मार्ग अपनाना पडा। अगर स्कूल ही गन्दी वस्तियो मे स्थित हो तो वेचारा अध्यापक क्या कर सकता है ?

इसके जवाब मे ऐसा कहा जा सकता है कि उसे उन गन्दी वस्तियो को खत्म करने, समाज के वातावरण को सुधारने के लिए योजना तैयार करनी चाहिये और उनका प्रचार करना चाहिए। लेकिन अक्सर वह अपने कठिन और कष्टपूर्ण काम से इतना थका माँदा होता है कि वह कुछ नही कर सकता। वह अपना काम पूरा करता है और आशा करता है कि दूसरे भी अपना काम करे। मैं इन स्कूलो मे काम करने वाले अध्यापक जैसे समाज सेवी कार्यकर्ताओ से और अधिक कुछ उम्मीद करने मे हिचकिचाता हूँ और ऐसा सोच भी नही सकता कि विश्राम के थोडे समय मे उन्हे और कोई समाज कार्य दिया जाय। लेकिन मेरे विचार मे हमारे समाज मे अधिक असतुलन का कारण अनुदारता और भ्रष्टाचार नही है वल्कि अज्ञान है। वडे-वडे शहरो मे एक आदमी यह नही जानता कि दूसरे किस तरह से जीवन निर्वाह करते हैं। इसलिए यदि अनुभवी अध्यापक धार्मिक सस्था, पडौसियो की सभा और लोकहितकारी सस्थाओ या ऐसी दूसरी सस्थाओ की सहायता से स्वेच्छी समाज सेवियो को यह वताये कि उनकी नजर मे सच्ची समस्या क्या है और उसे किस तरह सुलझाया जा सकता है तो यह वहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। हमे शराब की प्रथा खत्म करने के लिए डाक्टर के पास नही जाना पडता। उन्हे तो पागलो के पास जाना ही काफी होगा। लेकिन हमे उस सामाजिक वुराई, उसके कुप्रभाव दूर करने के तरीको के वारे मे ज्ञातव्य बातो का पता चल सकता है और उसके वाद तो सम्भालना हमारी जिम्मेदारी है।

अत हमने देखा कि साधारण स्कूल और कालेजो मे पढाने के लिए तीसरी आवश्यक बात बच्चो से प्यार करना है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या उनको समझना भी जरूरी होता है ?

यह मूलत इस वात पर निर्भर करता है कि पढाई के लिए कौनसा तरीका—जैसे क्लास की पढाई, लैक्चर, प्रयोगशाला का ढग या व्यक्तिगत शिक्षा—काम में लाया जा रहा है। इन तरीको के परस्पर भेद पर हम आगे विचार करेंगे। यहाँ केवल इतना ही कहना काफी होगा कि उनमे से केवल व्यक्तिगत निरीक्षण (Tutorial System) का ढग ही हर विद्यार्थी के बारे मे व्यक्तिगत जानकारी पाने के लिए जरूरी होता है।

दूसरी शिक्षण प्रणालियो में अध्यापक को अपने विद्यार्थियो के बारे मे कितनी जानकारी रखना आवश्यक है ?

सबसे पहले उसे बच्चो को समझना चाहिये क्योकि बच्चे बडो से बिल्कुल भिन्न होते है। इतने कि अगर वे जानवर होते तो उनको समझना आसान हो जाता। आप जानते होगे कि वच्चा जन्म लेने से पहले विकास की किन मुख्य परिस्थितियो से गुजरता है। शुरू मे वह एमोवा (Amoeba) की तरह दीखता है। उसके बाद वह एक मछली की

शक्ल का बन जाता है। फिर कुछ समय के लिए उसकी शक्ल एक बडे सिर वाले बन्दर की तरह हो जाती है और अन्त मे प्रसव के समय वह बिल्कुल एक छोटा सा, लाल रग का भद्दी मुखाकृति वाला बन्दर जैसा होता है। मैंने प्राय इस बात पर गौर किया है कि अपने जीवन के पहले पन्द्रह वर्षों मे बच्चा और भी कई तरह से जानवर ही की तरह व्यवहार करता है। जैसे नौ दस साल के बच्चे बिल्कुल कुत्ते जैसा व्यवहार करते हैं। उनको देखें कि किस तरह आहट पाकर उनका एक गिरोह भूँकने, दौडने और बिना कारण जोर-जोर से कूदने लगता है। एक दूसरे को गेंद की तरह लात मारते और किसी दरवाजे को उसी लापरवाही से तोड देते हैं जैसे कोई कुत्ता पडोसी के बगल से फाँद कर निकल जाता या किसी झाडी को नष्ट कर देता है और जब वे बच्चे दौड का आनन्द ले रहे होतें है उस समय उनकी आँखें और उनके दाँत चमकने लगते है और वे हँस-हँस कर दम भरते और कुत्तो जैसा हह हह हह हह करते रहते हैं। लडकियाँ भी बारह चौदह साल की उम्र मे घोडो की तरह मजबूत, घबराने वाली, अकस्मात बीमार पड जाने वाली या बिना कारण डरने वाली होती हैं। अगर उन्हे ठीक से अकुश मे रक्खा जाये तो वे कठिन परिश्रम भी कर सकती हैं। लेकिन उन्हे सबसे ज्यादा खुशी तब होती है जब वे कोई खास बात नही सोच रही हो और इधर से उधर चुटिया उडाती हुई दौडती हो। कुत्ता और घोडा दोनो ही भले जानवर हैं और पाले जा सकते हैं, लेकिन उनको आदमी नही माना जा सकता न ही कुत्ते को घोडा और घोडे को कुत्ते जैसा व्यवहार किया जा सकता है।

इसलिए अगर आप अध्यापक बनना चाहते है तो आपको बच्चो से यह उम्मीद नही करनी चाहिए कि वे आप जैसा या आपके परिचितो जैसा व्यवहार करेगे। आप उनकी विचार शैली और उनकी भावनाओ की खूबियो को उसी तरह समझे जिस तरह आप घोडो, कुत्तो या दूसरे जानवरो को समझते है (क्योकि सभी तरह के जानवरो के गुण आपको बच्चो मे मिलेंगे और छोटी उम्र के बच्चो मे तो चिडयो का भी गुण मिलेगा) तब आप देखेंगे कि बहुत-सी मुश्किल बातो को समझना सहज हो जायेगा और उनकी बहुत सी अक्षम्य हरकते आप भुला देगे।

आपको यह कैसे मालूम होगा ? मुख्यत अनुभवो से ही। उनको गौर से देखें और उनसे बाते करें। कभी-कभी काम से फुर्सत मिलने पर उनसे मिलें जुलें। कभी-कभी उन्हें पार्टी दिया करें या उनके साथ खेले। उनकी बातें सुनें, खिडकियो के पीछे छुपकर नही बल्कि उनको समझने के लिए। वे लगातार जो लापरवाही भरी बातें करते है उसे समझे और यह भी जानने की कोशिश करे कि उनका दिमाग और उनके भाव क्या है। इसके साथ ही साथ आपको उन्हे समझने मे और भी आसानी होगी यदि आप अपने बचपन को याद करें। अपने वर्तमान वयस्क जीवन से बहुत पीछे छूट गये बचपन की याद आप जितना अधिक करेंगे उतना ही आप बच्चो को अच्छी तरह समझ सकेंगे। वैसे असफल अध्यापक और अध्यापिकाओ मे से कितने ऐसे होंगे जो छोटी उम्र के उस समय भी गम्भीर थे

और उनमे लडकपन नही था, जो उस उम्र मे भी वहुत पढते और शायद ही कभी कोई भद्दा या मेहनती खेल खेलते थे और जिनके माँ-वाप ने उन्हे वहुत लाड-प्यार मे रक्खा। जव वे बच्चे थे तो उन्हे बच्चो की सगति मे आनन्द नही आया। या वे अगर लडकियाँ थी तो उन्हे लडकियो मे खुशी नही मालूम हुई। उन्हे खुशी तव हुई जव वे अध्यापक या अध्यापिका हुए और जव उनको उस पद के रौव की जानकारी हुई और वे सर्विज्ञ वने। वैसे नवयुवको को इम्तहान मे अच्छे नम्वर आते है लेकिन वाद मे वे इस कठिन दुनिया के साहसपूर्ण प्रतियोगिता मे भाग लेकर अपनी रोजी कमाने से वे जी चुराते है। इसके वाद वे पढाना पेशा वनाते है और अध्यापन कार्य मे अपनी अभिरुचि का अभाव देखकर वे ताज्जुव मे पड जाते हैं। कभी-कभी उनको वडे मेहनती लडके लडकियो को पढाना पडता है जिसमे उनको वडी खुशी मालूम होती हे और जो उनको अपने विद्यार्थी जीवन की याद कराता है। लेकिन वैसे लडके उन्हे ज्यादा अच्छे नही लगते जो साधारण प्रतिभा के होते हैं और ऐसे ही विद्यार्थियो की सख्या भी ज्यादा होती है। उन बच्चो से उनके खुश न रहने का एक कारण यह भी है कि अपने बचपन मे न उनमे वचपन की सी लापरवाही ही थी और न वे उन बच्चो की तरह साधारण प्रतिभा के ही थे।

अत बच्चे जैसे है अध्यापक को उन्हे वैसा ही समझना चाहिये। दूसरी वात यह है कि उसको अपने विद्यार्थियो के नाम और उनकी शक्ल से सुपरिचित होना चाहिये। कई अध्यापको के लिए ऐसा करना सहज होता है और कईयो के लिए अत्यन्त कठिन। लेकिन कहना न होगा कि ऐसा अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिये। मैं खुद इस काम को इतने बुरे ढंग से करता हूँ कि मैं इस स्थिति मे नही हूँ कि उनको इसकी सलाह दूँ कि वे किस तरह उसको करें। फिर भी मैं यह जानता हूँ कि यह जरूर होना चाहिये। लदन विश्वविद्यालय मे एक अध्यापक श्री हाउसमैन थे। वे विद्यार्थियो को न पहचान सकने की अपनी असमर्थता का प्रचार किया करते थे। यह उनकी सबसे वडी भूल थी। लडकियाँ तो उनसे और भी नफरत करती थी खासकर इसलिए कि जब वे उनकी गलतियाँ सुधारते उस समय उनसे बडी बुरी तरह से पेश आते और ऐसा व्यावहर करते जैसे वे उनके शत्रु हो। यही नही दूसरे ही दिन तक वे उनका सब जगह प्रचार कर देते। कैम्ब्रीज मे जाने से पहले अपने बिदाई भाषण में उन्होने इस बात पर अफसोस जाहिर किया और कहा, "अगर मैं आप लोगो को पहचानने में लगा रहता तो मैं दूसरी जरूरी बातें भूल जाता"—जिसका अर्थ यह था कि अगर वे अपने दिमाग को यही सोचने मे बोझिल कर देते कि कक्षा की दो लडकियो मे क्या फर्क है तो शायद वे दूसरी और चौथी विभक्ति (Declension) का अन्तर ही भूल जाते। आप यह सोच सकते हैं कि इस मिथ्या विनम्रता और विद्यादभी ढीठता का उन लडकियो पर क्या असर पडा होगा जिनको उन्होने दुत्कारा था। यह ठीक है कि उसमें कुछ सच्चाई थी। उनके कहने का मतलब यह था कि उनको अपने विद्यार्थियो के नाम याद करने में समय और शक्ति को बर्बाद करना पडता। लेकिन इससे उनका तात्पर्य यह भी था कि यह प्रयत्न अकारथ था और उनके कार्य क्षेत्र से बाहर था।

यही उनकी गलती थी क्योकि उनको पढाने की तनख्वाह दी जाती थी और वह काम भी काम का एक भाग है। बच्चे सच्चे अर्थ मे वयस्क बनने की जी तोड कोशिश करते हैं जिससे वे व्यक्तित्व प्राप्त कर सकें। यदि आप उनको किसी तरह प्रभावित करना चाहते हैं तो अपको उन्हे दिखाना होगा कि आप उन्हे एक व्यक्ति की हैसियत से जानते हैं। इस काम को करने की ओर पहला यह कदम होगा कि आप उनके नाम और उनकी शक्ल से परिचित हो।

लेकिन अध्यापक यह अनुभव करेगा कि हर विद्यार्थी को व्यक्तिगत रूप से ध्यान मे रखना उसके बस से बाहर की बात है। अगर ऐसा सम्भव भी हो तो यह बुद्धिसगत नही होगा। क्योकि इसका मतलब यह होगा कि किसी लडके या लडकी की समस्याओ को असाधारण समझ कर हल किया जाय। उसको हल करना बडा कठिन होगा। अध्यापक इसकी ओर ध्यान देते-देते थक जायेग और वह अपने अनुभव और योग्यता को व्यर्थ गँवा देगा। पढाने की कला भी रोगी के इलाज करने की ही कला की तरह होती है जिसमे यह जानना आवश्यक होता है कि कोई व्यक्ति किस वर्ग (Type) का है अगर वह एक वर्ग (Type) का नही है तो उसमे कौन-कौन से वर्गों (Types) का योग पाया जाता है। अगर किसी डाक्टर को रोगी देखने के लिये बुलाया जाता है तो वह रोगी के व्यक्तित्व के हर पहलू को जानने की कोशिश नही करता—जैसे ऐसे तथ्य कि वह रोगी राज का काम करता है, उसने दो बार शादी की है, शतरज उसे भाता है और चिडियो मे उसे कोई दिलचस्पी नही, आदि। वह जोयस (Joyce) और प्राउस्ट (Proust) जैसे उपन्यास-कारो से बिलकुल भिन्न है जो अपनी रचनाओ मे एक मामूली शिकन (Wrinkle) विचार-धारा या किसी निर्णय को प्रभावित करने वाली हरेक स्मृति को ढूँढने का प्रयास करते हैं। डाक्टर जो चीज़ देखना चाहता है वह लियो पोल्ड ब्लूम (Leopold Bloom) या बर्जो महाशय (Monsieur Bergotte) का नाम नही बल्कि यह कि यह लोवर निमोनिया का एक दिन पुराना केस है। उस पचास साल के आदमी के दिल की गति और खून का दवाव ठीक है, लेकिन उसके शरीर की परिवर्तनशीलता कम है, और वह श्वास के रोग से पहले भी बीमार पड चुका है। वे ही बातें मिल-जुलकर उसके सामने एक समस्या के रूप मे आती हैं। अगर उस रोगी मे कुछ व्यक्तिगत विशेषताएँ हैं—जैसे वह एक किसान वैज्ञा-निक है और लोबर न्यूमोनियाँ को एक मानसिक भ्रम समझता है—तो वह डाक्टर उन बातो पर भी ध्यान देगा। लेकिन उसके चिकित्सा की सफलता इस बात पर आश्रित होगी कि डाक्टर उस व्यक्ति विशेष के बारे में कितनी गहराई तक जाता है और अपने निर्णय निकालता है।

इसी तरह अपने विद्यार्थियो को जानने का सबसे उत्तम ढग यह है कि उन्हे कुछ वर्गों में बाँटा जाय। यह विशेषता अध्यापक मे केवल अनुभव से ही आ सकती है। शुरू-शुरू मे एक अध्यापक यह समझने लगेगा कि हर बालक एक दूसरे से भिन्न है। तब उसे लगेगा कि "रामू" कुछ-कुछ "श्यामू" जैसा है। "हरीश" और "दिनेश" की मानसिक प्रतिक्रियायें

कठिनाई के समय एक दूसरे जैसी होती हैं और उन दोनो की शैली भी आपस मे मिलती जुलती है। तब पाँच साल के बाद उसे ऐसा लगेगा कि उसकी क्लास मे रामू जैसा एक विद्यार्थी है जो उसी तरह की दिल्लगियो पर हँसता है और उसी की तरह चौकोर अक्षरो मे लिखता है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि उसका नाम "नरेन्द्र" है उसके बाल भूरे हैं और उसका घर देश के किसी दूसरे भाग मे है। अगले साल एक दूसरा लडका उसी क्लास मे आयेगा। अगर उस अध्यापक की स्मरण शक्ति अच्छी है तो दस पन्द्रह वर्षो मे उसके पास विद्यार्थी अनेक वर्गो के हो सकते हैं। उनकी वह अलग-अलग या मिली-जुली सूची तैयार कर लेगा जिसमे औसत क्लास के लगभग पिच्चासी प्रतिशत विद्यार्थी आ जाते हैं।

विद्यार्थियो का वर्गीकरण करना एक कठिन काम है और उसे आसान नही समझना चाहिये। अगर सच पूछिये तो सारी मानवता को मुख्य-मुख्य वर्गो मे बाँटना असम्भव-सा लगता है। उदाहरणार्थ सेना मे ऐसा करना बहुत ही कठिन मालूम पडा है जहाँ पट्टे किसान, शहर के तेज लडके, कस्बो के गम्भीर युवक और उसी तरह चरित्र शिक्षा दीक्षा और स्वास्थ्य की दृष्टि से तरह-तरह के लोग एक ही यूनिट मे रक्खे गये होते हैं। लेकिन हमे यह न भूलना चाहिये कि स्कूल और यूनिवर्सिटी हवा मे नही चलाये जाते। अक्सर उनकी स्थापना ऐसी जगहो मे होती है जहाँ दो या तीन इलाके आते हो और जिनकी परम्पराएँ परस्पर मिलती-जुलती हो। इसके अलावा स्कूल, उस जगह के लोग और युवक वहाँ बहुत-सी समताएँ पैदा कर लेते है। इसकी सहायता से अध्यापक को वर्गीकरण मे सहायता मिलती है।

क्या विद्यार्थियो के वर्गीकरण की कोई सूची है जिसकी जानकारी प्रत्येक नया अध्यापक पढाने का काम शुरू करने से पहले कर ले ? क्या उसके लिए यह पता लगाना कि उसकी क्लास मे कितने लडके अन्तरमुखी और कितने बहिर्मुखी प्रवृत्ति के है, सम्भव है ?

लेकिन ऐसी बात नही है। इस तरह के औसतो की सहायता से वर्गीकरण करने का मनोविज्ञान ज्यादा विकसित नही हुआ है। मानसिक रोगो को दूर करने मे प्रयत्नशील मनोवैज्ञानिक अब भी विकृत और परेशान दिमागो के बारे मे अध्ययन कर रहे हैं। जहाँ तक मैं जानता हूँ अब तक वे मूल भूत मनोवैज्ञानिक वर्णनो का ऐसा चित्र तैयार नही कर पाये है जिसकी तुलना स्टार्लिंग के साधारण स्वस्थ शरीर के वर्णनो से हो सके। फिर भी युवको को पढाने वाले अध्यापको को शेल्डन (Sheldon) की (Varities of Temperament) नामक पुस्तक मे इस प्रश्न पर एक महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण मिलेगा।

यह पुस्तक शिकागो में कई साल के परिश्रम के बाद लिखी गयी जहाँ शेल्डन महाशय ने कई हजार विद्यार्थियो के जिस्म की लम्बाई नापी और उनका वजन लेकर उनमें से सौ दो सौ विद्यार्थियो के चरित्र और उनकी प्रकृति के विषय मे मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया। स्टार्लिंग ने जहाँ तक सम्भव हो सका खुले दिमाग से यह अध्ययन किया और बार-बार मालूम पडने वाले कुछ मुख्य तथ्यो के आधार पर जब नये ढग से उनका वर्गीकरण किया तो उन्हे पता

चला कि बहुत से युवको में उन तीन मूल लक्षणो मे से एक जरूर होगा। जैसे वे विद्यार्थी होगे जिनमे मोटेपन के लक्षण दिखाई दे रहे है और जो सुस्त रहते हैं। उन पर उनकी पेटो का ही शासन होता है। ऐसे विद्यार्थियो को उसने विसेरोटोनिक (Viscerotonic) वर्ग मे रक्खा क्योकि उनके जीवन का ढाँचा उनकी आँतो (Viscera) द्वारा निर्धारित होता है। दूसरे वर्ग के विद्यार्थी हट्टे-कट्टे होगे। उनका कन्धा चौडा होगा, पुट्ठा झुका होगा। वे बडे बलवान होगे जैसे उनकी ताकत कभी खतम ही नही होती। उनकी आवाज तेज होगी और उनके हावभाव हमेशा आक्रामक होगे। ऐसे विद्यार्थियो को उसने सोमाटोटोनिक (Somatotonic) वर्ग का बताया। "सोम" (Soma) शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ होता है "सारा शरीर"। इस शब्द का प्रयोग शेल्डन महोदय ने कई और जगहो पर भी किया है। विद्यार्थियो की तीसरी श्रेणी मे उसने दुबले-पतले, चतुर, अत्यन्त सजग युवको को रक्खा। वैसे युवको पर उनकी बुद्धि और नाडी मडल का शासन होता है। ऐसे युवको की श्रेणी को उससे सेरेब्रोटानिक (Cerebrotonic) वर्ग से सम्बोधित किया। तब उन्होने देखा कि इन तीनो वर्गों के युवको का दिमाग भी उनकी शरीर रचना के अनुसार तीन तरह का था। एक तो वे जो आराम पसन्द है और "खुश" रहते है। दूसरे वे बलशाली युवक जो उग्र रूप से "काम" करते है और तीसरे वे जो सिर्फ "देखते और सोचते" रहते हैं।

लेकिन श्री शेल्डन के अधिकतर विद्यार्थी इन तीनो मे केवल एक ही वर्ग मे नही आते थे बल्कि एक से ज्यादा वर्गो मे। इतना सहज कोई भी प्रयोग मानव जीवन की पेचीदगी का ठीक-ठीक परिचय नही दे सकता। उन विद्यार्थियो मे अधिकतर कई वर्गों की मिश्रित श्रेणी मे आते थे। उनमें से कुछ ऐसे थे जो आकार में मोटे थे और खाना-पीना ज्यादा पसन्द करते थे। लेकिन उनमें सोमाटोटोनिक (Somatotonic) वर्गों में आने वाले विद्यार्थियो के भी काफी लक्षण मौजूद थे। (वास्तव मे वे विद्यार्थी पहले दो वर्गो का मिश्रण थे)। दूसरे पहलवान खिलाडी जैसे लगते थे लेकिन उनमे भी नरवस प्रतिक्रियाएँ होती थी। उनके पेट मे हमेशा थोडी पीडा होती रहती है सिर मे दर्द हो जाता है और उनके बदन पर छोटे-छोटे बाल होते हैं। (यह दूसरे और तीसरे वर्गो का मिश्रण है)। प्रत्येक वर्ग मे शेल्डन महोदय ने सात-सात परिणाम जोड रक्खे थे और जिस विद्यार्थी मे वे सातो गुण होते वह उस वर्ग का उत्तम विद्यार्थी माना जाता। सबसे नीचे पहला परिमाण होता और उसमे कुछ गुणो का विवरण होता था। मान लीजिये कि एक अत्यन्त दुबला पतला और नरवस लडका जो सेरेब्रोटोनिक (Cerebrotonic) वर्ग मे सात नम्बर पाकर उस वर्ग का सर्वोत्तम विद्यार्थी बन जाता वही शायद विसेरोटोनिक (Viscerotonic) वर्ग में उसे केवल एक ही नम्बर मिले और वह उस वर्ग मे बिल्कुल नीचे होता।

चूँकि हर कोई मे थोडी बहुत इन तीनो वर्गों के गुण और लक्षण मिलते हैं और चूंकि सबके शरीर मे कुछ नस-नाडियाँ, माँसपेशियाँ और कुछ पाचन और शौच की क्षमता होती है इसलिए शेल्डन महोदय ने अपनी पुस्तक में यह सुझाव दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति को तीन

अको वाली सख्या द्वारा वर्गीकृत किया जा सकता है, जिसमे यह पता लगे कि उनकी प्रकृति मे किन-किन विशेपताओ का सम्मिश्रण है। एक सर्वगुण सम्पन्न और सतुलित व्यक्ति को ४-४-४ अक से सम्वोधित किया जाता। एक मोटा आदमी जिसमे कम से कम पट्ठो (Muscular) और नरवस (Nervous) की प्रक्रिया हो और सम्राट वाईटेलियस (Vitellius) की तरह उसके आतो (Visceral) की प्रक्रिया अधिकतम हो तो उसे ७-१-१ अक से सम्बोधित किया जायेगा। वह बौक्सीग का खिलाडी जिसका बौक्सीग करना ही पेशा है और जो खेल मे अत्यन्त आक्रामक और ताकत का प्रदर्शन करता है उसे १-१-७ अक से सम्वोधित किया जायेगा। आज तक आपने जो सबसे दुर्वल व्यक्ति देखा है अत्यन्त नरवस रहता हे, जो खूब सिग्रेट पीता है, कफ रोग से पीडित रहता है और निपुणता से पियानो बजा सकता है उसे १-१-७ अक से सवोधित किया जायेगा। वह विकट पहलवान जो हाथियो जैसा खाता है और वन्दर की तरह स्फूर्ति से लडता है उसे ७-७-१ अक से सम्बोधित किया जायेगा। अगर हेनरी अप्टम जैसा कोई गुणवान और उलझनपूर्ण व्यक्ति हो तो निश्चय ही उसको ज्यादा नम्बर मिलेगे और उसे ६-७-६ अक से सम्बोधित किया जायेगा। लेकिन वैसे लोग कम होते हैं।

शेल्डन ने अपना यह काम विद्यार्थियो की नाप तोल और उनकी शरीर रचना के अनुसार उनका सूचीपत्र तैयार करके शुरू किया। इसके वाद उन्होने उनके मानसिक गुणो के साथ समन्वय किया। उन्होने देखा कि उनके वीच लगाव था जो स्पप्ट था और जिसे समझने मे गलती नही की जा सकती थी। कुछ ही दिनो मे उनमे इतनी जानकारी हो गयी कि वे यह बता सकते थे कि वह मोटा युवक आगे चलकर अपने व्यवहार मे शिष्टाचार पसन्द होगा, पारिवारिक जीवन मे आनन्द लेगा और मोटे सिगार या पाइप पीने वाला बनेगा। वह हृष्ट पुष्ट व्यक्ति आगे चलकर एक सादगी पसन्द आदमी होगा जो दुर्घटनाओ का शिकार कर सकता है या जो आक्रामक अपराध करेगा। वह विद्यार्थी सेरेब्रोटोनिक (Cerebrotonic) वर्ग मे आता वह बडा चिंतित स्वभाव होगा, जो सगीत और कला मे गहरी अभिरुचि रक्खेगा, उसे नीद कम आयेगी और वह स्वप्न ज्यादा देखा करेगा और उसे योजनाओ और नित्यक्रम से नफरत होगी। शर्लक होम्स (Sherlock Holmes) ठीक वैसा ही आदमी था। शेल्डन महोदय ने जो तथ्य प्रस्तुत किये है उनके आधार पर होम्स के प्रशसक इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि एक सेरेब्रोटोनिक (Cerebrotonic) होने की हैसियत से कोकैन (Cocain) लेता होगा और वह वायलिन बजाना जानता होगा लेकिन शायद उसने पाइप कभी नही पी होगी। पाइप पीने वाला तो वास्तव में वाट्सन था जो फुटबाल का खिलाडी था और जिसे सोमाटोटोनिक (Somatotonic) वर्ग गिनना चाहिए। वह कोनी डॉयल का ही वडा रूप था वही कोनन डॉयल जिसने शर्लक होम्स जैसा आदमी बनाया जो उसके ठीक उल्टा था।

अगर किसी आदमी मे इन वर्गों में से किसी एक वर्ग मे निहित गुण हो और वह भी अत्यधिक परिमाण में तो वैसे लोगो को छाँटना आसान है बनिस्वत उनके जो उन सभी

वर्गों मे निहित गुणो से आशिक रूप से सम्पन्न हो। उन लोगो के मानसिक धारणाओ का उनके शरीर रचना से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। किसी अध्यापक के लिए यह जानना उतना ही जरूरी है कि उसका विद्यार्थी कौनसा काम नही कर सकता, और उससे कौनसा काम उस समय तक कराने की उम्मीद नही की जानी चाहिये जब तक उसके लिए खास कारण न हो, जितना यह कि वह विद्यार्थी किसी काम को करने का निर्णय पहले से ही कर चुका है और जिसको वह खास तौर से जरूरी समझता है। मुझसे अगर सच पूछे तो मुझे शेल्डन महोदय का यह ढग सबसे ज्यादा दुर्बल वहाँ मालूम पडा जहाँ वह सकुचित और तग हो जाता है। शायद वे यह समझते हैं कि बच्चे जन्म से ही किसी चीज को करने की प्रतिज्ञा लेकर आते हैं और उससे वे कभी भी डिगते नही। उनके जीवन मे सगति, भोजन, और उनके स्वभाव का जो प्रभाव उनके गुणो पर पडता है उनके बारे में शेल्डन महोदय कुछ नही कहते या बहुत कम कहते हैं। कई अध्यापक अपने अनुभव से यह जानते हैं कि किस तरह एक लडका जो पहले दुबला पतला, नरवस, बहुत ज्यादा सचेत और कई तरह से सेरेब्रोटोनिक (Cerebrotonic) था, अपने घर से बाहर आकर दो साल बाद दूसरे युवको की सगति मे रहकर सख्त, सबल हट्टा कट्टा और सोमाटोटोनिक (Somatotonic) हो जाता है। इसी तरह हर आदमी युवावस्था से जब झझौली आयु का हो जाता है तो उसमे भी वैसे ही परिवर्तन आ जाते हैं। जैसे झुकी हुई पसलियो वाला जैसे तगडा सीने वाला युवक, जो फुटबाल का प्रमुख खिलाडी था, आयु ढलने के साथ उसका पेट उभरने लगता है, और भोजन से भरा उसका उदर चारो ओर मोटी चर्बी से घिर जाता है। और शेल्डन महोदय ने स्वय ऐसा ही परिवर्तन लडकियो में भी अनुभव किया है यद्यपि उन्होने लडकियो की ज्यादा चर्चा नही की है। वैसी लडकियो को उन्होने जिस वर्ग मे शामिल किया है उसको उन्होने (PPJ) नाम दिया है जिसका तात्पर्य (Pyknic) (या मोटी शरीर वाली) है और जो उनसे व्यवहारिक मजाक करने मे प्रयोग मे लाया जाता है। जब वैसी एक लडकी अट्ठारह साल की होगी उस समय वह पतली, नीली, आँखो वाली सुन्दर होगी, बल के कारण उसका शरीर चचल होगा, वह आमोद-प्रिय होगी, और हर समय वह कोई नया खेल खेलती रहती होगी। उसके कई चाहने वाले होगे और उनमें से कोई पुरस्कृत होता है। विवाह के बाद उसके तीन बच्चे हो जाते हैं और उसका वजन लगभग ढाई मन हो जाता है।

यद्यपि व्यवहार मे लाने मे कई उलझने पैदा हो जाती हैं फिर भी शेल्डन महोदय का वर्गीकरण का यह ढग अध्यापको के लिए एक महत्त्वपूर्ण सहायता देता है। निश्चय ही किसी किस्म का वर्गीकरण आवश्यक है। एक कुशल अध्यापक, यह जाँच करने के लिए कि वे कौन से लक्षण हैं जिनसे चरित्र का परिचय मिलता है, अपना काम सबसे छोटी जमात से शुरू करेगा। दो, वैसे बच्चो के व्यक्तित्व की छिपी हुई समानताओ को ढूँढेगा जो वैसे देखने में एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं और वह अपने निष्कर्षो को पिछले रकार्डो की तुलना से और उससे यह देखकर पता करेगा कि उसकी क्लास छोडने के बाद उसके लडके कैसे निकले।

लेकिन मुख्य वर्गों और उपकरणो को जान लेने के वाद भी कुछ ऐसे लोग वच जायेंगे जो किसी वर्ग मे नही आते। ये ही अध्यापक के जीवन की खुशी, उसके दुख और भाव-लोक हैं।

विद्रोही विद्यार्थी सदा व्यक्तित्वपूर्ण नही होते। कई बार कई स्कूलो में विद्यार्थियो का विद्रोह परपरागत समझा जाता है और वैसी क्लास को वहुत ही बुरा समझा जाता है जहाँ कम-से-कम तीन विद्यार्थी ऐसे न हो जो अध्यापक के अनुशासन का विरोध न करें और जिस बात को वे वार-बार जोर देकर कहे उसका खडन न करें। नही लेकिन व्यक्तित्वपूर्ण विद्यार्थी तो वे हैं जो न तो वहाव में वह जायें और न उसके विरोध मे हो जाते है। बल्कि वे हैं जो एक पक्ष से दूसरे पक्ष को तेजी से मुडते हैं, पानी मे किनारे पर मडराते रहते हैं, कभी अपने को कीचड मे दबा लेते हैं और कभी डैनो के सहारे ऊपर आकाश मे सैर करते हैं। वैसे लोग किसी भी क्लास मे हो सकते हैं और समाज के किसी भी वर्ग मे हो सकते हैं। उनका यह निरालापन किसी भी रूप मे मुखरित हो सकता है। हो सकता है वह इतना क्लिष्ट हो जाय कि वर्षो वाद तक भी समझ में न आये या ऐसे छोर मे पहुँच जाय जहाँ यह नुकसानदेह सिद्ध हो। वे शान्त, शोर मचाने वाले, बेहूदे, चतुर, मिलनसार, एकान्तचित्त, सुन्दर, डरपोक, लज्जाशील, तेज या मूढ हो सकते हैं। प्राय एक सनकी विद्यार्थी अपनी क्लास मे सदा फसाद मचा सकता है और कभी-कभी वह एक हजार साधारण विद्यार्थियो से भी अधिक मूल्यवान सावित हो सकता है। लेकिन सभी वर्गीकरणो की सबसे बडी त्रुटि या खतरा यह है कि वे आपको भी सनकी नही वना सकते। हो सकता है कि वे आपको उस व्यक्ति को तग करने पर भी वाध्य कर दे क्योकि वह व्यक्ति किसी भी वर्ग मे नही आता और न उसके लायक कोई वर्ग ही है। इसके विपरीत अपने वर्गीकृत मित्रो से उसका अस्तित्व ज्यादा होता है।

क्योकि ऐसे सनकी लोग अपना व्यक्तित्व रखते हैं इसलिए उनके साथ व्यवहार करने के लिए कोई साधारण नियम उपयोग में नही लाया जा सकता। लेकिन अध्यापको को कुछ सलाह ध्यान मे रखनी उचित होगी।

सबसे पहले आप यह उम्मीद रक्खें कि क्लास का एक-दो विद्यार्थी निश्चय ही सनकी स्वभाव का होगा भले ही शुरू में यह बात मालूम न पडे। कभी यह न समझें कि आप सिर्फ विभिन्न वर्गों के विद्यार्थियो को ही पढा रहे हैं। हो सकता है वह शान्त और मुस्कान भरी सुन्दर बालो वाली लडकी एक दिन कठोर व्यगकार निकले और विषैले सर्प की तरह डक मारे। कमजोर आँखो और गठीले बदन वाला युवक, जो देखने में निश्चेष्ट और ऊँघता हुआ मालूम पडता है वह आपकी हर बात को तोलता और याद करता जाता हो इस उम्मीद में कि वह यह सिद्ध कर दे कि आप एक भोगवादी जेसुइट (Jesuit), तानाशाही, साम्यवादी या वाल की खाल उतारने वाले हैं। एक तत्पर, मुहाँसो वाला, अल्हड, जो धीरे से सभी वातें लिख देता है सारी क्लास से तीन-चार साल आगे हो सकता है। आप उन सबो को देखें। देखिये आदमी एक स्थायी उलझन है।

जब आपने सनकी विद्यार्थियो को चुन लिया हो तो उनके साथ आप बडी सावधानी से वर्ताव करे। वे विस्फोटक तत्वो के समान हैं। उनमे कुछ तो भावुक होते है और दूसरो मे सुस्ती और धीरे-धीरे चलते रहने की आदत होती है। आप भरसक उनके उन स्वभावो को खत्म करना नही चाहते लेकिन आप सारी शक्ति ऐसे काम मे लगाना चाहते हैं—वह शक्ति अकारथ न जाय और कही वह आपकी भुजा और हाथ समेत शक्ति के हथौडे के नीचे पड कर नष्ट न हो जाय।

कई विद्यार्थी ऐसे होते हैं जिन्हे आपको व्यक्तिगत रूप से जानना चाहिए। बिगडे हुए विद्यार्थियो में जितने दोष होते है उनमे से अधिक से अधिक आपको दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इन दोषो मे कई भडक उठने वाले दुर्गुण भी शामिल है जिनको अलग करने की भावना मात्र से ही विस्फोट हो सकता है। लेकिन इस भय से प्रयास को छोडना नही चाहिये क्योकि वह उचित है और कभी-कभी इससे भयानक तनाव कम हो जाता है।

जब ऐसे सनकी विद्यार्थियो के सम्पर्क मे आप आयें तब आपको अपनी बातचीत, हरकतो को सावधानी से तोलें, उसे स्पष्ट और प्रत्यक्ष करे। जहाँ तक हो सके आप उन्हे ऐसा बनायें जिससे उन्हे जाँचा जा सके। कई विद्यार्थी ऐसे होते है जो किसी बात को जीवन भर संचित किए रहते हैं जो एक ही बात पर अडे रहते है। आप कभी देखेंगे कि आपकी जवान से निकला हुआ कोई शब्द उनके दिल मे इस तरह घर कर जाता है और उसका जीवन इस तरह बदल जाता है जिसकी आपने आशा नही की थी। मेरे एक सहपाठी है जो ज्यादा सनकी मिजाज नही है। लेकिन उनको भी एक नयी पुस्तक या किसी नये पाठ्यक्रम पर अपने लेक्चर करने से पहले अपने दिल मे सन्देह होता, निराशा होती। वैसे विषयो पर भी पढाने से पहले जिन पर उनको पारगत समझा जाता है—इसका कारण यह है कि जब वे युवक थे और अपनी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे तो अक्सर अपने अध्यापक से अपनी योग्यता का मूल्याकन करने के लिए कहते। अध्यापक तब उत्तर देता "तुम्हारी नीव मे रेत भरा है"। मेरे मित्र अब यह जान गये है कि हर व्यक्ति के दिमाग की नीव में कुछ रेत या मिट्टी होती है और स्वय उनका आलोचक भी इस बात से भली भाँति परिचित थे कि उनमें भी मेरे मित्र से कही अधिक कमज़ोरियाँ थी। लेकिन जो हतोत्साहन उनको अपने जीवन के शुरू मे मिला वह आज भी उनकी प्रगति मे बाधक है और एक वार तो वे उसके कारण बर्बाद होते-होते बचे। वे आज भी सोचते हैं कि वास्तव मे उनके अध्यापक का वह उद्देश्य न था।

कभी-कभी आप अपने सनकी विद्यार्थियो को मोटे-मोटे दो भागो मे बाँट सकते हैं। एक तो वे मजबूत विद्यार्थी जिनको नेतृत्व की आवश्यकता होती है और दूसरे वे कमजोर विद्यार्थी जिन्हे प्रोत्साहन देने की जरूरत होती है। विद्यार्थियो के इन दोनो समूह को आपसे अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे आध्यात्मिक भोजन की जरूरत है। जो दुर्बल हैं उनको यह भोजन थोडी मात्रा मे मधु और मलाई, हँसी और सहानुभूति के साथ दी जानी

लेकिन मुख्य वर्गों और उपकरणो को जान लेने के वाद भी कुछ ऐसे लोग वच जायेंगे जो किसी वर्ग में नही आते। ये ही अध्यापक के जीवन की खुशी, उसके दुख और भाव-लोक हैं।

विद्रोही विद्यार्थी सदा व्यक्तित्वपूर्ण नही होते। कई वार कई स्कूलो मे विद्यार्थियो का विद्रोह परपरागत समझा जाता है और वैसी क्लास को वहुत ही बुरा समझा जाता है जहाँ कम-से-कम तीन विद्यार्थी ऐसे न हो जो अध्यापक के अनुशासन का विरोध न करें और जिस बात को वे बार-बार जोर देकर कहे उसका खडन न करें। नही लेकिन व्यक्तित्वपूर्ण विद्यार्थी तो वे हैं जो न तो वहाव मे वह जायें और न उसके विरोध मे हो जाते हैं। वल्कि वे हैं जो एक पक्ष से दूसरे पक्ष को तेजी से मुडते हैं, पानी मे किनारे पर मडराते रहते हैं, कभी अपने को कीचड मे दवा लेते हैं और कभी डैनो के सहारे ऊपर आकाश मे सैर करते हैं। वैसे लोग किसी भी क्लास मे हो सकते हैं और समाज के किसी भी वर्ग मे हो सकते हैं। उनका यह निरालापन किसी भी रूप मे मुखरित हो सकता है। हो सकता है वह इतना क्लिष्ट हो जाय कि वर्षो बाद तक भी समझ मे न आये या ऐसे छोर मे पहुँच जाय जहाँ यह नुकसानदेह सिद्ध हो। वे शान्त, शोर मचाने वाले, बेहूदे, चतुर, मिलनसार, एकान्तचित्त, सुन्दर, डरपोक, लज्जाशील, तेज या मूढ हो सकते हैं। प्राय एक सनकी विद्यार्थी अपनी क्लास मे सदा फसाद मचा सकता है और कभी-कभी वह एक हजार साधारण विद्यार्थियो से भी अधिक मूल्यवान सावित हो सकता है। लेकिन सभी वर्गीकरणो की सवसे बडी त्रुटि या खतरा यह है कि वे आपको भी सनकी नही वना सकते। हो सकता है कि वे आपको उस व्यक्ति को तग करने पर भी वाध्य कर दे क्योकि वह व्यक्ति किसी भी वर्ग मे नही आता और न उसके लायक कोई वर्ग ही है। इसके विपरीत अपने वर्गीकृत मित्रो से उसका अस्तित्व ज्यादा होता है।

क्योकि ऐसे सनकी लोग अपना व्यक्तित्व रखते हैं इसलिए उनके साथ व्यवहार करने के लिए कोई साधारण नियम उपयोग मे नही लाया जा सकता। लेकिन अध्यापको को कुछ सलाह ध्यान मे रखनी उचित होगी।

सबसे पहले आप यह उम्मीद रक्खे कि क्लास का एक-दो विद्यार्थी निश्चय ही सनकी स्वभाव का होगा भले ही शुरू में यह बात मालूम न पडे। कभी यह न समझें कि आप सिर्फ विभिन्न वर्गों के विद्यार्थियो को ही पढा रहे हैं। हो सकता है वह शान्त और मुस्कान भरी सुन्दर बालो वाली लडकी एक दिन कठोर व्यगकार निकले और विषैले सर्प की तरह डक मारे। कमजोर आँखो और गठीले बदन वाला युवक, जो देखने में निश्चेष्ट और ऊँघता हुआ मालूम पडता है वह आपकी हर बात को तोलता और याद करता जाता हो इस उम्मीद में कि वह यह सिद्ध कर दे कि आप एक भोगवादी जेसुइट (Jesuit), तानाशाही, साम्यवादी या बाल की खाल उतारने वाले हैं। एक तत्पर, मुहाँस वाला, अल्हड, जो धीरे से सभी बातें लिख देता है सारी क्लास से तीन-चार साल आ हो सकता है। आप उन सबो को देखे। देखिये आदमी एक स्थायी उलझन है।

जब आपने सनकी विद्यार्थियो को चुन लिया हो तो उनके साथ आप बडी सावधानी से वर्ताव करें। वे विस्फोटक तत्वो के समान हैं। उनमे कुछ तो भावुक होते है और दूसरो में सुस्ती और धीरे-धीरे चलते रहने की आदत होती है। आप भरसक उनके उन स्वभावो को खत्म करना नही चाहते लेकिन आप सारी शक्ति ऐसे काम मे लगाना चाहते है—वह शक्ति अकारथ न जाय और कही वह आपकी भुजा और हाथ समेत शक्ति के हथौडे के नीचे पड कर नष्ट न हो जाय।

कई विद्यार्थी ऐसे होते हैं जिन्हे आपको व्यक्तिगत रूप से जानना चाहिए। बिगडे हुए विद्यार्थियो में जितने दोष होते है उनमे से अधिक से अधिक आपको दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इन दोषो मे कई भडक उठने वाले दुर्गुण भी शामिल है जिनको अलग करने की भावना मात्र से ही विस्फोट हो सकता है। लेकिन इस भय से प्रयास को छोडना नही चाहिये क्योकि वह उचित है और कभी-कभी इससे भयानक तनाव कम हो जाता है।

जब ऐसे सनकी विद्यार्थियो के सम्पर्क मे आप आये तब आपको अपनी बातचीत, हरकतो को सावधानी से तोलें, उसे स्पष्ट और प्रत्यक्ष करें। जहाँ तक हो सके आप उन्हे ऐसा बनायें जिससे उन्हे जाँचा जा सके। कई विद्यार्थी ऐसे होते है जो किसी बात को जीवन भर सचित किए रहते है जो एक ही बात पर अडे रहते है। आप कभी देखेगे कि आपकी जबान से निकला हुआ कोई शब्द उनके दिल मे इस तरह घर कर जाता है और उसका जीवन इस तरह बदल जाता है जिसकी आपने आशा नही की थी। मेरे एक सहपाठी है जो ज्यादा सनकी मिजाज नही है। लेकिन उनको भी एक नयी पुस्तक या किसी नये पाठ्यक्रम पर अपने लेक्चर करने से पहले अपने दिल मे सन्देह होता, निराशा होती। वैसे विषयो पर भी पढाने से पहले जिन पर उनको पारगत समझा जाता है—इसका कारण यह है कि जब वे युवक थे और अपनी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे तो अक्सर अपने अध्यापक से अपनी योग्यता का मूल्याकन करने के लिए कहते। अध्यापक तब उत्तर देता "तुम्हारी नीव मे रेत भरा है"। मेरे मित्र अब यह जान गये है कि हर व्यक्ति के दिमाग की नीव में कुछ रेत या मिट्टी होती है और स्वय उनका आलोचक भी इस बात से भली भाँति परिचित थे कि उनमें भी मेरे मित्र से कही अधिक कमजोरियाँ थी। लेकिन जो हतोत्साहन उनको अपने जीवन के शुरू मे मिला वह आज भी उनकी प्रगति मे बाधक है और एक बार तो वे उसके कारण बर्बाद होते-होते बचे। वे आज भी सोचते हैं कि वास्तव में उनके अध्यापक का वह उद्देश्य न था।

कभी-कभी आप अपने सनकी विद्यार्थियो को मोटे-मोटे दो भागो मे बाँट सकते हैं। एक तो वे मजबूत विद्यार्थी जिनको नेतृत्व की आवश्यकता होती है और दूसरे वे कमजोर विद्यार्थी जिन्हें प्रोत्साहन देने की जरूरत होती है। विद्यार्थियो के इन दोनो समूह को आपसे अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे आध्यात्मिक भोजन की जरूरत है। जो दुर्बल है उनको यह भोजन थोडी मात्रा में मधु और मलाई, हँसी और सहानुभूति के साथ दी जानी

चाहिए। दूसरो को अगर कुछ शक्तिदायी भोजन न मिले तो उनको शिकायत रह जाती है। अक्सर अगर आप सहृदय और प्रसन्न चित्त हैं तो हो सकता है कि किसी विद्यार्थी को जो कुछ भी आप आध्यात्मिक शिक्षा देगे वह उसे ग्रहण कर लेगा, उसका विकास होगा और वह अधिक पाने के लिए शोर मचायेगा और जब तक आप उसकी इच्छा पूरी नही करते वह आपका विरोध करेगा। यही नही वह अपने मे बढने वाली असीम शक्ति का प्रयोग करेगा जिसके बढने का वह आभास करता है। उस अवस्था मे आप अपने को दोष देगे कि आपने अपना पूर्वाग्रह क्यो रखा, अपने विषय की जानकारी क्यो न रक्खी ? आपका विषय आपको आगे बढने का रास्ता नही दिखाता और आपने अपना ज्ञान निर्धारित पाठ्यक्रम तक ही सीमित रक्खा। उदीयमान विद्यार्थियो को ज्ञान का भूखा रखना अपराध है लेकिन कई अध्यापक केवल अपनी सुस्ती के कारण यह अपराध हर वर्ष करते हैं।

सनकी मिज़ाज वाले लोगो मे वे लोग बडे विकट होते हैं जिनकी धारणायें निश्चल होती हैं। शान्त युवक जो पागलपन की पीडा से ग्रस्त हो और टेढी होठ वाली औरत जिनके दिमाग मे सैकडो किस्म को परस्पर विरोधी और शक्तिशाली भावनाएँ एक साथ काम करती रहती हैं—इसके दृष्टान्त हैं। ये लोग भयानक बन सकते है। लगभग सभी पादरी और अधिकतर डाक्टर इसके शिकार होते हैं। ईसाई धर्म सभाओ मे एक या दो लगभग चालीस वर्ष की आयु वाली औरतें होती हैं जो पादरियो की ओर एक प्रेमी की तरह शान्त चित्त देखती रहती हैं और जो उनकी हरकतो और बातो को अपनी बुद्धिचातुर्य से एक मकडी की तरह ऐंठकर कहती हैं। कई डाक्टरो की रोजी इसी वजह से बर्बाद हो गयी क्योकि मानसिक रोग से पीडित किसी रोगी औरत को हमेशा उनसे यही शिकायत रहती थी कि डाक्टर उनकी ओर बहुत ही कम ध्यान देता था और वह इस बात को साबित करने पर तुल गयी कि उसका चिकित्सक एक प्राणघातक अनाडी डाक्टर था। दूसरी जगहो की तरह यहाँ भी शिक्षा और मनोविश्लेषण का गहरा सम्बन्ध है।

ऐसे मामलो को हल करने का एक आला नियम है। **आप अपने सम्बन्ध बिलकुल अवैयक्तिक रक्खें।** अपने धधे के क्षेत्र से बाहर कभी न जायें। ऐसी भेंट से सचेत रहे जिसमें विद्यार्थी आपसे निजी रूप से मिलना चाहता हो और आपसे सचमुच "अपनी सारी समस्याएँ बताना चाहता हो।" किसी निर्धारित समय पर अपने पढने के कमरे मे आप उनसे मिलें। उनसे बात उतनी ही देर तक करे जितनी देर तक आपने समय दिया हो, आवश्यक बातें नोट कर लें और अपना द्वार इस तरह खुला छोड दें जिससे मालूम हो कि आप हर दस मिनट पर अपने किसी सहयोगी के आने की आशा करते हो।

मेरे किसी अध्यापक मित्र के पास एक बार एक लडकी मिलने आयी। वह उनके कमरे में गयी और उसने यह धमकी दी कि अगर उन्होने उसके तीसरे डिवीजन के नम्बरो को कम से कम इतना न बढाया जिससे वह दूसरे डिवीजन मे हो जाय तो वह खिडकी से कूद पड़ेगी। मैंने उनसे पूछा कि फिर उन्होने क्या किया ? उन्होने उत्तर दिया, "मैंने

उसके लिए खिडकी खोल दी लेकिन वह लडकी कूदी नही।"

लेकिन ऐसा करके वे एक भयानक जोखिम मोल ले रहे थे। वे उस लडकी के जीवन और उसकी बुद्धि मे दाव लगा रहे थे। और कहना न होगा कि स्वय वे अपने व्यवसाय को भी खतरे मे डाल रहे थे। अक्सर मैंने इस घटना पर विचार किया है और मैंने अनुभव किया है कि मैं इसको एक ही तरह से समझा सकता हूँ। वह यह कि वे अध्यापक एक शान्त और प्रख्यात तर्कशास्त्री थे और उन्हे मालूम था कि उनका ऐसा व्यवहार उस लडकी के होश ठीक कर देगा। उनके सिवा किसी दूसरे व्यक्ति ने अगर ऐसा किया होता तो इसका नतीजा खतरनाक होता और उससे हत्या की प्रेरणा मिलती।

ये बाते असाधारण बाते नही है। कई प्रकार की भावनाओ से बोझिल होकर, ऐसे लोग या यहाँ तक की सामान्य मानसिक स्थिति के विद्यार्थी भी कभी-कभी अजीब ढग से व्यवहार करने लगते है जैसे अकारण आहे भरना, ठोकर मारना और तकल्लुफ करना। लेकिन एक ही प्रतिभावान विद्यार्थी को देख कर वैसे-वैसे छ (बिगडे) विद्यार्थियो की हरकतो का प्रभाव जाता रहेगा। वैसे विद्यार्थी को, चाहे वह लडका हो या लडकी, आसानी से उसे सम्भाला नही जा सकता। और अगर ऐसा किया जा सका तो उससे असीम पुरस्कार भी प्राप्त होते है। वैसे विद्यार्थियो की ठीक ढग से शिक्षा देना अध्यापक के प्रमुख कामो मे एक है। ऐसा करने की अध्यापक को तैयारी भी करनी चाहिये। इन तैयारियो के लिए सुझाव तो सारी पुस्तक मे दिया गया है लेकिन यहाँ एकाध छोटी-मोटी बाते कही जा सकती है।

इसमे सबसे ज्यादा महत्त्व की बात अभाव प्रदर्शन (Affnegative) है। प्रतिभाशाली विद्यार्थियो को आप अपने ही जैसा बनाने की कोशिश न करे। आरम्भ मे ऐसा करना असम्भव होगा, क्योकि हर आदमी मे और प्रतिभाशाली विद्यार्थियो मे भी बडा अन्तर होता है। ऐसा करना अगर सम्भव भी हो तो उसको करना मूर्खता होगी क्योकि मनुष्य की रचनात्मक शक्ति का अधिकतर भाग उसकी अपनी अद्वितीयता (Uniqueness) और आरम्भिक ज्ञान से ही मिलता है। इसके विपरीत जो कोई किसी दूसरे के व्यक्तितव के साचे मे अपने को ढालने लगता है वह साधारणतया अपने शेप जीवन मे, अपने अन्दर की स्वतन्त्र और रचात्मक भावनाओ को सुधारने और दबाने की कोशिश करता है। या वह भयकर रचनात्मक ढग से विद्रोह करता है और यह कहता है, "मैं क्या करता हूँ उसकी परवाह मैं नही करता हूँ। मैं केवल X जिस बात को बतलाते हैं उसको गलत सिद्ध करना चाहता हूँ (यहाँ X का अर्थ है "मेरी माँ", "मेरा बाप" या "मेरा शिक्षक"।)

दूसरी ओर आप उसको अपना हुनर सिखाने में सकोच न करें। उसको अपनी जानकारियो से अवगत करायें। ऐसा लगता है कि कई अध्यापक इस बात को भूल जाते हैं कि किसी परिपक्व व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) की लम्बी पढाई और उसके सग्रहित अनुभवो से उस विद्यार्थी को कितनी सहायता मिल सकती है जो असहाय होकर उन पुस्तको को देखता है जिसको उसने पहले कभी नही पढा या उन परीक्षणो (Experiments) को

करने की कोशिश करता है जिनको पहले कभी नही किया गया । अगर आपने विद्यार्थी को, ससार मे पदार्पण करने से पहले, उसे दुनियादारी और अध्यव्यवसाय के नुसखे बता देता है तो अध्यापक ने उसे अपना विद्यार्थी बना लिया । और यह जानकारी उसे आप ही से मिल भी सकती है। जब तक वह इस ससार मे रहेगा आपके प्रति स्थायी रूप से ऋणी होगा ।

तीसरी बात यह है कि आप उस विद्यार्थी को पूरा काम और सोचने की पूरी सामग्री दें । अगर आपको इस बात का विश्वास हो कि वह प्रतिभावान है और उसका स्वास्थ्य अच्छा है तो आप उसे ज्यादा से ज्यादा काम दे । उतना जितना वह कर सके । अगर वह उतना काम न भी करे तो भी वह यह जान लेगा कि उतना काम उसे किसी न किसी दिन करना है । शायद आपको पता न चले, कि आपकी आज्ञा के बाद, अगर उसने रूसो की रचनाएँ पढी हैं तो वह उनकी पुस्तक "The social contract" की एक पुरानी प्रति खरीद कर उसके नोट तैयार करेगा और कहेगा "Mem read rousseau this weak" पहले तो धीरे-धीरे और बाद मे बडे उत्साह के साथ वह उसे पढेगा और रूसो की बहुत सी पुस्तको को जैसे "The social contract, confessions, The new Méloise और Emile पढ डालेगा ।

अगर उसको करने के लिए पूरा काम मिल जाय और उसके स्वास्थ्य पर उसका कोई बुरा प्रभाव न पडे तो उसके लिए सबसे बडा खतरा यह होगा कि कही उसकी शक्ति व्यर्थ न जाय । वह जो काम भी देखेगा उसको करने के लिए तत्पर होगा, वह हर बाड को लाँघ जायेगा, हरेक पहाडी पर चढ जायेगा दौडकर हर घाटी को पार कर जायेगा और तब उसके पल्ले कुछ भी न पडेगा । सिवा इसके कि वह यह अनुभव करे कि वह थक गया है और उसे छला गया है । थामस वुल्फ (Thomas wolfe) के एक उपन्यास मे उनका ही एक अलौकिक (Weird) चित्र दिखाया गया है जैसा कि वे हारवर्ड जाते समय जरूर रहे होगे । वर्षों तक मानसिक दुर्भिक्ष से तप्त रहने पर भी उनमे प्रबल भूख थी । वह रात के समय एक यूनिवर्सिटी के बडे पुस्तकालय मे जाया करते थे । वहाँ एक हजार ताखो (Shelves) मे से एक पुस्तक निकालते और पागल की तरह पढते । पुस्तको के ढेर में निंदित विचार उनको पागल बना देते थे । जितना ही ज्यादा वे पढते उतना ही उनको अनुभव होता कि वे कम ज्ञान रखते हैं । जितनी ही अधिक सख्या मे उन्होने पुस्तकें पढी उतना ही उन्हे यह मालूम होता कि वे बहुत ज्यादा पुस्तकें नही पढ सके । दस साल में उन्होने कम-से-कम बीस हजार पुस्तकें पढी । यह सख्या जान-बूझकर कम बतायी गयी है। भले ही इस बात पर विश्वास न हो लेकिन ऐसा हुआ । ड्राइडेन ने बेन जानसन के बारे मे यह कहा था, "दूसरे आदमी पुस्तकें पढते हैं लेकिन वह (जानसन) पुस्तकालय को ही पढ़ा करते थे ।"— वही बात इस व्यक्ति के साथ भी थी । पुस्तको का यह भयानक पागलपन भी उसके दिल और दिमाग को आराम और शान्ति न दे सका । दूसरी तरफ जो कुछ उन्होने पढ़ा उससे उनका क्रोध और उनकी निराशा और भी बढ़ गयी ।

वे पागलो की तरह सैंकडो और हजारो पुस्तके पढ चुके फिर भी उनको किताबी बनने की कोई अभिलाषा न थी। किसी छपी (Printed) हुई चीज को इस पागलपन से पढना कोई विद्वता नही। उनकी आन्तरिक अभिलाषा यह थी कि वे मनुष्य के अनुभवो पर लिखी गयी सभी पुस्तकें पढते। उनके दिल मे सदा यही विचार रहता कि दूसरी पुस्तकें उनका इन्तजार कर रही हैं। इससे उनका दिल टुकडा-टुकडा हो जाता। जिस तरह चिडियो के पेट से अन्तडियाँ निकाली जाती हैं उसी तरह वे पुस्तको की अन्तडी निकालते थे। पहले वे पुस्तको की दुकान पर मँडराते या रात के समय पुस्तको से भरी पुस्तकालय की ताखो (Shelves) के बीच घूमते। वे पढते, पुस्तक हाथ मे रखकर देख-भाल करते और हर पन्ने को उलटते समय यह कहते, "Fifty seconds to do that one Damn you, we'll see ! You will, will you ?" अर्थात् (उसे पचास सेकेंड मे पढंना है। तुम जहन्नुम मे जाओ, हम देख लेंगे। तुम करोगे, क्या तुम कर लोगे ?) और इस तरह वे अगले पन्ने पर पहुँच जाते। नि सन्देह वे पुस्तकालय मे कुछ नही पढते न कुछ ग्रहण करते। उनका हर थाली मे से थोडा-थोडा लेकर खा लेना वैसा ही था जैसे किसी भूखे आदमी को थोडा-थोडा खिलाकर हमेशा उसको भूख की याद दिलायी जाती रहे। यह बात भले ही करुणाजनक और हँसी लाने वाली ही हो लेकिन वुल्फ इस प्रकार एक अच्छा लेखक नही बना। उसके बहुत बाद भी वुल्फ अपनी योग्यता को उसी तरह या उससे भी अधिक बुरी तरह उपयोग करते अगर स्क्रिब्नर्स पब्लिशिंग हाउस के मैक्सवेल पर्किन्स, जो एक प्रशसनीय अध्यापक थे, उनको यह नही सिखाया होता कि अपनी शक्ति का किस तरह उपयोग करना चाहिये।

अच्छे विद्यार्थियो की शक्ति का दुरुपयोग न होने देने के लिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि उनके लिए काम करने की योजना बना दी जाय। उनसे केवल इतना ही कह देना पर्याप्त नही होगा कि ये सब बातें उनको कुछ आगे चलकर मालूम हो जायेंगी। अच्छा होगा अगर आप उनसे ऐसा न कहे। यह उसे हतोत्साहित करेगा। लेकिन आपको ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिये जिससे तीन या छ महीनो के बाद उसे यह पता चल सके कि उसने कितनी प्रगति की है और जिसको जानकर वह खुश या दुखी हो सके। उसे आप इस लायक बना दे जिससे वह इसका हिसाब-किताब रख सके। उसको यह लिखना सिखायें। इस परीक्षण के जो नोट वह तैयार करता है उनको आप उससे ले लें या आप उससे कहे कि जो कुछ वह पढता है उसका हफ्तेवार ब्योरा बनाये या आप उसको कुछ ऐसे लेख पढा दे जो जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रो में उसका पथ-प्रदर्शन करने के लिये बडी साव-धानी से बनाया गए हो। तीन महीने के बाद उसे थोडा आराम करने दें, उसे बधाई दें और जितनी देर वह खुश है उसी अर्से मे उसकी सारी प्रगति से उसे अवगत करा दें। इससे उसको अप्रत्याशित प्रोत्साहन का अनुभव होगा, उसके दिमाग मे अपने को काम करने की योजना की रूपरेखा ज्यादा दृढता से बैठ जायेगी, उसके मन मे बडे-बडे विचारो को अकुरित करने में योग मिलता है, और उसमें यह प्रेरणा देगा कि वह किसी विशेष क्षेत्र में

आगे काम करने की ऐसी सलाह दे जिसकी खुद आपको जानकारी न हो। इससे इस बात की भी सुरक्षा रहेगी कि उसमे मलीनता की भावना का रोग न लगने पावे जिससे अक्सर प्रतिभाशाली विद्यार्थी पीडित हो जाते हैं। किसी नयी समस्या को न सुलझा सकने मे जब वह शक्तिहीनता और उदासीनता का अनुभव करे और आपके पास आकर यह कहने लगे कि उसने प्रत्यक्षत यह देख लिया कि उसके सारे प्रयत्न असफल हो चुके हैं तो आप उसे यह दिखाये कि उस अर्से मे उसने कितनी प्रगति की और अगर आप उचित समझें तो यह भी उसे बता दें कि किस तरह उसका वह काम पहले पूरा किये गये काम से सम्बद्ध होगा। शायद वह इससे सतुष्ट न हो। बच्चो के विचार जल्दी बदलते रहते हैं इसीलिए शायद वे ऐसा दिखाने की कोशिश करते हैं जैसे वे बडे अडिग विश्वास वाले हैं। लेकिन आगे बढ जाने के बाद वह फिर पीछे की तरफ नजर दौडायेगा, अपने निकट भूत (Immediate past) की ओर दृष्टि दौडायेगा जहाँ उसे अपना, अपने हाथ से निर्मित, अद्वितीय, अक्षय अतीत दिखाई देगा। वह काम जो अब उसके जीवन का एक अग बन चुका है। और तब वह फिर नयी स्फूर्ति के साथ अपने भाग्य का निर्माण करने में जुट जायेगा।

ऐसे विद्यार्थियो से आपको जरूर परिचित होना चाहिए। चाहे वे तीव्र बुद्धि हो या बुद्धू या कमजोर, आपके लिए सभी सनकी विद्यार्थियो को जानना अनिवार्य है। अपने बचाव के लिए यह आवश्यक है कि आप उनमे से कुछ को तो ठीक उसी तरह जान ले जिस तरह किसी कुशल डाक्टर के पास पेरेनोयिक (Paranoiac) रोग से पीडित जब कोई नया रोगी आता है तो वह उस रोगी के पिछले डाक्टर से टेलीफोन पर उसकी कमजोरी और इलाज का पूरा ब्यौरा माँगता है। शेष साधारण विद्यार्थियो को व्यक्तिगत रूप से जानना आपके लिए ज्यादा जरूरी नही है।

अन्त में एक बात और ध्यान मे रक्खे—वह यह कि शेष साधारण विद्यार्थियो को कभी यह महसूस न होने दें कि वे सब वर्गहीन हैं उनका अपना अलग-अलग कोई व्यक्तित्व नही। यह बिल्कुल गलत बात होगी। अगर वे व्यक्तिगत राय चाहते हो तो सहर्ष और खुले दिल से उनकी मदद करना आपका कर्तव्य है। यदि उनका झुकाव किसी खास ओर है तो आपसे उस विषय पर विचार-विनिमय करने मे उन्हे बडी खुशी होगी। फिर भी हरेक विद्यार्थी को जानना अपको अपना कर्तव्य नही समझना चाहिये क्योकि औसत विद्यार्थी अपने क्लास ही मे अधिक आसानी से बाते सीखने की क्षमता रखते हैं और सभी दूसरे विद्यार्थियो से दोस्ती रखते हैं। इस वजह से उन पर खास ध्यान देने की कोई आवश्यकता नही रहती।

अभी तक हमने इस बात पर विचार किया है कि एक अच्छे अध्यापक को अपने विषय का ज्ञान होना चाहिए और कुछ हद तक अपने विद्यार्थियो की जानकारी होनी चाहिए'। लेकिन उनमें एक दूसरी योग्यता भी होनी जरूरी है। वह यह कि उसे चाहे वह (स्त्री हो या पुरुष) बहुत-सी दूसरी बातें भी जाननी चाहियें। एक योग्य अध्यापक या

अध्यापिका वह व्यक्ति है जिसमे असाधारण बौद्धिक विविधता हो, जिस के ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत और विविध हो। बैंक या बीमे के काम की तरह शिक्षा का काम भी एक ऐसा व्यापार नही समझा जा सकता जिसमे नियम और तथ्यो को ज्यादा याद रखना पडता है। जिस तरह बैंक का मैनेजर इन नियमो और तथ्यो को रोज लागू करता है, उस पर अध्यापक को नही करना पडता। दूसरे लोग काम से शाम को घर लौट कर रोजमर्रा की गपशप में खो जाते हैं, रेडियो, अखबार या जासूसी कहानियो से जी बहलाते, एक औसत नागरिक होने की हैसियत से अभिमान का अनुभव उसी प्रकार की दिनचर्या द्वारा अध्यापको से और कार्यशील बुद्धिमान बच्चो को प्रेरणा देने की आशा करना असभव-सा है। जिस समाज मे वे रहते हैं उसके औसत स्त्री और पुरुष की अपेक्षा स्कूल और विश्वविद्यालय के अध्यापको को बच्चो के बारे मे ज्यादा सोचना, देखना और उनके लिए समय देना चाहिये। इसका सिर्फ यह मतलब नही कि उन्हे भाषा की ज्यादा अच्छी जानकारी हो और वे ऐसे विषय भी जानें जो दूसरे नही जानते, जैसे स्पेनिश साहित्य और पानी के जीव जन्तुओ की जानकारी आदि। बल्कि इसका मतलब यह है कि वे उस दुनिया के बारे में ज्यादा जानें, उनकी विस्तृत अभिरुचि हो, विभाग की समस्याओ की ओर उनका झुकाव ज्यादा हो, कला जिसमे आनन्द का अक्षय भडार है उसके प्रति उनमे उत्साह हो और अपना सारा जीवन वे आत्मा की सर्वव्यापकता को जानने मे बिता दे। यहाँ तक जीवन के कृत्रिम सुखो के प्रति भी उनकी तीव्र अभिरुचि होनी चाहिए। अक्सर हम देखते हैं कि अधिकतर लोगो का विकास तीस चालीस साल की उम्र के बाद रुक जाता है जिसका मतलब यह हुआ कि उनके जीवन मे स्थिरता आ जाती है। वे उस नाविक की तरह हो जाते हैं जो अपनी पतवार पर हाथ रखकर शान्त बैठ जाता है और उस पतवार से अपनी नाव खेने की बजाय उस नाव को उसी गति से चलने के लिए छोड देता है जो गति उसमे पहले ही से होती है। वह अपनी शक्ति उस मे नही लगाता और इस तरह उसकी जीवन नौका की गति घटती चली जाती है और अन्त मे रुक जाती है। किसी अध्या-पक को ऐसा करने का ख्याल स्वप्न मे भी नही लाना चाहिए। उसका काम तो यह है कि वह ससार के विस्तृत और महत्त्वपूर्ण क्षेत्र की चहल-पहल और प्रगतियो को सहज भाषा मे बच्चो तक पहुँचाता रहे। जैसे-जैसे साल बीतते जाते हैं। वैसे-वैसे शिक्षक को यह आशा करनी चाहिये कि वे उन लोगो को और भी ज्यादा अच्छी तरह समझाने की क्षमता रखते हैं।

समाज में शिक्षक के दो विशेष काम होते हैं जिनकी वजह से वह रोजगार पेशे वालो, व्यापारी और मजदूरो से भिन्न होते हैं।

पहला काम तो यह है कि स्कूल या यूनिवर्सिटी और ससार के बीच उसे सामजस्य स्थापित करना पडता है। बच्चो के लिए यह समझना सचमुच बडा कठिन होता है कि वे क्लासो में क्यो बन्द रक्खे जाते हैं और त्रिकोणमिति जैसे विषय उन्हे क्यो सिखाये जाते हैं जबकि "वास्तविक ससार" क्लास की खिडकियो के बाहर गुनगुनाता, हँसता और

शोर मचाया करता है। बिचारे मान तो जाते हैं लेकिन वहाँ रहने मे उनको अपने पर बहुत दबाव डालना पडता है। लेकिन अगर उन्हे उसी स्थिति मे छोड दिया जाय और अगर वे यह समझते रहे कि उनकी क्लास उसी तरह के कैदखाने की तरह हैं जिसमे गिलहरियो को बन्द किया जाता है और जिसमे से बाहर निकलने से पहले उन्हे कुछ साल तक बेकार अन्दर चक्कर काटना पडता है और इसका उनको कुछ लाभ नही होता तो वैसी पढाई से उनको या तो कुछ भी फायदा न होगा या अगर हुआ तो बहुत ही कम। हो सकता है इससे उनके मन मे बडा क्रोध हो उनको साफ-साफ यह समझाया नही जा सकता कि त्रिकोणमिति पढाना आगे चलकर कहाँ तक उनके लिए उपयोगी होगा। कुछ हद तक इसकी वजह यह है कि उस समय कोई भी यह नही जानता कि उनमे से कौन आगे चलकर पुल बनाने वाला इजीनियर या अद्भुत आविष्कारक बनेगा। एक यह भी वजह है कि वे उस समय अपनी प्रौढावस्था के एक धुंधले चित्र की भी परिकल्पना नही कर सकते। लेकिन जिस तरह भी सम्भव हो उन्हे यह समझाने का यत्न करना चाहिए कि बचपन की दुनिया और प्रौढावस्था की दुनिया मे अटूट सम्बन्ध है और दोनो एक दूसरे को शक्ति और ज्ञान प्रदान करते हैं।

अक्सर विषय को "उद्देश्यपूर्ण" बनाकर ऐसा किया जा सकता है। जर्मनी मे बच्चो को गणित की शिक्षा ऐसे सवाल को देकर दी जाती थी कि एक गैर जर्मन पुल को उडाने के लिए कितने पौण्ड बारूद की जरूरत पडेगी। आजकल किसी आधुनिक विदेशी भाषा को पढाने के लिए किसी अध्यापक को अनिवार्य रूप से उस भाषा मे छपने वाले अखबारो और फिल्मो का उपयोग करना चाहिए। लेकिन यह सिद्धान्त हर विषय पर लागू नही किया जा सकता। इसमे कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय भी शामिल हैं। कुछ विषयो की शिक्षा मे ऐसा करने से बच्चो की बुद्धि खोखली हो जायेगी और उनमे बनावटी बातें आ जायेंगी।

ऐसा करने का सबसे बढिया ढग यह होगा कि अध्यापक अपने को कभी विषय से भटकने न दे। अपने को उद्देश्यपूर्ण बनावे। किसी कठिन विषय को विद्यार्थी नौ हजार बार भी याद कर सकते हैं अगर उसको पढाने वाले अध्यापक मे उत्साह और क्षमता हो। अगर उन विद्यार्थियो ने उस विषय को अपनी इच्छा से नही चुना हो फिर भी वे ऐसा कर सकते हैं। यदि एक विद्यार्थी अपने उस प्रोफेसर की ओर गौर से देखता है जो मध्ययुगीन इतिहास पढाते हैं और यह समझ जाता है कि वे मध्यकालीन इतिहास में तो बडे दक्ष हैं लेकिन शेष सभी विषयो को जब वे पढाने लगते हैं तो तबियत ऊबने लगती है तो वह यह निष्कर्ष निकालेगा कि मध्यकालीन इतिहास पढने से आदमी भौदू बन जाता है। इसके ठीक उलटा अगर वह विद्यार्थी यह देखता है कि उसके अध्यापक को समकालीन दुनिया के प्रति गहरी अभिरुचि है और वे अपनी शिक्षा के कारण उसके बारे में काफी जानते हैं, यह समझने लगे कि उनके बौद्धिक जीवन के प्रयोगो ने उनको निरर्थक और बहुत पुराना बना देने की जगह उन्हे ज्यादा बद्धिमान और योग्य बना दिया है तो वह विद्यार्थी बिना

और किसी सबूत के इस नतीजे पर पहुँचेगा कि मध्यकालीन इतिहास एक महत्त्वपूर्ण विषय है।

एक कुशल अध्यापक रोचक व्यक्ति होता है चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। इसलिये वे अपने विद्यार्थियो के लिए किसी विषय को उतना ही रोचक और सहज बना देगे जितने रोचक ढग से वे बाते करते हैं या कोई रोचक पत्र लिखते हैं। पढाने के काम मे ज्यादा बोलने की जरूरत पडती है। अगर आपके दिमाग मे दुनिया की नयी-नयी और रोचक बाते आती हैं तो आप पुराने तर्क और तरीको को छोडकर किसी विषय को नये-नये ढग से प्रस्तुत करेंगे।

प्रसग और अनुभवो से आपका भाषण जगमगा उठेगा और आपके श्रोता यह समझ कर ऊबने नही पायेंगे कि उनके मन मे बिलकुल वही विचार हैं जो आप कहने जा रहे हैं। पढाने मे व्याख्या का काम बहुत करना पडता है। हमे अज्ञात को ज्ञात बातो से और जो अनिश्चित है उसे जीवित मानकर समझाना पड़ता है। साधारणत, बच्चो को बहुत कम ज्ञान होता है। इसलिए जब आप कोई ऐसी बात उन्हे समझाते हैं जिसकी आपको अच्छी जानकारी है और उस तथ्य को आप उनके दिमाग मे डाल देते हैं जिसको वे जानने की कोशिश कर रहे हैं तो उनको बडी खुशी होती है। पेरिस मे रहने वाले मेरे एक मित्र जब अपने छोटे विद्यार्थियो को डॉन क्वीजोट (Don Quixote) के विषय मे पढाते तो उन्हे उन विद्यार्थियो को यह समझाने में बडी कठिनाई होती कि क्वीजोट केवल एक बावला ही नही था जो बूढा था और जिस पर तरस आती थी जिसे जेल मे बन्द कर देना चाहिये था। उसके बाद उन्होने बच्चो को साँडो की लडाई का वर्णन सुनाया जो उन्होने सेविल (Seville) मे देखा था। उसके बाद उन्होने स्पेनियो की शान और आदर्शों की चर्चा की जिस तरह कोर्नेल के दुखान्त रचनाओ मे वर्णित है। तब उनके विद्यार्थी यह समझने लगे कि ससार की बडी-बडी काव्य-कृतियो के स्तर को देखते हुए उनका अपना स्तर ज्यादा उलझा हुआ नही था और हो सकता है कि डॉन क्वीजोट (Don Quixote's) का पागलपन उसके विचित्र स्वभाव के कारण हो। उसके बाद उसी बात से कई दूसरी रोचक और उपयोगी बातो का समारम्भ होता है।

अध्यापक का दूसरा काम यह है कि वह युवावस्था और परिपक्वता मे सामजस्य स्थापित करे। उसे वयस्क जीवन की ऐसी व्याख्या करनी होती है जिससे युवको मे वयस्क भावना आये। ऐसा करने के लिए उसको युवा और वयस्क दोनो बनना चाहिये।

कुछ अध्यापको को ऐसा करना बडा कठिन मालूम पडता है। स्कूल के कुछ अध्यापक "स्कूलो के लिए ही" रह जाते हैं। इसका मतलब यह है कि उनके क्षेत्र की परिधि एक तरफ तो वहाँ होती है जहाँ प्रारम्भिक पढाई खत्म होती है और दूसरी तरफ वहाँ जहाँ से कालेज की शिक्षा का आरम्भ होता है। अर्थात् जहाँ एक ओर तो लडके अपनी प्रारम्भिक शिक्षा खत्म करके आते हैं और दूसरी तरफ अपनी शिक्षा यहाँ खत्म कर कालेजो में चले जाते हैं। स्कूल के क्रिकेट मैच और छात्रवत्ति के लिए होने वाले इम्तहान जैसी छोटी-

छोटी घटनाएँ उनके जीवन की महान् घटनाएँ होती हैं। किसी बिल्कुल मामूली-सी बात या घटना को घटो वे बडे उत्साह और चाव के साथ समझते हैं लेकिन अगर उनसे किसी नयी पुस्तक या तात्कालिक राजनीति के बारे मे पूछा जाय तो वे उलझन मे पड जाते हैं। उसके ठीक उल्टे वे शिक्षक हैं जो युवको की आशाओ, भय और चहल-पहल के बारे मे चिन्ता बहुत करते हैं और जो शायद ही कालेज के मैगजीनो को पढते या कभी स्कूल मे होने वाले मैच देखते हैं। वे अपना सारा दिन बच्चो और बडे लडको के बीच बिताना अपनी इज्जत के खिलाफ समझते हैं। उनको अपने शिष्यो को देखकर खुशी होगी यदि वे पचास साल के बूढे हो जाये।

माना कि बचपन और वयस्कता, इन दोनो अवस्थाओ के बीच सामजस्य स्थापित करना एक दुस्तर काम है, फिर भी यह साध्य भी है और आवश्यक भी। सभी सर्वश्रेष्ठ अध्यापक भी ऐसा ही करते हैं। चाहे भले ही कोई व्यक्ति कानून की दृष्टि से उम्र मे बिल्कुल पैतीस या अडतालीस साल का हो लेकिन यथार्थत वह व्यक्ति पूर्णरूपेण या एक-मात्र अपनी असली उम्र का नही होता। आप कुछ ऐसे वर्ग के लोगो पर गौर करे जो नाना प्रकार से अपना मनोरजन करते हैं। उनमे आप देखेंगे कि वे इस तरह अपनी असली उम्र से कई साल छोटे मालूम पडने लगे। हममे से हरेक के अन्दर अनेक व्यक्तित्व अन्तर-निहित होते हैं। इनमे से कुछ व्यक्तित्व तो बचपन जैसे तरुण होते हैं और उनमे से सिर्फ एक ही व्यक्तित्व ऐसा होता है जो वर्तमान व्यक्तित्व से उम्र के लिहाज से सामान्य दीखे। विविध व्यक्तित्व देखने मे हमारे वर्तमान व्यक्तित्व की धरातल से ज्यादा गहराई मे नही होते। एक कुशल अध्यापक हमेशा व्यक्तित्व के तरुण स्तरो से जीवन मे शक्ति और विविधता का आरोप करता है। ये गुण अब तक भी जीवित होते हैं और वह अध्यापक यह बात भली-भाँति जानता है कि अपनी वयस्कता को खोये बिना ही वह बाल्यकाल या तरुणावस्था अनुभव कर सकता है।

उदाहरण के लिए वह न केवल उन बातो पर ध्यान देगा वरन् उनको याद रक्खेगा जो उसे वयस्क होने पर प्रिय हैं बल्कि उन बातो को भी याद रक्खेगा जो उसे बचपन मे आती थी। यदि वह ऐसा करता है और उसका प्रयोग बढाने के लिए दृष्टान्त के रूप में करता है, और उनको अपनी परिपक्व बुद्धि से समझाता है, तो उसके पढाने का काम सहज हो जायेगा और उसकी व्याख्या स्पष्ट हो जायेगी। बच्चो की विचार शक्ति बहुत गहरी नही होती और उनका विचार हमेशा तर्कयुक्त नही होता। लेकिन नये विचारो के प्रति उनकी गहरी दिलचस्पी होती है। इसलिये वयस्को की अपेक्षा वे भडकीले विज्ञापनो नये सनकी लोगो और जरूरी समाचारो की अपेक्षा विचित्र तरह के समाचारो में ज्यादा ध्यान देते हैं। वे इन चीजो को महत्त्व की दृष्टि से नही देखते। लेकिन इस अनुभूति का कारण यह है कि अब तक जीवन की गहरी बातो का उन्हे अनुभव नही हुआ है और खेल कूद की उम्र नही बीती। अत किसी गूढ बात को समझाते हुए उन्हे इन बातो से अवगत करा कर भ्रम दूर किया जा सकता है। जैसे अगर इस समय (इस पुस्तक को लिखते

समय) कोई प्राचीन यूनानी "अत्याचारियो" के विषय मे पढा रहा हो तो वह मार्शल टीटो का उदाहरण देकर उन महत्त्वाकाक्षी और स्वेच्छाचारी शासको का वर्णन कर सकता है। यह उदाहरण एकदम उपयुक्त नही है, फिर भी यह सहायक सिद्ध होगा।

अध्यापक के सबसे महत्त्वपूर्ण गुणो मे से हास्य मुख्य है। इस गुण के बहुत से लाभ हैं। सबसे पहले तो इससे विद्यार्थी एकाग्रचित्त होते हैं और अपने पाठ के बारे मे सजग रहते हैं क्योकि उन्हे यह तो मालूम नही होता कि आगे उनको क्या-क्या बतलाया जाने वाला है। दूसरा लाभ इससे यह है कि उनको इससे कितने ही महत्त्वपूर्ण विषयो को सही रूप में देखने का मौका मिलता है। मान लीजिये कि आप उन्नीसवी सदी के आरम्भ के अँग्रेजी साहित्य पर विचार कर रहे हैं। अगर आप विद्यार्थियो को केवल वर्डसवर्थ के काव्य-रचना की सादगी या शैले के विचारो की धुँधली और अग्राह्य ऊँचाई के बारे मे ही बताते हैं तो आप उनके सामने उनका अधूरा चित्र ही प्रस्तुत करते हैं। दूसरी ओर अगर आप चार्ल्स लैब के बारे मे पढाते समय चार्ल्स लैब का एक विचित्र और हँसमुख के रूप मे वर्णन करें, वर्ड्सवर्थ की किसी दूसरी हास्यपूर्ण लडकपन का चित्र प्रस्तुत करने वाली सुखान्त कविता पेश करें, बायरन की भी ऐसी ही रचनाएँ उनको पढकर सुनाएँ तब आप इस निष्कर्ष पर पहुँचेगे कि ये लोग साँचे मे ढले हुए "प्राचीन" नही बल्कि समृद्धिशाली और विविध व्यक्तित्वपूर्ण लोग थे। इससे आप, उन्होने क्या हासिल किया उसकी श्रेष्ठता और उनकी असफलताओ के दुख दोनो को, और अच्छी तरह समझा सकेंगे।

यह ठीक है कि विज्ञान जैसे कुछ ऐसे विषय भी हैं जिनमे हँसी दिल्लगी का कोई स्थान नही। कोई चतुर अध्यापक वैसे विषय भी पढाते समय बीच-बीच मे हँसी की कोई बात कभी-कभी छेड देगा क्योकि वह हँसी के महत्त्व को समझता है और यह जानता है कि पचपन मिनट का काम और पाँच मिनट की हँसी का परिणाम निरन्तर दो घण्टे तक किये गये विविधता शून्य कार्य के बराबर है।

कुछ अध्यापक क्लास के विद्यार्थियो को काबू मे रखने के लिये हँसी को एक अच्छा साधन मानते हैं। यह एक भयानक धारणा है। जो अध्यापक ऐसा समझते हैं कि वे उसका उपयोग ठीक उसी तरह करते हैं जिस तरह उन्नीसवी सदी के अध्यापक छडी का उपयोग टेढे लडको को सीधा करने और जो सुस्त थे उनको तेज बनाने के लिये करते थे। खास तरह की गलतियो के लिये वे लडको को धिक्कारने लगते हैं और फिर उनकी खिल्ली उडाते हैं। धीरे-धीरे उनमे ऐसी योग्यता आ जाती है जिससे वे हर तरह के व्यक्तिगत दोषो को पहचानने और उसका बुरी तरह प्रचार करने लगते हैं। अगर उनकी क्लास मे कोई ऐसा लडका न हुआ जिस पर वे कटाक्ष कर सके तो उनको दुख होगा और तब वे एक ऐसे निर्दोष बालक को केवल इसलिये पकड लेंगे। वे अध्यापक बिना खिल्ली उडाये नही पढा सकते वैसे अध्यापक उन पूर्वी राजाओ की तरह होते हैं जिनके महल के द्वार पर हर समय एक-न-एक अपराधी सूली पर चढाये जाने के लिये तैयार रहता हो जिससे सभी नागरिक यह जान जाये कि राजा के शब्द ही कानून हैं। उन्हे शायद इस उपमा से सतोष होगा

क्योकि साधारणतया वे इतने तुच्छ और निम्नता की भावना के शिकार होते हैं कि वे राजा की तरह बडा वनना पसन्द करते हैं। मैं वैसे अध्यापक की तुलना पश्चिमी देशो मे पायी जाने वाली मैग्पी नामक चिडिया से करना उचित समझता हूँ जो किसी घोडे की पीठ पर के घाव के दाग को नोच कर उसमे से कच्चा मास निकालती है और तव तक चिल्ला-चिल्ला कर खाती जाती है जव तक वह घोडा दर्द से व्याकुल होकर किसी चट्टान के नीचे न भाग जाये।

किप्लिग को अपनी वाल्यावस्था मे वडे कष्ट सहने पडे। सवसे पहले उन्हें अपने सरक्षको से ऐसा वर्ताव मिला (इसके लिए "समथीग ऑफ माइसेल्फ" नामक पुस्तक का दूसरा अध्याय देखें) और उसके वाद अपने अध्यापक से वैसा वर्ताव मिला। इस अध्यापक को उन्होने अपनी पुस्तक "स्टौकी एन्ड कम्पनी" मे उसे "किग" (राजा) का काल्पनिक नाम देकर अमर बना दिया। तथाकथित "किग" का किप्लिग के प्रति जो आचरण रहा उसके कारण वह किप्लिग को मानसिक दृष्टि से सचेष्ट वनाये रखता था और किप्लिग ने लिखा है कि इस परिस्थिति से उन्होने आनन्द प्राप्त किया और लाभान्वित हुए। लेकिन इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि किप्लिग मे भीरुता और अतिभावुकता की भावना बढती गयी जिसका उसके वयस्क जीवन मे घातक परिणाम हुआ। इसके कारण उनमे एक वहुत ही विचित्र विचार को आस्था मिली कि उपहास की विदारक शक्ति, एक राजनीतिक शास्त्र का काम कर सकती है जिससे विरोधियो को पगु वनाया जा सकता है। (उदाहरण के लिए "लिट्ल फौक्सेज़", "ऐज़ इज़ी ऐज़ ए, वी, सी" और "दि विलेज दैट वोटेड दी अर्थ वाज़ फ्लैट" को देखें) इसी वजह से अधिकारवाद मे उनका अधविश्वास था और किसी दूसरी विधिहीन प्रणाली के प्रति करीब-करीब उतना ही उपहास और तिरस्कारपूर्ण दृष्टिकोण था। यदि उनका किम के लामा जैसा ही कोई अध्यापक रहा होता तो वे बुद्धिमान और सुखी होते। लेकिन उनकी आत्मा का कुछ अश एक ऐसे स्कूल मास्टर की सेवा मे समर्पित हो चुका था जो शायद कुछ दूसरे स्कूल मास्टरो की तरह वडे-वडे शीशो वाला चश्मा लगाने वाले उस अधिक प्रतिभावान विद्यार्थी को बुरा मानते थे और अपने को वढा-चढाकर रुयार्ड किप्लिग मे हीनता की भावना पैदा करते थे।

अक्सर इस काम के लिये व्यग और कटाक्ष का प्रयोग किया जाता है। लेकिन हँसी नही। शिक्षा मे हँसी का ज्यादा गूढ और उपयोगी महत्त्व होता है। इसका काम है शिक्षक और शिक्षार्थी मे एक कडी का काम करना और यह कडी भी हँसी खुशी के जरिये। किसी वयोवृद्ध अध्यापक ने एक वार कहा था, "मैं समझता हूँ कि उस दिन की पढाई व्यर्थ चली गयी जिस दिन हम सब एक बार दिल खोलकर हँस नही लेते।" उनका तात्पर्य यह था कि जिस दिन सभी साथ मिलकर हँसते हैं तो उनमे वडे और छोटे, शिक्षक और शिष्य, मजदूर और ड्राइवर, जेलर और कैदी सबो में भेद खत्म हो जाता है और वे एक दल बन जाते हैं जिसमें हर व्यक्ति अपने जीवन का आनन्द उठाता है।

प्रसिद्ध फ्रेंच उपन्यासकार और नाटककार जुल्स रोमेस ने अपने जीवन का आरम्भ एक सिद्धात बनाकर किया जिसका उपयोग उसने अपने अनेक नाटको और कहानियो मे किया। उस सिद्धात मे यह भावना निहित है कि व्यक्तियो का एक समूह उस समय तक अलग-अलग आदमियो की तरह रहता है जब तक कोई घटना उनको एक सूत्र मे पिरो न दे और तब वे सामूहिक ढग से रहते, सोचते और अनुभव करते हैं जो अपने ढग का निराला होता है। उसमे एक अकेले आदमी के बल और पराक्रम से कही अधिक शक्ति होती है। पर इसमे सन्देह नही कि कभी-कभी यह सामूहिक भावना ठीक उसी तरह निरर्थक और घृणित होती है जिस तरह कोई दगा या अकारण भय होता है। लेकिन रोमनो का विश्वास है कि कभी-कभी यह बडा सुन्दर अनुभव होता है। यह हम लोगो का कर्तव्य है कि ऐसे अनुभव जब कभी भी हो, उन्हे अच्छी तरह समझे। ऐसी सभा मे जाना जिसमे किसी ओजपूर्ण वक्ता ने भाषण दिया हो और जिसमे एक उदार प्रस्ताव पास किया गया हो, अपने मित्रो के साथ उस टीम का अभिवादन करना जो बडे यत्नो के बाद जीती है और जिस टीम मे आप ही के मित्र खेल रहे हो, एक अच्छे से नये नाटक के तैयार किये जाने पर उसमे भाग लेने वाले अभिनेताओ और खेल का रसास्वादन करने वाले दर्शको की भावनाओ का खुद भी अनुभव करना, किसी शहर मे घूमकर यह अनुभव करना कि स्वय आप भी व्यस्त और चहल-पहल भरी जिन्दगी का भाग हैं—ये सब बडी सुन्दर भावनाएँ हैं और इनमे हम कभी यह महसूस नही करते कि हम निम्न हैं।

रोमेस अपने इस सिद्धान्त को एकमतवाद (Unanimism) कहते थे। इस सिद्धान्त के भी अपने खतरे हैं। इसमे बडी आसानी से व्यक्ति और उसकी योग्यता का महत्त्व घट जाता है। अपने सहयोगियो को छोड बाकी सब लोगो को गैर समझा जाने लगता है और वे इस सिद्धान्त मे विश्वास करने लगते हैं कि बहुत से लोगो की जो राय होती है वह हमेशा ठीक ही होती है। रोमेस ने देखा कि इस सिद्धान्त का दुरुपयोग हो सकता है और चूँकि उनको मालूम था कि बडे-बडे कलाकार हमेशा एक ही सिद्धान्त मे बँधे नही रह सकते, उन्होने इस सिद्धान्त के प्रचार पर अपनी शक्ति नही लगाई। लेकिन उनका यह विचार उनकी कई सर्वोत्तम रचनाओ मे मिलता है और कई तरुण लेखको को उससे प्रोत्साहन भी मिला है। कुछ समय के लिये रोमेस ने कई फ्रेंच स्कूलो मे अध्यापन का काम किया। उनकी "मेन ऑफ गुडविल" नामक रचना मे सबसे प्रशसनीय पात्र क्लान रिकार्ड नामक एक स्कूल मास्टर है। इसमे अन्य दूसरे अध्यापक भी आते हैं लेकिन वे स्पष्टत अध्यापक नही पादरी, डाक्टर और कवि हैं। यद्यपि एकमतवाद की पहली झलक उन्हे पेरिस नगर की व्यस्त गलियो मे मिली लेकिन मुझे विश्वास है कि जो अनुभव उन्हे शिष्य और अध्यापक की हैसियत से हुए उसी से उन्होने उसकी पुष्टि की। पढाने के सुखद अनुभव अध्यापक को होते हैं। ऐसा अनुभव उसे उस क्षण होता है जब अध्यापक यह महसूस करता है कि उसके हरेक शब्द को विद्यार्थी एकाग्रचित्त होकर सुन

रहे हैं। ये विद्यार्थी ऊबे हुए या अतिपरायण व्यक्तियो की तरह, तथ्यो को घोटा लगाकर, अर्धनिद्रावस्था और किसी तरह नोट किये गये शब्दो को रटने वाले नही होते बल्कि इस वातावरण मे शिक्षक और शिष्य दोनो को ही प्रेरणा मिलती है और प्रश्नोत्तरो के द्वारा दोनो के दिमाग सचालित होते रहते हैं। इस दिशा में स्वय अध्यापक को विद्यार्थियो से सत्य की खोज करने का सबल मिलता है और इस कार्य मे नेतृत्व करने की शक्ति मिलती है। इस तरह पढते, सुनते और विचार करते हुए शिक्षक और शिष्य दोनो ही मानव विवेक का अविश्रान्त कार्य सम्पादित करते हैं।

आपके विद्यार्थी भी इसका अनुभव करेगे। अगर ऐसी भावना उनमे हुई तो वह सभी विद्यार्थियो मे मिलेगी। इस भावना को पैदा करना या उसके जन्म मे योग देना अध्यापक के मुख्य कर्त्तव्यो मे से एक है। यह भावना उस समय तक पैदा नही हो सकती जब तक उनमे, अध्यापक और शिक्षार्थी के एकमतवादी सम्बन्ध का आदान-प्रदान न हो। इस सम्बन्ध को स्थापित करने का एक साधन हँसी-खुशी है। किसी क्लास मे जब अध्यापक और उसके विद्यार्थी एक साथ हँसते है तो थोडी देर के लिये व्यक्तित्व, हैसियत और आयु का अन्तर खत्म हो जाता है। वे एक इकाई बन जाते हैं। जिसमे वे अपने सयुक्त अनुभवो और खुशियो का आनन्द लेते हैं। यदि अध्यापक उस सहभावना को पुनर्जागृत या स्थापित करने मे सफल हो गया या उसे विचार कार्य करने की ओर निर्दिष्ट कर सका, तो उसका श्रम सफल कहा जा सकता है।

इसको हम परम्परागत मनोविज्ञान भी कह सकते हैं। मनुष्य मे दो प्रबल भावनाएँ काम करती हैं जिनका प्रयोग शिक्षा के काम मे किया जा सकता है। इनमें से पहला है मनुष्य की सामूहिक रूप से रहने की प्रवृत्ति और दूसरा है उसका खेल से प्रेम। आप पचास आदमियो को यह काम दे कि वे चार घटे में किसी पहाडी को पार करें और घाटी को पार कर पास के शहर में चले जाये। अगर वे इसको अलग-अलग करे तो उनमे से कईयो को उसमें ज्यादा समय लगेगा और लगभग सभी थक जायेंगे। अगर वे सारे एक साथ काम में जुट जायेंगे तो आप देखेंगे कि वे कम थके होगे और काम जल्दी खत्म हो जायगा। लेकिन अगर उनकी दो टीम बना दी जायँ और उस काम को जल्दी करने मे उनकी होड लगे या वे एक [illegible] ते गाते का[illegible] शायद ही थकान का अनुभव करेगे। वे एक साथ [illegible] अनुभवो [illegible]। ठीक उसी तरह अगर आप तीस बच्चो का ए[illegible] दें ज[illegible] कि वे एक साथ आगे बढ रहे हैं और अगर आ[illegible] ने [illegible] मे अपना योग दे तो वे बहुत [illegible] कर [illegible] र दिया [illegible] तो उस परि[illegible] प [illegible] काम अवस्था मे व [illegible]। तद [illegible] लगता है जब [illegible]

हमने अभ [illegible]

की जिम्मेदारियो मे से एक है। यदि उसका स्वभाव प्रसन्नचित्त है तो वह यह सामजस्य स्थापित कर सकता है। छोटे यह समझते हैं कि बडे मद स्वभाव के होते हैं और बडे भी दूसरी ओर छोटो को नादान समझते हैं। दो भिन्न-भिन्न उम्र वालो की आपसी गलतफहमी की यही खास वजह है और शायद बिना दबाव के वे कोई काम नही करते हैं। फिर भी अगर कोई चतुर अध्यापक अपने प्रसन्नचित्त स्वभाव का इस ढग से उपयोग कर सकता है जिससे विद्यार्थियो को यह महसूस हो कि पच्चीस साल से ज्यादा उम्र के सब लोग शुष्क और मद स्वभाव नही होते तो वह देखेगा कि उसने विद्यार्थियो के सच्चे स्वभाव को पहचान लिया। उसे मालूम होगा कि बच्चो की नादानी वास्तव मे नादानी न होकर उनकी वेढगी स्थिति है जिसको वे महसूस करते हैं और जिस दोप की जाँच हो सकती है और जिसे खत्म भी किया जा सकता है। इससे दोनो पक्ष एक दूसरे को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे और एक साथ काम करेंगे। एकता ही शिक्षा का परम उद्देश्य है।

हम उन मुख्य बातो पर विचार कर चुके हैं जिन्हे एक अच्छे अध्यापक को जानना चाहिये। लेकिन अब प्रश्न यह है कि अध्यापक किस किस्म के लोग (स्त्री या पुरुप) हो ? क्या और कोई ऐसी योग्यता है जो उनके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

हाँ है, लेकिन बहुत नही। वे कम से कम तीन जरूर हैं।

उनमें से पहली स्मरण शक्ति है। जिस अध्यापक की स्मरण शक्ति मन्द हो वह हास्यस्पद और भयानक होता है। वह ठीक उसी गवैया की तरह होता है जिसने बडे उत्साह से कोई राग गाना शुरू किया हो लेकिन गाने मे वह अनेक गलतियाँ कर बैठे। या वह उस डाक्टर की तरह है जो रोगी को थोडी-सी दवा देने की जगह पर बहुत-सी दवा दे देता है। या वह उस सन्तरी जैसा है जो एक ही बार तीन तरफ से गाडियो को आने-जाने का सकेत देता है। या वह उस दुकानदार की तरह है जो अपने ग्राहक को मनपसन्द चीज नही दिखा सकता (और कहे, "मुझे मालूम है कि वह चीज मेरे पास है तो सही लेकिन कही इधर-उधर पडी है। थोडी देर आप ठहर जायें, वह चीज मुझे वही मिल जायेगी जहाँ मैंने उसे छोड दिया था")। या वे उस चित्रकार की तरह होते हैं जो अपनी दोनो आँखो को नाक के एक ही तरफ रखकर देखते हैं। हम अभी तक काफी कुछ कह चुके हैं और अगर वह इन बातो मे से कभी एक आध भूल जाए तो उसके शिक्षार्थी उसकी कठिनाई समझ जायेंगे और उसके साथ सहानुभूति प्रकट करेंगे। (उसे अपनी भूल को स्पष्ट और प्रत्यक्ष रूप से देखना चाहिये और अच्छा हो वह उस भूल को अपनी ही नोट मे देखें न कि पुस्तको की सहायता से) जो बातें स्कूल मे होती हैं उन्हे भी उसे याद रखना चाहिये। जैसे अगर क्लास में कोई प्रश्न उठाया जाता है और उस पर वहाँ विचार किया जाता है तो उसको वह याद रखना चाहिये और बाद मे कभी किसी प्रसग मे उसको दुहरा देना चाहिये। अगर कोई विद्यार्थी किसी प्रसग मे स्वेच्छा से कोई अच्छा-सा उदाहरण देता है जिसको उसने कही पढा हो तो आगे जब कभी कोई दूसरा वैसा ही प्रसग आये तो

उस विद्यार्थी पर विशेष ध्यान दें। बात याद रखने की क्षमता एक अध्यापक के लिये उतनी ही जरूरी है जितनी किसी रोजगार पेशा वाले आदमियो के लिये। रचनात्मक स्मरण-शक्ति एक ऐसी विशेषता है, जो अच्छे और बुरे वकील, डाक्टर या अध्यापक मे भेद स्पष्ट कर देती है।

अध्यापक जब अपनी रचनात्मक स्मरण-शक्ति का उपयोग बच्चो को पढाने मे करता है तो बच्चो की कठिन-से-कठिन समस्या आसान हो जाती है। पढाई में बच्चो का चाव सजीव होता है और उनकी ग्राह्य-शक्ति तीक्षण होती है लेकिन इतना होने पर भी जो वे पढते हैं उनमे परस्पर समन्वय स्थापित करना उनके लिये कठिन काम होता है। बहुत-सी बाते जो वे सीखते हैं वे उनके दिमाग मे धातु के गोले की तरह बैठ जाती है और उसी मे पडा रहता है। परीक्षा के समय वे इन गोलो को अपने दिमाग से निकालते हैं, उन्हे साफ करते तथा अध्यापको को उसे दिखाते हैं। उसके बाद फिर वे उन्हे दिमाग मे रख लेते हैं और कुछ समय बाद वह नष्ट हो जाता है। अगर वे सिर्फ उसके दिमाग मे जमा हुए पडे रहे और उन्हे सवार कर सफाई से न रक्खा गया तो उस शिक्षार्थी की शिक्षा अभी पूरी नही हुई जिसने उसे इस तरह सचित रक्खा है। अध्यापक का काम तो यह है कि पढाते समय या पढाने के बाद भी तथ्यो की मदद से विद्यार्थी के दिमाग मे रोचकता और जिज्ञासा का श्रोत जगाए जिससे वे तथ्य पिघले, घुल मिल जाये, उनमे जान आ जाए जो आगे चलकर उस दिमाग का महत्त्वपूर्ण भाग बन जाए जिसमे वह सचित रहता है। ऐसा करने का अत्यन्त सुन्दर ढग यह है कि उन्हे यह दिखाया जाय कि गूढ तथ्य किस तरह एक दूसरे से अगो की तरह जुडे हुए हैं। यह बात उन्हे समझाने के लिये उस बात को पाठ्यक्रम का एक अग बनाने की जगह उसे साधारण बातचीत मे ही सिखाना ज्यादा अच्छा रहेगा। बच्चो को यह बात समझ मे आ जाये तो समझना चाहिये कि अध्यापक ने अपना काम कर दिया।

स्मरण शक्ति के बाद दूसरी बात आत्मबल है। कुशल अध्यापक दृढप्रतिज्ञ व्यक्ति होता है।

उन्नीसवी सदी मे इससे सभी परिचित थे। यह दृढप्रतिज्ञ माँ-बाप और सख्त अध्यापको का जमाना था। कभी-कभी वे बडी कठोरता से पेश आते, कभी वे चतुराई दिखाते और कभी वे सख्त और कुशल शिक्षक बन जाते। इस शिक्षा से अगर उनके बच्चे विद्रोही बन जाते तो वे साक्षर विद्रोही होते थे। लेकिन आजकल इसको ज्यादा जरूरी नही समझा जाता—कम-से-कम पश्चिमी देशो मे तो जरूरी। जर्मनी मे भी इस सिद्धान्त को तब स्वीकार किया गया जब वहाँ राष्ट्रीय समाजवादी पार्टी का शासन था, जब आत्मबल अध्यापक की आवश्यक योग्यताओ मे एक समझा जाता था और एक शिक्षक को अपने विद्यार्थियो में जो गुण अनिवार्य रूप से विकसित करना चाहिए उसमे आत्मबल को बढावा देना भी एक समझा जाता था। ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रास, इटली और दूसरे देशो मे अध्यापक अक्सर आत्मबल का प्रदर्शन नही करते हैं। उसकी बजाय वे "मनोहर" बनना पसन्द करते

है जिसका अर्थ यह होता है कि वे हमेशा प्रसन्न और कृपालु बनना चाहते हैं और कठिनाइयो को सदा दूर रखना चाहते हैं। फिर भी आजकल के अध्यापक उतने अच्छे ढग से नही पढाते जिस ढग से उनके ढीठ पूर्वज पढाया करते थे।

लेकिन फिर भी इतना निश्चित है कि अध्यापक मे आत्मबल होना आवश्यक है। यह बात हर वैसे अध्यापक को मालूम होती है जिसको विद्यार्थियो से भरी क्लास के सामने खडा होने और पढाने का मौका मिला है। कई घबराई हुई अध्यापिकाएँ पढाते समय अपनी मेज़ के पीछे इस तरह खडी रहती हैं जैसे वे छिपकर चीतो का शिकार कर रही हो। कई ऐसे अध्यापक है जो अपने विद्यार्थियो को पढाते समय मानो उनके साथ छलाँग भरते, इस तरह छोटे-छोटे वाक्य जल्दी-जल्दी उगलते जाते हैं जैसे भौक रहे हो और अगर उन्हे वैसी कुर्सी और बेत दे दी जाय जो शेर को सिखाने वालो के पास हुआ करती है तो वे अध्यापक भी शेर पालने वालो जैसे ही लगेगे। वैसे अध्यापक इस बात को नही समझते कि उनमे आत्मबल क्यो होना चाहिए और वे क्यो उसका उपयोग करें। कुछ को इसके अभाव से भय होता है और वे हीनता का अनुभव करते है। वे यह सोचते हैं कि एक सम्पन्न समाज के स्कूलो मे आत्मबल के प्रदर्शन की कोई आवश्यकता नही। लेकिन इसकी आवश्यकता होती है।

ज़रा आप यह सोचें कि कितनी विभिन्न प्रकार की अवरोधक शक्तियो का सामना एक अध्यापक को करना पडता है। सबसे पहले तो बच्चे ही काम करना पसद नही करते। उनकी अभिलाषा होती है कि वे फुटबाल खेलते होते या किसी सिनेमाघर मे बैठे चाकलेट खाते होते। लेकिन वे काम सीखना नही चाहते नही तो निश्चय ही उनको सारी जिन्दगी काम ही करना पडेगा। इसलिए उनको काम करने से पराँगमुख होना या यह सिखाना कि काम करना बेकार होता है और अनावश्यक होता है, निश्चय ही उनको बिगाडना होगा। (यह मानना कि "स्कूल" का अर्थ ही "आराम" करना या "विनोद" करना होता है, गलत धारणा है। जब बच्चे का नामकरण हुआ उस समय उसके माँ-बाप खुश थे कि यह उनका सौभाग्य होगा कि वह पढेगा नही तो वह भी अपने बाप की दूकान मे झाड़ू लगाने का या उसकी गाय चराने या दूध निकालने का काम करेगा जिसको सच्चे माने मे काम समझा जाता है और "स्कूल" को "खेल" ही समझा जाता है)।

बच्चे हुकूमत भी पसद नही करते। वे स्वभाव से अराजक होते हैं और किसी तरह का शासन पसद नही करते। वे उस उम्र मे वैसी एक सुव्यवस्थित दुनिया की बजाय वैसी दुनिया पसद करते हैं जिसमे इतनी दुर्व्यवस्था हो जिसका वर्णन नहीं किया जा सके और जिसमे न तो कोई काम हो और न जिम्मेदारी। वर्तमान ससार मे वह असभव है। इसलिए बच्चो को शासन के सिद्धान्तो का पालन करना सिखाया जाना चाहिए। अगर उन्होने उसे स्कूल मे नही सीखा तो बाद मे उनके लिए वह सीखना बडा दुस्साध्य हो जायेगा। इस ओर आगे चलकर अध्यापक का भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह बच्चो को विभिन्न शासन प्रणालियो का भेद समझाये और उनमे जो अच्छी प्रणाली हो

उसे चुने और बुरी का वहिष्कार करे। इनमे पहला पाठ दृढ सकल्प केवल अध्यापक ही पढा सकता है। अगर वह दृढ सकल्पी और चतुर हो तव वह दोनो वाते उन्हे सिखा सकता है।

बच्चे चित्त भी एकाग्र करना पसन्द नही करते। इससे उनको नफरत है। उनके लिए यह एक ऐसी कोशिश है जिससे वे सुपरिचित नही होते और जिसको करने मे उनको बडा कष्ट होता है। आप किसी लडके को वैसी अवस्था मे देखे जव वह अपना घर का पाठ (Home work) तैयार कर रहा हो और वह यह समझ रहा हो कि उसे कोई देख नही रहा है। पहले वह पुस्तक की दस लाइने पढेगा, उसके वाद पुस्तक के हाशिए मे एक वेढँगे आकार का चित्र बनायेगा। फिर दस लाइनें पढने की कोशिश करेगा और पढना छोड कर कोई गाना सीटी वजा बजा कर गायेगा। इसके वाद वह अपनी सारी पुस्तक, कापियाँ सजा कर टेवल पर रक्खेगा, फिर सव पैंसिलें बनायेगा। इसके वाद उस पुस्तक की पच्चीस लाइने झट से पढ जायेगा। फिर वह अपनी नेकर ठीक करेगा और तीन चार मिनट शान्तचित्त वैठेगा। वाद मे फिर पुस्तको के साथ वह परिश्रम करने लगेगा। यहाँ तक कि जिस समय वह पुस्तको की ओर ध्यान देता है उस समय भी उसके मन मे हर किस्म के वेकार विचार और मन बहलाने वाले ख्याल आते हैं। वह अपने पाँव की दोनो एडियो को लयदार ढग से पटकता है, अपने हाथ के नाखूनो को दाँत से काटता है और अपने आसन को इस तरह वदलता रहता है जैसे आग की तरह गर्म कुर्सी पर वैठा हो। अपने रेडियो को पूरे स्वर मे वजाता है। उसकी इन सभी हरकतो से इस बात का आभास मिलता है कि उसे पढाई पर चित्त एकाग्र करने मे कितनी कठिनाई हो रही है और किस तरह वह हर सूरत मे उस कठिनाई को कम करने की कोशिश करता है। वास्तव मे वह बचने का बहाना करता है।

फिर भी वह कुछ सीखता है। जब वह यूनिवर्सिटी मे पहुंचता है वह अपनी पढाई पर ज्यादा देर तक अपना चित्त एकाग्र कर सकेगा। अगर वह धन्धे मे लगता है तो उसको अपनी योग्यता उस समय तक बढाते रहना होगा जब तक वह पूरा निपुण नही बन जाता जैसे कठिन आपरेशन को समझने और उसको जवानी सुनाने की योग्यता प्राप्त करना या न्यायालयो द्वारा दिये गये छ बडे निर्णयो का साराश उसी दिन शाम तक तैयार करने की क्षमता हासिल करना आदि। जब वह स्कूल की पढाई खत्म करने पर नौकरी करने लगेगा तो उसकी जिन्दगी वहाँ ऐसी हो जायेगी कि वह स्वभावत काम पर चित्त लगाने लगेगा। अगर ऐसा न हुआ तो वह ऐसा निकम्मा और निम्न वन जायेगा कि वह एक नौकरी छोडकर दूसरी पकडता फिरेगा और अपने को जीवित रखने के लिए हर समय इस दुनिया मे सघर्ष करता रहेगा। एक ऐसी दुनिया में जिसमे बडी तितलियो की सख्या की अपेक्षा मक्खियो की सख्या अधिक है।

चित्त एकाग्र करना उन्हे अवश्य सिखाना चाहिये और उसकी शिक्षा स्कूल मे दी जानी चाहिये। एक कुशल अध्यापक उन्हे यह सिखा सकता है। ऐसा नही समझना चाहिए कि चित्त एकाग्र इच्छा की ही प्रेरणा से होता हैं और किसी दूसरी चीज से नही। यह एक

बौद्धिक प्रेरणा भी है। वास्तव मे यह एक चुनाव है। आप उसी लडके का उदाहरण ले जो पुस्तक की पाँच लाइनें सुस्ती और वयमनस्य भाव से पढता है। किसी तरह से आप उसके पढाई की तेजी (Urgency) बढा दे, किसी तरह उसे यह मालूम करा दे कि पढना उसके लिए परमावश्यक है और भारी महत्त्व रखता है और वह अपने इस लक्ष्य को समझ जाये, उसे किसी लेख प्रतियोगिता की तैयारी मे लगा दे और तब देखें। वह चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगेगा "उस रेडियो को बन्द करो।" अपनी मेज को बिलकुल सवाँर कर रक्खेगा, उस पर कोई चीज इधर-उधर पडी नही मिलेगी। जब तक उसने पाठ रट न लिया हो तब तक वह एक ही जगह निश्चल बैठा रहेगा। जब वह सच्ची लगन से पढ रहा हो तो हो सकता है उसे खाना खाना या सोना भी याद न रहे। यह सब सिर्फ इसलिए होता है क्योंकि उसने अपना एक लक्ष्य चुन लिया है और बाकी सारी बाते भुला दी हैं। यही वह बात है जिसको सीखने की कोशिश हम सारी जिन्दगी करते रहते हैं।

कई बच्चे ऐसे होते हैं जो किसी एक व्यक्ति के प्रभुत्व मे रहना पसन्द नही करते। केवल अपनी स्वाधीनता को प्रमाणित करने के लिए दूसरो की प्रभुता का विचार अस्वीकार कर देते हैं। उनका ऐसा व्यवहार ठीक उस घोडे जैसा होता है जिसकी लगाम अगर कस दी जाय तो वह अपना सिर झकोरने और बायें-दायें उछलने कूदने लगता है। अत अध्यापन का एक महत्त्वपूर्ण और सफल ढग इस सिद्धान्त पर आधारित है जिसमे विद्यार्थी मे विरोध करने की शक्ति बढाकर उसको शिक्षा दी जाय (इसकी चर्चा हम आगे करेगे)। ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रीज मे यह ट्यूटोरियल मेथड (Tutorial Method) है और दूसरी जगहो मे भी खास क्लासो मे यही ढग प्रयोग मे लाया जाता है। मान लीजिये विद्यार्थी "आधुनिक इटली मे रईस वर्ग का राजनैतिक प्रभाव या रगो के घनत्व" जैसे उलझे हुए और कठिन विषय पर एक लेख तैयार करता है और अपने अध्यापक को पढकर सुनाता है। एक दूसरा विद्यार्थी, जो उस विषय की जानकारी रखता है, उसे सुन रहा है। हो सकता है कि अध्यापक उस विद्यार्थी के विचारो से सहमत हो जो उसने उस लेख मे लिखे हैं। लेकिन उसको यही चाहिए कि वह उस लेख को फाडकर चीथडा बना दे। अपने तर्क में वह उस विद्यार्थी के दोषो की बुरी तरह आलोचना करे। बडी निर्दयता से वह उन सभी पुस्तको और शब्द कोष (एनसाइक्लोपीडिया) से वे सब भाग और तथ्य निकाल कर उस विद्यार्थी को दिखाये जो उसने अपने लेख मे शामिल किये हैं। लेख के हर पन्ने और हर परिच्छेद की खूब छानबीन करे, कभी उसे एक ही महत्त्वपूर्ण वाक्य को एक घण्टे तक समझाता रहे। लेकिन विद्यार्थी अपने लेख के हर विचार, वाक्य और शब्द की काट-छाँट का तर्कपूर्ण उत्तर देगा और अन्त तक यही प्रयास करता रहेगा कि उसका लेख चन्द कटे-छटे परिच्छेदो का ढेर न बन जाय। इसका नतीजा यह होगा कि उस विद्यार्थी ने अध्यापक से बातचीत के दौरान एक सारगर्भित और तर्कयुक्त लेख की रूपरेखा तैयार कर ली होगी। अगर उस विद्यार्थी ने ऐसा काम किया तो अध्यापक को सन्तुष्ट होना चाहिये। अगर उस विद्यार्थी ने अध्यापक की आलोचनाओ और काट-छाँट का विरोध न

किया और चुपचाप वैठा रहा तो निश्चय ही वह एक कमजोर विद्यार्थी है और तव शायद उसका अध्यापक भी कमजोर ही माना जायेगा।

वच्चे इस वात का विरोध करते है कि उन पर वडो का वौद्धिक प्रभुत्व हो। यह अच्छा है कि वे ऐसा करते हैं। उनमे अवरोध करने की भावना को प्रोत्साहन देना और वाद मे उसे ठीक रास्ते पर मोड देना ही शिक्षा के उद्देश्यो मे से एक है। लेकिन जव वे सचेत और सवल हो या जव उनमे विरोध की भावना खास तौर से प्रवल हो उस समय उनका सामना करने वाले अध्यापको मे भी उनको कावू मे करने और अपनी स्वाधीनता को सुरक्षित रखने के लिए सकल्प की शक्ति का होना जरूरी है।

सब देशो मे तो नही, लेकिन कुछ देशो मे तो लडके-लडकियाँ पढने-पढाने के विचार का ही कडा विरोध करते हैं। वे यह समझते है कि ऐसा किया जाना उनकी स्वाधीनता (Inhignity) पर आक्षेप है। वे सोचते हैं कि सद्भाव, उत्साह और वल जैसे गुण, जो उन्हे प्रकृति की ओर से वक्फ के रूप मे मिलता है, उन्ही की सहायता से वे उतनी दूर तक पहुँच सकते हैं जहाँ तक वे जानते हैं। वे सोचते है कि पुस्तको का ढेर पढना न केवल वेकार है बल्कि कभी-कभी इससे उसी तरह भारी हानि हो सकती है जैसे कि कोई सेना का पुराना वावर्ची यह कहे कि "ज्यादा विटामिन खाना शरीर की व्यवस्था विगाड देता है।" यही विचार ब्रिटेन के मध्यवर्ती भाग, आस्ट्रेलिया और मध्य तथा पश्चिमी अमेरिका और दुनिया के उन अन्य भागो मे पाया जाता है जहाँ ताकत और चुस्ती को ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझा जाता है अध्यापक के लिए वैसे विद्यार्थियो का मुकावला करना वडा कठिन होता है। इसकी चर्चा हम आगे करेगे। यहाँ केवल इतना ही जान ले कि एक अध्यापक को साधारणतया ऐसे ही विरोध का सामना करना पडता है।

अत इन सव अवरोधो का सामना करने के लिए अध्यापक मे प्रबल आत्म-शक्ति (Will) होनी चाहिये। अगर कोई व्यक्ति अच्छा अध्यापक बनना चाहता है तो वह विद्यार्थियो को खूब अच्छी तरह समझेगा और वजाय उनसे आमने सामने मिलने और कुश्ती करने के, उनको सलाह देगा और उनका निर्देशन करेगा। इस काम के लिए यह आवश्यक होगा कि उसमे और भी अधिक प्रबल और परिपक्व आत्मवल (Will) हो। आप जानते हैं कि अक्सर तीन-चार बच्चे किस तरह किसी खाली मकान मे घुसकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं और जब उनसे इस हरकत के वारे मे पूछा जाता है तो वे कैसे सामान्य मानसिक अवस्था मे रहते है। लेकिन वास्तव मे वे डरे और घबराये होते हैं मानो वे स्वय तोड-फोड की उस आदत या प्रकृति से घवराये हो जो उनके शरीर मे घुस आयी है ठीक उसी तरह जिस तरह सारी क्लास या सारा स्कूल "हेवायर" (Haywire) हो जाये। हेवायर शब्द का प्रयोग उस अर्थ मे किया जाता है जब लोहे के कॉंटो वाली उस मशीन का उल्लेख किया जाय जो खेती करने के काम मे लायी जाती है और जिसका उपयोग खेतो से वेकार खर पत्तियाँ अलग करना है और वह मशीन टूटी हो और उसमे तार उलझा हुआ हो। अपने ऐसे व्यवहार से विद्यार्थी अपनी, अपने अध्यापको

को, अपनी सम्पत्ति और आचरण को अप्रत्यशित हानि पहुँचाते हैं। यह काम वे तब तक करते जाते हैं जब तक उनको रोका न जाय। चतुर अध्यापक बच्चो के लिए ऐसे रास्ते निकाल देते हैं जिस रास्ते से उनकी तोडने-फोडने की शक्ति बाहर निकल जाय। इस शक्ति को बच्चो को लाचार बनाकर या उनमे से हँसी के जरिये निकाल देना अध्यापक के हँसमुख होने का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपयोग है। लेकिन एक सख्त मिजाज अध्यापक के लिए इस तोड-फोड की शक्ति के बच्चो मे आ जाने का निरन्तर भय बना रहता है। इस लिए वह उसे तभी काबू मे कर लेता है जब बच्चो की वह शक्ति बढते-बढते फूट पडने वाली होती है।

स्मरण-शक्ति और उसके बाद आत्म-शक्ति ये दो ऐसे गुण हैं जिससे सम्पन्न अध्यापक अच्छा माना जाता है। इसके बाद अध्यापक की तीसरी विशेषता दया की भावना है। बिना दयालु बने कुछ भी सिखाना असभव है। अत्यन्त लाचारी की भावना से प्रेरित होकर ही इसको प्रयोग में लाया जा सकता है—जिस तरह शेर को सिखाने वाला अपने जगली विद्यार्थी (शेरो) को शिक्षा देता है लेकिन वैसे बहुत से वर्गों के विद्यार्थी ज्यादा नही है जिन पर वैसे लाचारी का प्रयोग किया जा सकता है। शेरो को बदी बनाकर रक्खा जाता है और गर्म लोहे और बन्दूको के भय से उनको सीधा भी किया जा सकता है। वे बच्चे जो कुरान और तलमद (Talmud) जैसे धार्मिक ग्रथ पढ रहे हैं पीढियो पुरानी उदाहरणो की चाहारदीवारी में बद हैं और अपनी (और अपने परिवार वालो की) महत्त्वाकाक्षाओ के कील से चुभते रहते हैं। सैनिक स्कूलो के विद्यार्थी और कुछ दूसरी सस्थाओ मे, जहाँ हाजिरी को रक्षित गौरव (Guarded Privilege) समझा जाता है वहाँ के सख्त अनुशासन नियमो का विद्यार्थी को पालन करना पडता हे यद्यपि वे अपने अध्यापक से घृणा करते हैं या अध्यापक उनसे घृणा करता है लेकिन लगभग सभी दूसरी शिक्षाओ मे विद्यार्थियो को यह महसूस करना चाहिए कि उनके अध्यापक उनकी सहायता करना चाहते हैं और वे यह भी चाहते हैं कि वे सुधरें। उनकी त्रुटियो से वह सहानुभूति दिखायें। पढने लायक किसी चीज को पढाना कठिन होता है। कुछ लोगो को यह दुखद मालूम पडता है हर आदमी को ऐसा करना कठिन मालूम होता है। कुछ ही चीजे उस कठिनाई, दुख और थकान को एक अच्छे अध्यापक की दया की तरह कम कर सकती हैं।

लेकिन वह दया निश्चय ही सच्ची दया होनी चाहिए। एक लापरवाह बालक से लेकर एक परिश्रमी स्नातक-स्तर के विद्यार्थी तक सभी उम्र के विद्यार्थी आसानी और जल्दी से इस बात का पता लगा लेते हैं कि कौनसा अध्यापक उनको पसद नही करता। उनकी यह विशेषता ठीक उस कुत्ते जैसी है जो बडी सुगमता मे यह जान लेता है कि उसकी ओर देखने वाला आदमी उससे डर रहा है। उनके लिए किसी चाह को नकली रूप में प्रदर्शित करना व्यर्थ है अगर वास्तव मे आप उन भावना से प्रेरित नही।

दूसरी तरफ कधो को थपथपाकर, सिर हिला कर इशारे से या कोरी मुस्कान से

किया और चुपचाप वैठा रहा तो निश्चय ही वह एक कमजोर विद्यार्थी है और तव शायद उसका अध्यापक भी कमजोर ही माना जायेगा।

वच्चे इस वात का विरोध करते हैं कि उन पर वडो का वौद्धिक प्रभुत्व हो। यह अच्छा है कि वे ऐसा करते है। उनमे अवरोध करने की भावना को प्रोत्साहन देना और वाद मे उसे ठीक रास्ते पर मोड देना ही शिक्षा के उद्देश्यो मे से एक है। लेकिन जव वे सचेत और सवल हो या जव उनमे विरोध की भावना खास तौर से प्रवल हो उस समय उनका सामना करने वाले अध्यापको मे भी उनको कावू मे करने और अपनी स्वाधीनता को सुरक्षित रखने के लिए सकल्प की शक्ति का होना जरूरी है।

सब देशो मे तो नही, लेकिन कुछ देशो मे तो लडके-लडकियाँ पढने-पढाने के विचार का ही कडा विरोध करते है। वे यह समझते हैं कि ऐसा किया जाना उनकी स्वाधीनता (Inhignity) पर आक्षेप है। वे सोचते हैं कि सद्‌भाव, उत्साह और वल जैसे गुण, जो उन्हे प्रकृति की ओर से वक्फ के रूप मे मिलता है, उन्ही की सहायता से वे उतनी दूर तक पहुँच सकते हैं जहाँ तक वे जानते हैं। वे सोचते हैं कि पुस्तको का ढेर पढना न केवल वेकार है वल्कि कभी-कभी इससे उसी तरह भारी हानि हो सकती है जैसे कि कोई सेना का पुराना वावर्ची यह कहे कि "ज्यादा विटामिन खाना शरीर की व्यवस्था विगाड देता है।" यही विचार व्रिटेन के मध्यवर्ती भाग, आस्ट्रेलिया और मध्य तथा पश्चिमी अमेरिका और दुनिया के उन अन्य भागो मे पाया जाता है जहाँ ताकत और चुस्ती को ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझा जाता है अध्यापक के लिए वैसे विद्यार्थियो का मुकावला करना वडा कठिन होता है। इसकी चर्चा हम आगे करेंगे। यहाँ केवल इतना ही जान ले कि एक अध्यापक को साधारणतया ऐसे ही विरोध का सामना करना पडता है।

अत इन सब अवरोधो का सामना करने के लिए अध्यापक मे प्रबल आत्म-शक्ति (Will) होनी चाहिये। अगर कोई व्यक्ति अच्छा अध्यापक बनना चाहता है तो वह विद्यार्थियो को खूब अच्छी तरह समझेगा और बजाय उनसे आमने सामने मिलने और कुश्ती करने के, उनको सलाह देगा और उनका निर्देशन करेगा। इस काम के लिए यह आवश्यक होगा कि उसमे और भी अधिक प्रबल और परिपक्व आत्मवल (Will) हो। आप जानते हैं कि अक्सर तीन-चार बच्चे किस तरह किसी खाली मकान मे घुसकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं और जब उनसे इस हरकत के बारे मे पूछा जाता है तो वे कैसे सामान्य मानसिक अवस्था मे रहते हैं। लेकिन वास्तव मे वे डरे और घबराये होते हैं मानो वे स्वय तोड-फोड की उस आदत या प्रकृति से घवराये हो जो उनके शरीर मे घुस आयी है ठीक उसी तरह जिस तरह सारी क्लास या सारा स्कूल "हेवायर" (Haywire) हो जाये। हेवायर शब्द का प्रयोग उस अर्थ मे किया जाता है जब लोहे के काँटो वाली उस मशीन का उल्लेख किया जाय जो खेती करने के काम मे लायी जाती है और जिसका उपयोग खेतो से बेकार खर पत्तियाँ अलग करना है और वह मशीन टूटी हो और उसमे तार उलझा हुआ हो। अपने ऐसे व्यवहार से विद्यार्थी अपनी, अपने अध्यापको

को, अपनी सम्पत्ति और आचरण को अप्रत्यशित हानि पहुँचाते हैं। यह काम वे तब तक करते जाते हैं जब तक उनको रोका न जाय। चतुर अध्यापक बच्चो के लिए ऐसे रास्ते निकाल देते हैं जिस रास्ते से उनकी तोडने-फोडने की शक्ति बाहर निकल जाय। इस शक्ति को बच्चो को लाचार बनाकर या उनमे से हँसी के जरिये निकाल देना अध्यापक के हँसमुख होने का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपयोग है। लेकिन एक सख्त मिजाज अध्यापक के लिए इस तोड-फोड की शक्ति के बच्चो मे आ जाने का निरन्तर भय बना रहता है। इस लिए वह उसे तभी काबू मे कर लेता है जब बच्चो की वह शक्ति बढते-बढते फूट पडने वाली होती है।

स्मरण-शक्ति और उसके बाद आत्म-शक्ति ये दो ऐसे गुण हैं जिससे सम्पन्न अध्यापक अच्छा माना जाता है। इसके बाद अध्यापक की तीसरी विशेषता दया की भावना है। बिना दयालु बने कुछ भी सिखाना असभव है। अत्यन्त लाचारी की भावना से प्रेरित होकर ही इसको प्रयोग मे लाया जा सकता है—जिस तरह शेर को सिखाने वाला अपने जगली विद्यार्थी (शेरो) को शिक्षा देता है लेकिन वैसे बहुत से वर्गों के विद्यार्थी ज्यादा नहीं हैं जिन पर वैसे लाचारी का प्रयोग किया जा सकता है। शेरो को बदी बनाकर रक्खा जाता है और गर्म लोहे और बन्दूको के भय से उनको सीधा भी किया जा सकता है। वे बच्चे जो कुरान और तलमद (Talmud) जैसे धार्मिक ग्रथ पढ रहे हैं पीढियो पुरानी उदाहरणो की चाहारदीवारी मे बद हैं और अपनी (और अपने परिवार वालो की) महत्त्वाकाक्षाओ के कील से चुभते रहते हैं। सैनिक स्कूलो के विद्यार्थी और कुछ दूसरी सस्थाओ मे, जहाँ हाजिरी को रक्षित गौरव (Guarded Privilege) समझा जाता है वहाँ के सख्त अनुशासन नियमो का विद्यार्थी को पालन करना पडता है यद्यपि वे अपने अध्यापक से घृणा करते हैं या अध्यापक उनसे घृणा करता है लेकिन लगभग सभी दूसरी शिक्षाओ मे विद्यार्थियो को यह महसूस करना चाहिए कि उनके अध्यापक उनकी सहायता करना चाहते हैं और वे यह भी चाहते हैं कि वे सुधरे। उनकी त्रुटियो से वह सहानुभूति दिखाये। पढने लायक किसी चीज को पढाना कठिन होता है। कुछ लोगो को यह दुखद मालूम पडता है हर आदमी को ऐसा करना कठिन मालूम होता है। कुछ ही चीजे उस कठिनाई, दुख और थकान को एक अच्छे अध्यापक की दया की तरह कम कर सकती हैं।

लेकिन वह दया निश्चय ही सच्ची दया होनी चाहिए। एक लापरवाह बालक से लेकर एक परिश्रमी स्नातक-स्तर के विद्यार्थी तक सभी उम्र के विद्यार्थी आसानी और जल्दी से इस बात का पता लगा लेते हैं कि कौनसा अध्यापक उनको पसद नहीं करता। उनकी यह विशेषता ठीक उस कुत्ते जैसी है जो बडी सुगमता से यह जान लेता है कि उसकी ओर देखने वाला आदमी उससे डर रहा है। उनके लिए किसी चाह को नकली रूप में प्रदर्शित करना व्यर्थ है अगर वास्तव मे आप उस भावना से प्रेरित नहीं।

दूसरी तरफ कधो को थपथपाकर, सिर हिला कर इशारे से या कोरी मुस्कान से

उन पर दया प्रदर्शित करना बिल्कुल ही अनावश्यक है। एक गभीर मुद्रा वाला लेक्चरर, जो शायद ही कभी विद्यार्थियो को नाम लेकर बुलाता है और केवल अपने काम के बारे में ही सोचता है जैसे यह बात कि इक्नामिक्स के सिद्धात कैसे बनते हैं आदि, तो उसे अक्सर यही समझा जायेगा कि वह एक ऐसा अध्यापक है जो पढाने के काम में सचमुच अभिरुचि रखता है और वह अपने विद्यार्थियो की भलाई का सच्चा अभिलाषी है। सिर्फ अपने ही विषय मे अभिरुचि रखना उसके लिए काफी नही। कई ऐसे लोग होते हैं जो किसी विषय मे अभिरुचि रखते हैं लेकिन वह विषय दूसरो को पढाना नही चाहते। लेकिन अगर सचमुच वह इसका अभिलाषी है कि दूसरे उस विषय को ज्यादा अच्छी तरह जानें और ज्यादा सही ढग से उसे समझे और अगर वह अपने विद्यार्थियो से यह आशा नही करता कि वे उसको एक ही दफा पढकर याद कर लेंगे, लेकिन उसकी बजाय वह जो सुस्त हैं उनकी मदद करता है और जो उलझन मे पडे हैं उन्हे सही बात बताता है तो उसे दयालु अध्यापक माना जायेगा यद्यपि उसका चेहरा निश्चल रूप से गभीर और मनोविकार रहित और निष्पक्ष है।

फिर भी अध्यापक मे दया अवश्य होनी चाहिये। यह दया चाहे बडे भाई-बहन की हो सकती है या माता-पिता की भी, यह सहपाठी विद्यार्थियो की भी दया जैसी हो सकती है। कभी-कभी यह एक वैसी सहानभूति की तरह होती है जो स्थानिक राष्ट्र भक्ति पर आधारित हो, जहाँ अध्यापक यह अनुभव करे कि वह अपने सहयोगी नागरिको के बाल बच्चो की सहायता कर रहा है जिससे वे विकास करें और उन्नत हो। (मैक्सीको मे निरक्षरता दूर करने के लिए इसी भावना के आधार पर एक प्रशसनीय योजना चलायी गई है। प्रत्येक मैक्सीकन जो साक्षर है जो अपने देशवासियो को पढाने के लिए शिक्षा पाता है) लेकिन अगर अध्यापक उनमे से न तो किसी मनोभाव का ही अनुभव करे न दूसरी वैसी कोई बात ही वह महसूस करे या अगर वह (स्त्री या पुरुष) यह समझता है कि ठीक उसी तरह विद्यार्थी एक आवश्यक बला है जैसे इनकम टैक्स (Income Tax) का फार्म एक बला होती है, तब उसे (स्त्री या पुरुष) अपना काम ज्यादा कठिन और विद्यार्थियो के लिए ज्यादा दुखदायी हो जायगा और उसकी महत्ता कम हो जायगी। हर अध्यापक कुछ विद्यार्थियो से घृणा करते हैं। जैसे वे गलफुली और बेढगी लिपिस्टिक लगाए लडकियाँ, हठी और बदचलन युवक, निर्लज्ज और फूहड स्वाँग भरने वाले छोटे बच्चे जब कोई बात को जान बूझ कर करते हैं तो कितने घृणित मालूम पडते हैं। लेकिन अगर कोई अध्यापक स्वय सभी विद्यार्थियो से घृणा करता है तो उसे अपनी चाल बदलनी चाहिए और अगर वह चाल न बदल सके तो उसे अपना व्यवसाय ही बदल देना चाहिये।

३

अध्यापन के ढंग

कुशल अध्यापक कैसा होना चाहिये इसकी चर्चा हम कर चुके हैं। अब हम उसके पढाने के ढग पर विचार करेंगे।

पढाने के काम को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है। पहला वह जिसमे अध्यापक कोई विषय पढाने की तैयारी करता है। दूसरा वह हिस्सा है जिसमे वह बच्चो तक बात को पहुँचाता है या किसी चुने हुए पाठ को उन तक सचारित करता है और तीसरे हिस्से के काम में वह बच्चो से यह जानने की चेष्टा करता है कि उन्होने पाठ समझ लिया है या नही।

(क) पढ़ाने की तैयारी

छोटे पैमाने पर पढाने की तैयारी अध्यापक ज्यादा अच्छी तरह कर सकता है और अगर वही काम बडे पैमाने पर करना पडे तो तैयारी अच्छी नही हो पाती। हो सकता है कि अध्यापक अगले दिन या आने वाले हफ्ते मे जो पाठ पढाना है उसे तो तैयार कर ले लेकिन पूरे वर्ष या सत्र (टर्म) की नियोजित रूपरेखा तैयार न कर सके। यह उसको सही रूप मे मालूम हो सकता है कि अगले शनिवार तक उसने कहाँ तक पाठ पढा लिया होगा लेकिन उसे यह शायद ही मालूम होगा कि उस अर्से मे उसने जितना पाठ खत्म किया है वह साल भर में जो पढाना है उसकी तुलना मे कम है या ज्यादा। साल भर मे जितना काम पूरा करना है उसकी नियोजित रूपरेखा तैयार करना और काम पूरा होने तक उस योजना पर अमल करना दृढ और दूरदर्शी अध्यापक का काम है। परीक्षा शुरू होने से पन्द्रह-बीस दिन पहले हम मे से अधिकतर लोगो को यह अनुभव होता है कि पाठ के शुरु वाले भाग पर हमने बहुत ज्यादा समय ले लिया है और बाकी पाठ को बडी जल्दी-जल्दी खत्म करना पडा। इस मामले मे तो यूनिवर्सिटी के अध्यापक और भी अनुभवहीन होते हैं क्योकि उन्हे अपने विषय से बात बदल देने की आज़ादी रहती है और बाहरी परीक्षाओ के रूप मे उन पर विशेष नियत्रण नही होता।

इसका एक दृष्टान्त यहाँ देता हूँ। यह दृष्टान्त निकोलास मुरी बटलर के संस्मरणों से लिया गया है जो न्यूयार्क स्थित कोलम्बिया यूनिवर्सिटी के कई साल तक अध्यक्ष थे। उनके कुशल अध्यापन का स्तर बडा ऊँचा था और अपने कालेज के प्रति जो वफादारी की

उसके कारण कभी भी उन्होने अपने अध्यापन स्तर पर आँच नही आने दी। वे उन्नीसवी सदी के अत मे कोलम्बिया कालेज मे पढाते थे। शास्त्रीय साहित्य उनका प्रिय विषय था। उन्होने अपने सस्मरण मे लिखा है कि ग्रीक भाषा पढाने वाले अध्यापक ड्रिजलर महोदय "पढाते समय व्याकरण की बारीकियो पर इतना ज्यादा ध्यान देते थे कि उनके पढाने के समय हमारी आँखे धरती पर गढी रहती थी और जिन महान साहित्यिक कृतियो को हम पढ रहे होते थे उन मे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बातो की जानकारी और उनकी सुन्दरता का रसा-स्वादन हमने शायद ही कभी किया हो।" उदाहरण के लिए मुझे याद है कि पढाई के दूसरे वर्ष की पहली टर्म मे ड्रिजलर से हमे युरिपाइडिस की दुखान्त रचना 'मेडिया' पढने का मौका पडा और टर्म खत्म होने तक हमने देखा कि उस किताब की २४३ पक्तियाँ ही खत्म हो सकी थी। दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते हैं कि उस अर्से मे हमे यह नही मालूम हो सका कि मेडिया जिस को हम पढ रहे थे, किस बारे मे लिखी गयी थी या उसकी कथा का क्या महत्त्व है और उसकी काव्य-कला किस स्तर की है।

यह एक गभीर आरोप है और आरोप लगाने वाले भी एक ऐसे आदमी हैं जो शास्त्रीय साहित्य या यो कहिए कि शिक्षा मे अगाध श्रद्धा रखते थे। यह कितना हास्यास्पद जान पडता है। इससे तो वह कथा याद हो आती है कि किसी आपेरा (Opera) मे भाग लेने वाले कलाकार को यही मालूम नही होता कि वह सगीत नाटक किस तरह खत्म होता है क्योकि वह तो दूसरे ही दृश्य मे मार डाला जाता था और मर जाने के बाद वह कलाकार अपने घर चला जाता था। लडके मेडिया के शेष भाग को खुद ही "पढ" सकते थे अगर मौलिक रचना नही तो कम से कम उसके अनुवाद की सहायता से। फिर भी इस मे सदेह नही कि उसमें उनकी अरुचि हो गयी थी।

लेकिन थोडी देर के लिए जरा इस बात पर विचार करे कि ड्रिजलर महोदय किस तरह उस पढाई का नियोजन करते थे। 'मेडिया' मे लगभग चौदह सौ लाइने हैं। अमेरिका मे एक टर्म लगभग चौदह हफ्तो का होता है। इस से जाहिर है कि उनको एक हफ्ते मे एक सौ लाइनें खत्म करनी चाहिए थी या अगर कुछ समय भूमिकात्मक लेक्चर और विचार विनिमय के लिए निकाल दिया जाय तो शायद एक सौ से कुछ ज्यादा लाइनें पडती। इस का मतलब यह हुआ कि क्लास को हफ्ते मे कम से कम उनको औसतन सत्रह लाइनें पढानी चाहिए थी जो बहुत कम हैं। अगर क्लास हफ्ते मे तीन बार लगती हो तब तो और भी कम। तब वे उतनी धीमी गति से क्यो पढाते थे और क्यो उस रचना की एक हजार लाइनो को उन्होने छूआ तक नही? क्या इसका कारण यह था कि वह क्लास ही अपेक्षाकृत सुस्त थे? क्या उसकी वजह यह थी कि वे उस अनुवाद को समझाने मे कम समय लगाते और उसकी व्याख्या करने मे अधिक समय लगाते थे? बटलर महोदय पौराणिक बातो का मतलब बताना नही चाहते हो या व्यथावादी के रूप मे "युरिपाइडिस" की सफलताओ को नही समझाना चाहते हो, ऐसी बात नही थी। इसकी वजह यह थी कि वास्तव मे उनकी सच्ची अभिरुचि व्याकरण और वाक्य-रचना में थी और जब तक वे इन चीजो को पढा

सकते थे उन्हे पौराणिक मान्यताओ और अमर दुखान्त रचनाओ का, काव्य और मानव प्रकृति, यूनान की महान् देन, सतुलित निर्माण का ज्ञान (Sense of structure) की कोई परवाह नही थी। इन्ही गुणो से कोई कलाकृति अपने अग-प्रत्यगो के सतुलन से सम्पूर्णता प्राप्त करती है। चाहे वह कोई मन्दिर हो या दार्शनिक सम्वाद या कोई नर्तन या कोई नाटक।

लेकिन इसमे सन्देह नही कि अगर आपने ड्रिजलर महोदय पर यह आरोप लगाया होता कि यूनानी भाषा के अध्ययन मे जो मुख्य गुण हैं उनमे से कईयो को उन्होने नही समझाया तो शायद उनको अचरज और दुख होता। तव अध्यापक महोदय विद्यार्थियो को यही समझाते कि उस विषय पर वे जो कुछ कहना चाहते थे अगर कहते तो उनके लिए एक टर्म मे २४६ पक्तियो से अधिक पढाना कठिन था। अगर आपने उनको उस समय यह सुझाव दिया होता कि वे समूचे नाटक की अपने विद्यार्थियो को रूपरेखा सक्षेप मे वताकर विचार कर सकते थे और उस रचना के प्रमुख भाषण और समूह गीतो को पढकर और समझाकर और वाकी हिस्से के लिए विद्यार्थियो को स्वय पढ लेने का प्रोत्साहन देकर उसे खत्म करा सकते थे तो शायद उन्होने उस विचार को अध्यापन के मौलिक स्तरो का छद्म-पूर्ण विकृति माना होता। शायद वे सचमुच इस वात मे विश्वास करते थे कि उन्होने सारा नाटक पढा और हर साल, जब २५० लाइनो के पहले रुक जाते तो वे आश्चर्य से अपना सिर हिलाते कि इस बार भी वे उससे ज्यादा आगे नही वढ सके।

साहित्य पढाने वाले अध्यापक विशेष रूप से ऐसी गलती करते हैं क्योकि अपने विषय का कुछ भाग तो उनको इतना प्रिय होता है कि वे पूरे कोर्स को खत्म करने की जगह अपने मनचाहे भाग पर ही रुका रहना ज्यादा पसन्द करते हैं। यह अनुराग दोष नही एक गुण है। जिस विषय को पढाने मे अध्यापक ज्यादा उत्साह दिखाये उसको पढने मे विद्यार्थी ज्यादा आनन्द अनुभव करते हैं। मैंने अपने जीवन मे जितने पाठ पढे उनमे सवसे सुन्दर वे पाठ थे जिनको पढाने के लिये अध्यापक ने अपने आख्यान पहले ही से तैयार नही किये थे। वैसी दशा मे अध्यापक अपने नोट एक तरफ रखकर हम लोगो की तरफ सहृदयता और उत्सुकता से देखता हुआ अपनी जिगरी वातो को हमे वताता और उनको तर्कपूर्ण टग से समझाकर हममे उस विषय के प्रति अनुराग पैदा करता। जव आपने अपने विद्यार्थियो के साथ सच्ची सहानुभूति स्थापित कर लेगे तो आपको इस वात का ज्ञान हो सकता है कि जव आप उन्हें कोई पाठ समझा रहे हो उस समय कव वे आपके हर शब्द से लाभ उठा रहे हैं, प्रत्येक मुहावरे का आनन्द ले रहे हैं या कव वे विचरामग्न हैं और तव आपका यह कर्त्तव्य है कि जहाँ तक आपका तर्क, उत्साह और गहन शक्ति ले जाय वहाँ तक उन्हे वताते जायें। जो कुछ आपने पिछले हफ्ते पढाया था उसका सार वता दे। आप कहाँ तक पहुँच चुके हैं यह उनको समझा दें और इस वात की तसल्ली करले कि कक्षा आपके साथ चल रही है या नही। आप एक पथप्रदर्शक हैं, भगू नही।

उद्देश्य की अनुभूति, शिक्षा के महत्त्वपूर्ण योगदान में से एक है। उद्देश्य प्राप्ति

की अनुभूति इसके प्रमुख पुरस्कारो में एक है और रचनात्मक क्षमता को विकसित करना इसके मुख्य उद्देश्यो मे से एक है, जो अध्यापक-मामलो मे दूरदर्शिता और समन्वय के रूप मे और कला मे तारतम्य को समझने और उसके निर्माण की शक्ति के रूप में मुखरित होती है। जब अध्यापक पढाने के लिए पाठ की तैयारी कर रहा हो उस समय उसे इन सभी बातो को ध्यान मे रखना चाहिए। दृष्टान्त और व्यवहार के जरिये वह उनको दिखा सकता है कि एक दिन का काम दूसरे दिन पर छोडना दुर्वलता है और ज्ञानवर्धन करने और नियोजित ढग से काम करने मे बल मिलता है।

ऐसा करने का सबसे अच्छा ढग यह है कि जो काम क्लास को करना है उसे नियोजित किया जाय। विद्यार्थियो को उस योजना की जानकारी करायी जाय और अध्यापक यह निश्चित रूप से जान ले कि विद्यार्थी उसे ध्यान मे रखते हैं और जब पढाई पूरी हो जाय तब उसको दुहरा कर उसका साराश उन्हे वता दिया जाय। बच्चो मे लम्बी योजना बनाने की क्षमता नही होती। वे एक दिन से ज्यादा लम्बी योजना नही बना सकते या ज्यादा-से-ज्यादा एक शुक्रवार से दूसरे शुक्रवार तक। उससे ज्यादा नही। कभी-कभी अध्यापको को भी यह रोग लग जाता है या पढाने की योजना वनाने और उस पर अमल करने से बचने मे इसका लाभ उठाते हैं। अक्सर वे एक टर्म किसी एक ही पाठ्य-पुस्तक को पढाने मे निकाल देते हैं। अपने विषय के किसी एक भाग को समझाने मे विता देते हैं। जैसे-जैसे हफ्ते निकलते जाते हैं वैसे-वैसे वे उनको भुलाते जाते हैं और इतिहास की एक तारीख से दूसरी तारीख और एक अध्याय से दूसरे अध्याय पार करने में निकाल देते हैं। यद्यपि ऐसा करना सहज मालूम होता है लेकिन ऐसा करना विद्यार्थियो और कभी-कभी तो स्वय अध्यापक को भी नीरस लगता है। हरेक अध्यापक ने ऐसे दुखभरे परिसवाद सुने होगे

"तुम कल क्या पढाने जा रहे हो ?"

"ओह, ट्रेविलियन की पुस्तक के तीस पन्ने। और तुम ?"

"मुझे भी गेटे की पचास लम्बी-लम्बी लाइनें पढानी हैं। कितनी लम्बी हैं वे लाइने।"

"कितनी लम्बी" तो वे इस तरह आह भर कर कहते हैं जैसे विश्राम कर रहे किसी थके-माँदे दुर्वल घोडे को जगा कर उसे खेत जोतने या सडक पर चलाने की बजाय किसी भारी चक्की के जुये मे जोतकर यह कहा जाय कि वह उसके चारो ओर तीन सौ या तीन हजार बार चक्कर लगाये।

इसमें शक नही कि बच्चे इस तरह की बाते अवश्य करेंगे भले ही उनका काम कितना ही सुव्यवस्थित ढग से क्यो न नियत किया गया हो। क्योकि उनको अपनी कठिनाइयो को बढा-चढाकर कहना अच्छा लगता है। इतना होने पर भी अगर उनके सामने कोई लक्ष्य हो तो वे ज्यादा अच्छी तरह, चतुराई से और जल्दी-जल्दी काम करते हैं। अगर उनके मन में यह बात समा जाय कि उपरोक्त तीस पन्नो में समकालीन युग की सबसे

वडी घटना का वर्णन है या अगर जरा भी वे यह समझ ले कि फॉस्ट (Faust) की अमुक पक्तियाँ उन घटनाओ से सम्बन्ध रखती हैं जिन्हे वे अब तक पढ चुके हैं या पढने जा रहे हैं, तो वे अपने काम को शायद चक्की के पत्थर को खीचने वाले घोडे से ज्यादा सचेष्ट ढग से करेंगे।

अत हरेक क्लास को काम शुरू कराने से पहले उसकी पूरी रूपरेखा और साराश वता दिया जाना चाहिए। कुछ अध्यापक सिर्फ अपने विषय की मौलिक रूपरेखा ही बताते हैं। दूसरे अध्यापक ठीक से तैयार किया हुआ कार्यक्रम जिसमे परिच्छेद और उपरिच्छेद होते है, लिखवाते हैं। कुछ दूसरे अध्यापक छपे पन्ने मे हफ्तेवार नही वल्कि विषय के तारतम्य के अनुसार पढाये जाने वाले मुख्य विषयो को बाँटते हैं। इसका उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी स्वय ही यह समझ जाय कि विषय के एक हिस्से का दूसरे से क्या अन्तरग सम्बन्ध है और इस तरह वे उन पाठो पर सवाल कर सकेंगे जो उन्हे खास तौर से अच्छे लगते है या अगर वे गैरहाज़िर है तो उसकी सहायता से उन्हे यह मालूम हो जायेगा कि अपनी गैरहाजिरी मे उन्होने क्या कुछ खोया है। कला, साहित्य, भाषा, दर्शन, इतिहास, राजनीति आदि मानव-शास्त्रो को पढाने के लिए उनको टुकडो मे बाँटना या हफ्ते की खुराक के मुताबिक उनको पृथक करना आशातीत नही होता। ऐसे विषयो को पढाते समय अच्छा यह होगा कि क्लास मे होने वाली गोष्ठियो मे किसी निश्चित कार्य-क्रम का पावन्द न वना जाय। वहाँ काम के बौद्धिक ढाँचे को तैयार करना और जताना ही उचित होगा। विज्ञान, नीति (Law) तथा भैषज जैसे विषय पढाते समय किसी निश्चित कार्यक्रम पर चलना ज्यादा अच्छा होता है।

एक कथानक मे एक राजा किसी सफेद खरगोश को आदेश देता है कि वह शुरू से लेकर अखीर तक अपना वयान दे। इस प्रकार शुरू से आखिर तक बात वताना एक कहानीकार के लिए तो विलकुल ठीक है लेकिन अध्यापको के लिए यह अच्छी सलाह नही है। मान लीजिये कि आप कोई जगह देखना चाहते हैं। ऐसा करने का सबसे बुरा तरीका यह होगा कि आप कार मे वैठकर उस जगह को एक छोर से दूसरे छोर तक सीधे चले जायें, और घूमकर वापिस लौट आयें। वहुत से अध्यापक कठिन विषयो को पढाने मे भी ठीक ऐसा ही करते हैं। यही वजह है कि कुछ विद्यार्थी ज्यादा शरारती दिखाई पडते हैं। लेकिन वास्तव में वे इतने शरारती नही होते। सच तो यह है कि वे अकचका जाते हैं और यह नही जानते कि वे कहाँ जा रहे हैं और उनका उद्देश्य क्या है, और उन्हे क्या देखना चाहिए। उनको अपनी कठिनाइयो का आभास नही मिलता और आने पर वे उनका सामना नही कर सकते और न वे अपनी मजिल ही पहचानते है। वे तो सिर्फ इतना ही जानते हैं कि हर शुक्रवार को अडतालीस (दो दिनो) घटो के लिए उनकी यात्रा रुकती है। कितना अच्छा होता कि अगर अपनी यात्रा पर चलने से पहले इन यात्रियो को उस देश के वारे मे कुछ वताया जाता और पढने के लिए उनको नक्शे दिये जाते। सफर के दौरान मे जगह-जगह पर रुक कर विश्राम कर लेना और कुछ बातें दुबारा वता देना,

सुरम्य स्थलो का चित्र दिखा देना और यात्रा के अन्त मे फिर एक बार नक्शे से उन्हे अवगत करा देना भी मुनासिब होगा।

बहुत से पाठ्य पुस्तको मे वही गलती की जाती है जो गलती ऊपर बतायी गई कहानी मे राजा करता है। ये पुस्तकें पाठको को यह साफ साफ नही बताती कि वे क्या पढने जा रहे हैं। उनके पढने से यह नही मालूम होता कि उस पुस्तक के एक हिस्से का दूसरे हिस्से से क्या सम्बन्ध है ? उनका अन्त प्राय अनायास और बेतुका होता है और वहाँ समुचित निष्कर्ष और पीछे की बातो का लेखा-जोखा नही दिया होता है। जहाँ तक मुझे याद है मैंने कभी होमर की पहली पुस्तक पढी थी। वह एक भद्दे और भूरे रग की पुस्तक थी। इसके विज्ञ प्रस्तुतकर्ता ने हरेक पक्ति के बाद विवर्णात्मक टिप्पणियाँ लिखी थी (खासकर होमरिक व्याकरण जैसे रोचक विषय पर) फिर भी उन्होने यह लिखने का कष्ट नही किया था कि—

—अमुक होमर कौन था ?

—वह किस काल और किस देश मे हुआ था ?

—इलियाड् क्या चीज थी ?

—इलियाड् की "पहली पुस्तक" क्या थी ?

—कविता को मौलिक रूपरेखा क्या थी और "पहली पुस्तक" मे उसका क्या स्थान था ?

साधारणत लोगो का यही अनुभव था और आज भी है। यहाँ पर हम खराब पढाई का एक दूसरा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इसको एक ऐसे व्यक्ति ने लिखा है जो स्वय साहित्य प्रेमी था और एक अच्छा अध्यापक बना। सन् १८८३ ई० मे जब विलियम लियन फेल्यस येल मे आये तो उन्होने देखा कि "सकाय के स्नातक अभिशापग्रस्त हैं और उनके पढाने का ढग कुठित हो गया है।" उन्होने होमर के काव्य पढने के लिए अपने को क्लास मे दाखिल करा लिया। वहाँ हफ्ते मे तीन घटे के हिसाब से होमर का साहित्य पढाया जाता था। अब अगर वैसा मौका हो तो यह आशा की जा सकती है कि यह होमर की अमूल्य कृतियो मे अपने विद्यार्थियो को पूर्ण पडित बना देगा। वह चरित्र-चित्रण, कथावस्तु, भाषा का लालित्य, अनन्त सगीतमय कविता, होमर युग का वर्णन, युग-युगान्तरो मे होमर की व्याख्या और होमर को दुखान्त रचनाओ का जनक, यूनान का शिक्षक, उनके जरिये सारी दुनिया को अध्यापक के रूप मे भी प्रस्तुत कर सकता है, लेकिन नही।

"अध्यापक ने कभी अपना सुस्त कार्यक्रम नही बदला और न कभी टिप्पणी ही की। बल्कि वे तो विद्यार्थियो को ही पढने, अर्थ समझाने या छन्द बनाने के लिए कहते थे। उसके बाद वे कहते, "इतना काफी है, यही निशान लगा लो।" इस तरह क्लास मे असह्य दासत्व के बाद जून मे पढाई खत्म करते हुए जब निर्लिप्त भाव से यह कहते कि 'अब तक मनुष्य के मस्तिष्क से निकलने वाली अत्युत्क्रम चीजो में से होमर की कविताएँ भी एक हैं। अब क्लास खत्म होती है' तो मुझे आश्चर्य होता और हम धूप

में चले जाते।"

जाहिर है कि ऊपर कहे गये एक ही वाक्य मे यह अध्यापक अपने अनगिनत घण्टो की पढाई को सार्थक करने की कोशिश करता था। इसके बचाव मे यह कहा जा सकता है कि महान् साहित्य को पढने के लिए दलील पेश करने की जरूरत नही होती। लेकिन यह बात केवल वयस्को पर ही लागू होती हैं। बालको के लिए ऐसी बातो को बताने की जरूरत पडती है क्योकि वे इतना निश्चिय नही कर पाते कि कौनसा साहित्य पढने योग्य है। वे होमर के साहित्य को तब तक उत्कृष्ट नही बता सकते जब तक वे उसे पढ न ले। साहित्य की उत्कृष्टता के अर्थ के बारे मे भी उनकी ग्रहण शक्ति अधिक गहरी नही होती। आपके लिए अच्छे विषय का गुणगान करना आवश्यक नही लेकिन आपको उसे जरूर समझना होगा और एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करनी होगी जिससे उनके गुण अपनी विशेपताएँ दिखा सकें। कुछ लडके-लडकियो मे सगीत के प्रति अनुराग पैदा करने के लिए अगर आप उन्हे सिर्फ बीथोवेन की २०-२५ कृतियो को पढने को कह दे, हफ्ते मे एकाध बार साल भर उनमे से कुछ एक को प्यानो पर बजाकर सुना दे, उनके लयो पर विचार विमर्श न करे, लय के सम्बन्ध मे बीथोवेन के विचार का विकास, उसकी सगीत रचनाओ के भेद, उसकी कला मे समय और जीवन का प्रतिबिम्ब, उसके पूर्वज और भावी सगीतज्ञो से उसका सम्बन्ध और उसकी हरेक रचना मे लय के सौन्दर्य और शक्ति का वर्णन न करें तो इसका नतीजा यह होगा कि उनमें से कुछ ही लडके-लडकियाँ उन्हे आसानी से बजा सकेंगे और शेष जीवन भर सगीत से घृणा करेंगे।

तब प्रश्न यह उठता है कि इतने बडे कोर्स की पढाई को किस तरह नियोजित किया जाय? चाहे पढाने का विषय होमर हो या मिल्टन, बीथोवेन हो या दाते (Dante) योजना पर इसका कोई विशेप असर नही पडता यद्यपि इसमे सन्देह नही कि क्लास मे विद्यार्थियो की सख्या के मुताबिक पढाई को व्यवस्थित करना होगा। पहला काम यह होगा, उबा देने वाली पढाई को कम किया जाय और ऐसे लेक्चर और गोष्ठियो की सख्या बढा देनी होगी जिसमे विषय पर सविस्तार विचार हो। इसके बाद पढाई के विभिन्न तरीको मे फेर बदल करते रहना होगा जिससे क्लास मे एक ही बात कई बार ज्यो की त्यो दुहरायी जाय या फेल्यस के तथाकथित "उबा देने वाली दिनचर्या" और "असह्य थकान" (Intolerable drudgery) का पुनरावर्तन हो। तीसरी ज्ञातव्य बात यह होनी चाहिए कि कोर्स के विपय वस्तु को विदेशी शब्दो का बेडौल रूप समझकर न पढा जाय, न उसका अनुवाद किया जाय या विश्लेषण किया जाय बल्कि बौद्धिक और कला की दृष्टि से उसे सम्पूर्ण और शाष्टाग समझना चाहिए।

कोर्स का आरम्भ दो तीन लेक्चरो से हो जिसमे बीच-बीच मे प्रश्नोत्तर और गोष्ठियाँ भी चलनी रहे। इन लेक्चरो मे अध्यापक को उस विषय पर साल भर मे जो कुछ काम कराना है उसकी रूपरेखा प्रस्तुत करनी चाहिए। उसे विद्यार्थियो को किस ढग से पढाई करनी चाहिए, यह बताना चाहिए और उन्हे कौन-कौन-सी पुस्तके पढाई के लिए लेनी

जरूरी हैं और कौन-कौन-सी पुस्तकें विशेष रूप से लाभकारी होगी, यह भी बताना चाहिए। इसके बाद वे होमर की दो कविताएँ पढाये जिसमे सबसे पहले उसका इतिहास, तब प्रारूप और शैली, बाद मे भाषा और उसके बाद कुछ शब्दो मे कथावस्तु का साराश बताए। इसके बाद मूल ग्रन्थ की पढाई "ओडिसे" से शुरू की जाय क्योकि यह सहज है और उसकी कहानी ज्यादा तेजी से आगे बढती है। यह शायद इसलिए भी अच्छा होगा क्योकि साधारणत लोग "इलियाड" से ही होमर के साहित्य की पढाई शुरू करते हैं। इसके कथावस्तु और पात्रो का पूरा परिचय देकर और इसको आसानी से समझ मे आने लायक भागो मे बाँटकर अध्यापक पुस्तक को ज्यो-का-त्यो क्लास मे पढा सकते हैं। हाँ, कभी-कभी स्वय इसका अनुवाद करके, कभी विद्यार्थियो से जबानी इसका अनुवाद कराके, कभी उनकी निपुणता जाँचने के लिए लिखित परीक्षा लेकर और कभी-कभी (पोप, चैपमैन, न्यूमैन और आरनल्ड, बटलर, लैंग और उनके साथियो, विलियम मौरिस, मौरिस ह्यूलेट, टी० ई० लारेन्स तथा) दूसरे नये सस्करणो के अनुवादो मे से उन्हे पढाकर और अनुवाद के तरीको पर विद्यार्थियो से टीका-टिप्पणी कराकर उन्हे पढाया जा सकता है। यदि अध्यापक के पास सारी कविता पढाने के लिए समय न हो तो वे भद्दे और बार-बार आने वाले हिस्सो को छोड सकते हैं, लेकिन उनका भी साराश सावधानी से करके उनको बता देना चाहिए और अनुवादो मे उन हिस्सो को उन्हे पढा देना चाहिए। "ओडिसे" को खत्म करते समय उन्हे रुककर सारी कविता पर एक बार विचार-विनिमय कर लेना चाहिए।

इसके बाद "ओडिसे" और "इलियड" दोनो पर एक ही साथ लेक्चर दिया जा सकता है और इस प्रश्न पर विचार किया जा सकता है कि सचमुच ये दोनो एक ही व्यक्ति या एक ही परम्परा के कवियो द्वारा लिखे गये हैं। यह भी बताया जा सकता है कि उन दोनो में कितनी समताएँ और कितनी विभिन्नताएँ हैं और समालोचक ने कितने सुन्दर-सुन्दर विचार उनके बारे मे व्यक्त किए हैं। ("लौगिनस" का कहना है कि "ओडेसे" एक डूबते हुए सूरज के समान महान किन्तु शक्तिहीन है) इसके बाद अध्यापक "इलियाड" का साराश बताएँ और पहले की तरह उसका अनुवाद करें। खत्म करते हुए जब वह उसकी अन्तिम चार महान पुस्तको को पढायें जो पाश्चात्य देशो मे पद्य रचना की सर्वोत्तम कृतियाँ हैं, तो वह सारे महाकाव्य पर गौर करे और दोनो कविताओ के बारे मे विद्यार्थियो को प्रश्न पूछने की आज्ञा दे।

अन्त में इन रचनाओ के इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए यूनान और रोम मे उनकी कितनी कद्र है उनको बताते हुए यह दिखाया जा सकता है कि कहाँ वे यूनान के व्यापक पाठ्य पुस्तक बने, कहाँ प्लेटो आदि दार्शनिको ने उन्हे झूठा बताया, कहाँ उन पुस्तको ने साहित्यिक समालोचना की नीव रक्खी, कहाँ उनका मजाक उडाया गया, कहाँ वे प्रसिद्ध हुए और कहाँ उन्हे पसद नही किया गया। इसी तरह वे यह भी बता सकते हैं कि मध्य युगो मे किस तरह वे भुला दिये गये, जब पश्चिमी यूरोप से एकाध सनकी लोगो (Eccentrics) को छोडकर बाकी सब लोगो ने ग्रीक भाषा को भुला दिया था। तब पेट्रार्क (Petrarch)

और बोकाशियो (Boccaccio) जैसे व्यक्तियो द्वारा उन्हे फिर से रेनेशो (Renaissance) के शुरू में खोज निकाला गया और रेनेशो साहित्य जैसे ट्रायलस (Troilus), क्रेसिडा (Cressida), पैराडाइज लोस्ट (Paradise Lost) पर उनका क्या प्रभाव पडा, सत्रहवी और अठारहवी सदियो के समाज मे लोगो का उनके प्रति भ्रम, अठारहवी सदी के अन्त मे उनका पुनर्जन्म और शैली (Sheley) और शातोब्रीया (Chateaubriand), गेटे (Goethe) और कीट्स (Keats) पर उनका प्रभाव और आधुनिक साहित्य पर उसका असर समझाना होगा। यह काम अगर ठीक ढग से किया जाय तो क्लास मे यह चर्चा चल पडेगी कि साहित्य मे महाकाव्य का क्या स्थान है और अध्यापक आसानी से यह काम अपने दूसरे सहयोगियो के काम के साथ तथा उस क्लास को पढाये जाने वाले दूसरे मानव शास्त्रो की पढाई मे शामिल कर सकता है। अत होमर के सम्बन्ध मे खास-खास बातें बताकर, बहुत से प्रश्नो का उत्तर देकर और कुछ प्रश्नो को अधूरा छोडकर अधखुल दर्वाजे की तरह अपने विद्यार्थियो की अभिरुचि बनाये रखने के लिए वह अध्यापक पढाई खत्म कर सकता है। लेकिन कोर्स का अन्त "अब क्लास खत्म होती है।" से ज्यादा सहानुभूति पूर्ण शब्दो से होनी चाहिए।

इस तरह की पढाई का एक खतरा यह है कि इससे किसी आदमी का ज्ञान सहज ही छिछला और अधूरा बन जाता है। लेकिन यह एक ऐसा खतरा है जिससे सभी अध्यापक त्रस्त हो सकते हैं। यदि वे रोचक बनना चाहते हैं तो सम्भव है उनका काम अधूरा रह जाय। अगर वे बिल्कुल पढाई पूरी करने का प्रयास करे तो हो सकता है वे नीरस साबित हो। पूरी पढाई और पूरी शिक्षा ऐसी बौद्धिक क्रियाएँ हैं जो दिमाग को थका देती हैं, फिर भी जरूरी नही कि वे नीरस हो। फेल्पस बटलर और उनके समकालीनो ने ऐसी शिकायत नही की थी बल्कि बार-बार पढने और विषय के किसी एक ही हिस्से को बार-बार दुहराने से पैदा होने वाले क्षोभ के बारे मे विरोध किया था। हाँ, निश्चय ही होमर की कृतियो की इस तरह से पढाई, जिसमे केवल अनुवाद और विश्लेषण हो और टीका-टिप्पणी और विचार-विमर्श न दिया हो, वह पढाई एक ऐसे कोर्स से कम नही बल्कि कही ज्यादा छिछली रह जाती है जिसमे लेक्चर, साराश, विचार-विमर्श और मूल-ग्रन्थ की आवश्यक पृष्ठ-भूमि बताकर पढाई की जाती है। लेकिन अगर एक कुशल अध्यापक इन दोनो तरीको के दोष और खतरो को ध्यान मे रख कर पढाये तो वह उन दोनो से बच सकता है।

क्या छिछलेपन से ही बचने के लिए फेल्पस के अध्यापक ने इतने घातक और नुकसानदेह तरीके से पढाने का नीरस ढग अपनाया ? क्या इसकी और कोई दूसरी वजह नही थी ? यह कहना ठीक है कि वह अपने विषय से नफरत करता था—लेकिन सम्भव है वह नफरत करता भी हो और उसकी अभिरुचि होमर के काव्य की न होकर नस्क्रत पढने की हो। निश्चय ही वह अपने विद्यार्थियो को नही पसन्द करता था और यह भी हो सकता है कि वह अपने से ओहदे मे बडे साथियो के अन्यायपूर्ण और कडवे व्यवहार मे दबा हुआ भी हो। लेकिन मेरा विचार है कि बहुत से अध्यापक जो अपने काम को नियोजित ढग से नहीं

करते उनको एक तरह का व्यवसायिक रोग लग जाता है क्योंकि उनका जीवन ऐसे काम मे नही लगा होता जिसमे जल्दी फल मिले या जल्दी मुनाफा होता हो। इस लिए उनके ऐसे आदमी बन जाने का भय रहता है जिनको कपकपी (Ditheres) लगी रहती है। कभी-कभी तो न वे अपने जीवन या काम को ही नियोजित करते हैं। करीव-करीव सब धन्धो मे इनिशियेटिव (Initiative) और लाभ-हानि को सतुलित करने जैसी आदतो की जरूरत पडती है। हर डाक्टर के पास उसके रोगियो का हिसाव-किताव होता है और अगर उनमे किसी के पास आपरेशन का कोई मुश्किल केस आ जाय तो उन्हे हर पॉच-छ घण्टे के बाद अपनी वही देखने की जरूरत पडती है। किसी वकील को भी अपने कोर्ट की नियमावली का पालन करना पडता हे और पुकार होती है तव उसे पहले से ही उत्तर देने के लिए तैयार रहना पडता है। व्यापारियो को भी हिसाव-किताव, आमद-खर्च की सालाना वही, शेयर होल्डरो और डायरेक्टरो की सभाओ आदि से अवगत रहना पडता है और इसमे भी वे पीछे का हिसाव-किताव करते हैं और भविष्य के लिए सोच-विचार करते हैं। लेकिन अध्यापक और विद्वान्, जो कम किन्तु नियमित रूप से मासिक वेतन पाते हैं और लम्बी छुट्टियो का लाभ उठाते हैं, महीनो और सालो एक ही थोडी-वहुत हेरफेर से क्लास की एक ही दिनचर्या पर चलते हैं। न कभी उनकी दिशा वदलती है और न उन्हे वरावर पतवार ही सम्भाले रहना पडता है।

अब वाल्टर हेडलैम का एक वर्णन सुनिये जो उनके मित्र और साथी वेन्सन ने प्रस्तुत किया है। हेडलैम केम्ब्रिज के एक अध्यापक थे और ग्रीक तथा लैटिन का उन्हे वहुत अच्छा ज्ञान था। शायद उससे काफी ज्यादा जो वे विद्यार्थियो और पाठको को वताया करते थे। नीचे दी गयी घटना से उनके काम करने के ढग का दिलचस्प परिचय और कारण मिलता है।

एक दिन उनके लिए दाढी वनाने का पानी तैयार न था। इस लिए सुबह नाश्ते के बाद एक छोटी केतली में पानी भर कर अपने स्प्रिट लैम्प के ऊपर गर्म होने के लिए रख दिया। जब तक वे इन्तजार करते रहे उस समय वे अपनी कुर्सी पर बैठ कर शाम के वक्त तैयार किए गये नोट को यदाकदा देखने लगे। वह नोट ग्रीक समूह गान के लय मे किसी परिवर्तन या उनके "हैरोडा" (Herondas) के किसी शब्द के बारे में था जिसका अर्थ उनको किसी शब्दकोष मे नही मिल रहा था। लेकिन उनको यह याद था कि उन्होंने एरिस्टोफेन्स की किसी टीका मे उसको पढा था। वह पुस्तक जिसे वे चाहते थे कहाँ थी? उनके कमरे मे पुस्तको से भरी अलमारियो का ताता-सा लगा था और मेज़ पर उनका ढेर लगा पडा था उन्ही के नीचे और दूसरी पुस्तकें बिखरी पडी थी और वे जब उन्हे हटाने लगे तो ऊपर से पुस्तकें ढह कर इधर-उधर बिखर गयी। मेज के एक किनारे पर अपनी पाइप को रख कर वे वही पन्ने उलटने लगे तो उन्हे पता चला कि यह वह पुस्तक नहीं जिसे वे आज ढूंढ रहे थे वल्कि वह वो पुस्तक थी जिसको वे कल ढूंढ रहे थे। इस बात को एक कागज पर नोट करके उन्होंने पाइप उठा ली जो वुझ चुकी थी। पास मे

कोई दियासलाई न थी। इसलिए नोट किए हुए कागज के टुकडे को सुलगाकर उन्होने स्प्रिट लैम्प से अपनी पाइप जलायी। तब उन्हे वह पैरा मिल गया जिसे उन्होने शुरू मे ढूंढना शुरू किया था। यह एक बहुत ही दिलचस्प किन्तु अशिष्ट और गँवारू शब्द था जो इससे पाँच सौ वर्ष पूर्व कोरिन्थ नामक स्थान मे वैश्याओ मे प्रचलित था। जान पडता था कि इन चतुर स्त्रियो की एक अपनी ही अक्खड भापा थी। इसके अलावा उन्हे और भी उनके शब्द मिले। वे इस खोज मे अपनी सुध-बुध खो बैठे। उनको कई बार अपनी पाइप जलानी पडी और तब तक किसी धातु से निकलने वाली दुर्गंध ने उन्हे कुछ क्षण के लिए जीवन के भूतल पर उतारा। दाढी बनाने के लिए जो पानी वे गर्म कर रहे थे वह सब जल चुका था। इसलिए उन्होने स्प्रिट लैम्प बुझा दी। देर गये सुबह मे उनका नौकर उनसे पूछने आया था कि वे लच मे खाने के लिए क्या आर्डर देंगे। उसे रोटी, मक्खन, पानी और थोडा बीयर लाने को कहा गया था जो दूसरे कमरे मे रख दिया गया था। घण्टे-दो-घण्टे तक गहरी खोज के बाद वे उस कमरे मे घुसे। खाने को पडा देख उनके मन मे कोई चाह पैदा नही हुई। लेकिन कटोरे मे से बीयर की एक घूँट पी कर उस कटोरे को लिए हुए वे अपनी टेबल पर जा पहुँचे और पुस्तको के बीच उसे रख छोडा। अनजाने में उन्होने उसके ऊपर एक मोटी कापी रख दी और वह बिल्कुल आँख से ओझल हो गया। तब उनको अलमारियो से पुस्तके निकालने की जरूरत पडी और ऐसा करते समय उनकी पाइप उनके पैर के नीचे आकर टूट गयी। लेकिन इससे उनके काम मे कोई फर्क नही पडा क्योकि आस-पास कई और पाइप पडे थे। यद्यपि इस भाग-दौड मे उनको भी यह देखना याद न रहा। उन्होने मन-ही-मन कहा, "मैं कोरिन्थ के वैश्यालयो मे प्रचलित गँवारू भापा का वृत्तान्त लिखूंगा।"

पतझड की दोपहरी के जल्दी से ढलते ही अँधेरा होने लगा। उन दिनो बिजली नही थी। वे कुछ मोमबत्तियाँ ले आये और उन्हे टेबल के किनारे रख दिया। उनको भूख लग गयी थी। चूंकि उनकी घडी रुक चुकी थी इसलिए समय का अन्दाजा लगाते हुए वे किसी तरह रोटी और पनीर को गले से नीचे उतारे जा रहे थे। हाँ, बीयर के बारे मे भी उनको यह याद था कि उन्होने मगाया था। लेकिन वह वही पडा हुआ था यह उनको पता नही चल रहा था। उसको रोटी और पनीर के साथ ही होना चाहिए था। उन्होने उसे सब जगह ढूंढा। यहाँ तक कि अपने सोने के कमरे मे भी। लेकिन वह कही न मिला। तभी ड्रेसिंग टेबल पर पडे उस्तरे को देख कर उनको यह याद आया कि उन्होने दाढी नही बनायी है। यह सच था कि उस समय गर्म पानी नही था। लेकिन ठण्डे पानी से काम चल जाता और यद्यपि तेजी से अँधेरा बढता जा रहा था फिर भी अब तक उन्होने बत्ती जलाने के लिए दियासलायी नही ढूंढी थी। मन मे सोचा कि मनुष्य को अँधेरे मे भी, जैसे अरस्तु ने कहा कि किसी काम को अँधेरे मे दुहराने से वह आप-ही-आप याद हो जाता है।

तब उन्हे मालूम पड़ा कि दियासलायी की सीके उनके पाकेट मे ही पड़ी थी। उन्होने

मोमवत्तियाँ जलायी और पुन कोरिन्थ मे ही पहुँच गये। इतने मे उनका नौकर अन्दर यह पूछने आया कि वे हाल मे जाकर रात का खाना खायेगे या अपने कमरे मे ही। उन्होने उसी जगह थोडा-सा ठण्डा गोश्त खाने का निश्चय किया। लेकिन दोपहर मे उन्होने जो बीयर मगाया था वह कहाँ गया ? नौकर का विचार था कि वह उसे अवश्य लाया था। लेकिन स्पष्टत ढूँढने पर न मिलने पर उसे झूठा बनना पडा। इसलिए उसने ठडा गोश्त खाने का निश्चय किया और बीयर का दूसरा कटोरा मँगवा कर रख दिया। इस साधारण भोजन के बाद वाल्टर हेडलैम सुबह तक कोरिन्थ की स्त्रियो के वृतान्त मे जुझे रहे। खोया हुआ कटोरा दूसरे दिन मिला।

(मैंने जिस घटना का वर्णन यहाँ किया है यह विवरण मनगढत नही बल्कि अक्षरश सत्य है)।

यह कथा तो सचमुच दिलचस्प है। हेडलैम का सारा त्याग, बहुरुचि ज्ञान के प्रति नि स्वार्थ अनुराग, तत्पर बौद्धिक चेतना, उनकी जिन्दा और दरियादिली, चुस्त और चालाक दिमाग और उनके हँसमुख व्यक्तित्व के परिचायक हैं। साफ सुथरा न रहना तो मनुष्य जाति का दोष है। लेकिन अपनी अभिरुचियो को चुनना या उनका वर्गो मे बाँटना और दैनिक जीवन की कौन कहे, यहाँ तक कि अपने सबसे प्रिय काम को भी सयोजित न कर सकना, उनमें इच्छा शक्ति के अभाव का सबूत है। यह कमजोरी करीब-करीब सभी विद्वानो मे पायी जाती है। और अध्यापको को तो यह खराब कर देती है। बहुत से अत्यन्त तेजस्वी विद्वान इस कमजोरी से इतनी बुरी तरह आक्रान्त होते हैं कि वे अपने सबसे प्रिय विषय पर भी कोई बडी पुस्तक लिखने, पूरा करने या छपवाने का भी निश्चय नही कर पाते हैं। वर्षों से किसी ऐसे सगीतज्ञ की प्रशसा हो रही है जो सगीत रचना (Fugue) के जन्म, और उसके विकास के बारे मे सब कुछ जानता है। लेकिन क्या उसके मित्र उसे इस विषय पर कोई पुस्तक छपवाने पर बाध्य कर सकते हैं ? कदापि नही। वह चाहे तो ऐसा कर सकता है क्योकि वह समय-समय पर उस पर लेक्चर देता है यद्यपि वह उन लेक्चरो को एक पुस्तक के रूप मे छपवाने से इन्कार करता है क्योकि उसको इस बात का भय है कि कही इस प्रकार पुस्तक के छप जाने के बाद उसे उसमें दिये गये सुझावो के लिए पछताना पडेगा। बाश (Bach) लिखित 'Art of the Fugue' (सगीत रचना की कला) पर वह एक उत्कृष्ट गोष्ठी का आयोजन करता है। यह गोष्ठी हर साल और भी अच्छी तरह होती जा रही है। जब कभी कोई प्रतिवादजनक पुस्तक छपती है तो वह कभी-कभी उनकी समालोचना करता है और कभी तीखे शब्दो मे और कभी-कभी इतने नैसर्गिक दृष्टिकोण से उन पर टीका-टिप्पणी करता है कि उस पुस्तक के लेखक की आत्मा को और भी गहरी चोट पहुँचती है। गत तीस वर्षों से वह सगीत रचना की पहली विधियो के बारे में मिलान (Milan) के अपने प्रतिद्वद्वी से आलोचना में लगा हुआ है। उसके हिमायती अक्सर भगवान से प्रर्थना करते हैं कि उसका प्रतिद्वद्वी कोई पुस्तक लिख डाले जिससे उनको भी विवश होकर कोई पुस्तक लिखनी पडे। लेकिन वास्तव मे ये दोनो

समय या समुचित ज्ञान के अभाव मे नही बल्कि इस कार्य के लिए उपयुक्त इच्छा शक्ति और परस्पर अनिवार्य आलोचना को बर्दाश्त करने के साहस के अभाव मे पुस्तके लिखे बिना ही जीवन बिता देते हैं।

अत नतीजा यह निकला कि पढाने के लिए किसी कोर्स को तैयार करने और एक बार तैयार करके किसी निश्चित योजना पर अमल करने के लिए इच्छा शक्ति की जरूरत होती है। इसके लिए विद्यार्थियो के साथ पर्याप्त सहानुभूति भी होनी चाहिए। पढाने की योजना बनाते समय अध्यापक को अपने मन मे जरूर यह प्रश्न पूछना चाहिये कि क्या वह योजना विद्यार्थी के लिए उपयोगी है, क्या बगैर दृष्टान्त के ही वे उसे समझ सकेंगे ? या क्या उनसे यह जानने की आशा की जा सकती है कि कोर्स को उसी के मुताबिक ढालना होगा ? कही जाकार बोलने लग जाना बहुत आसान है। लेकिन जहाँ तक पढाने का सवाल है, उसके लिए कलात्मक प्रवृत्ति होनी चाहिए जो अध्यापक अपने अध्यापन को सफलता से सयोजित करते हैं उनमे अक्सर सौन्दर्य भावना का बाहुल्य होता है। गिल्बर्ट मोरे कोई भी वाक्य बगैर सुन्दरता से घुमाये नही कहते थे। जब वे पढाते थे तो "अरर" या "मैं जो कहना भूल गया था" आदि गलतियाँ उनसे नही होती थी। उनके वाक्य पैराग्राफो मे बदल जाते और पैराग्राफ बगैर किसी मेहनत के एक वार्ता मे बदल जाते थे। ये खास वृतान्तो जैसे ज्ञान से भरे हुए, वार्तालाप जैसे अनौपचारिक मालूम पडते और छपे हुए लेखो की तरह सुसयोजित हुआ करते थे। सारा कोर्स ऐसा होता था जिससे नये-से-नये विद्यार्थी को भी प्रेरणा मिलती और विद्वान्-से-विद्वान् श्रोताओ के लिए भी कुछ सीखने की बात होती थी।

सबसे आवश्यक बात पूरे कोर्स का ढाँचा होती है। एक अध्यापक, जो बिना किसी परिचय के कमरे मे घुसकर और बिना अपने विषय के विभिन्न हिस्सो के अलग-अलग और सम्मिलित रूप के बारे मे कुछ बताए ही क्लास को पढाने लग जाता है उसका यह व्यवहार ठीक उस पत्र सपादक की तरह है जो आये हुए समाचार को ज्यो का त्यो एक ही क्रम मे आधा कालम बाजार भाव छापने के बाद, एक कार्टून और उसके बाद सपादकीय, आग लगने के दस समाचार, शेयर बाजार के भाव, सौन्दर्य प्रसाधन के कुछ नुस्खे और तब दो कालम मे पेरिस से प्राप्त सवाद (Despatch) को छापता है। वहाँ भी पाठको को समझाने के लिए भाषा मे फर्क होगा। लेकिन हम सबो ने ऐसे अध्यापको को भी सुना होगा जिनकी आवाज रेलवे स्टेशन के लाउड स्पीकरो की तरह तुच्छ-स्थानीय स्टेशनो की लम्बी सूची पढते रहते हैं और उनका सारा कार्यक्रम भी उतना ही तुच्छ जान पडता है। पढाई के तरीके को नियत किए बगैर किसी कठिन विषय को पढना या किसी कलात्मक विषय पर विचार करते समय अपने ही शब्दो मे व्यवस्था और समामजस्य जैसे कला के मौलिक गुणो पर प्रकाश डाले बिना ही विचार करना, पढाने का एक अच्छा मौका हाथ से खो देने के बराबर है। ऐसा करना अपने ही ज्ञान पर पर्दा डालना होगा। पढाने के इस मौके मे केवल तथ्यो के अलावा कुछ और भी ज्यादा जरूरी और महत्त्वपूर्ण बातें बताई जा

सकती हैं।

शुरू की तैयारी कर लेने के बाद अर्थात् कोर्स को नियोजित कर लेना और नोट्स लिख लेने के बाद क्या काम बच जाता है ? क्या अध्यापक साल पूरा होने पर अपने नोट्स को सावधानी से बद कर दे और हरेक नयी क्लास को पढाने के लिए फिर से निकाले, लेक्चर देने से पहली रात उसको दुहरा जाना और इस तरह इसमे थोडा बहुत हेर-फेर के बाद हर साल पढा दिया करे ?

नही, उसे ऐसा नही करना चाहिए। अगर वह चाहे तो ऐसा कर सकता है। कभी-कभी वह ऐसा करता भी है। लेकिन अगर कुशल अध्यापक बनना है तो ऐसा कदाचित् नही करना चाहिए।

इस धधे के बाहर किसी आदमी से पूछ लीजिये कि अध्यापको की मुख्य त्रुटियाँ क्या हैं ? वह आपको दो त्रुटियाँ बताएगा। पहली त्रुटि अव्यवहारिकता है अर्थात् "बहुत ज्यादा सैद्धान्तिक होना" इसके बारे में हम कुछ पहले विचार कर चुके हैं। दूसरी त्रुटि यह है कि एक ही बात को बार-बार दुहराना अर्थात् "हर साल एक ही बात को बार-बार पढाना" दूसरी त्रुटि पहली त्रुटि से भी गयी गुजरी है और हरेक अच्छे अध्यापक को हर हालत में उससे बचना चाहिए।

कभी-कभी भूतपूर्व विद्यार्थियो की बातचीत मे भी ऐसी भावना का आभास मिलता है। जब वे परीक्षाओ, यौन समस्याओ, तथा गरीबी से सघर्ष करने के समय से कुछ तगडे, सिर मे कुछ कम बाल और बेफिक्री से स्कूल या कालेज मे वापस लौटते हैं तब सभव है वे पूछें, "कहिए आप कैसे हैं ? आपसे मिलकर बडी खुशी हुई। क्या आप अभी भी नीति-शास्त्र या अमुक विषय पढा रहे हैं ?" यदि उत्तर मे "हाँ" कहा जाय तो वे असावधानी से मुस्करा देते हैं। अगर कोई कहे "नही, अब मैं अध्यात्म पढाता हूँ" तो उनके मुख पर आश्चर्य सहित बधाई के भाव उभर आते हैं। लेकिन यदि उनसे मिलने के बाद कोई कहे, "क्या अभी भी "विज्ञापन" का काम या "रोगी टान्सिल" देखने का काम करते हैं?" और असावधानी अगर देखे तो उन्हे कुछ कटुता का अनुभव होगा।

अपनी अन्तर चेतना मे वे अनुभव करते हैं कि "मुझे आशा नही कि यहाँ कोई चीज बदली है। और मैं पुनरावृत्ति के लिहाज से शायद इस बात को पसन्द करता हूँ। अत मुझे विश्वास है कि हरेक व्यक्ति ठीक उसी तरह अभी भी पढा रहा है जैसे दस साल पहले पढा रहा था। अध्यापक नीरस किन्तु आशापूर्ण, उबाने वाले किन्तु बिना हानि पहुँचाने वाले होते हैं।" फिर भी ये लोग दूसरे रोजगारो में उबाने वाली बातो के बारे मे उसी तरह क्यो नही सोचते। विज्ञापन देते-देते लोगो को उबा देना एक गुण है लेकिन पढाते हुए विद्यार्थियो को उबा देना शिक्षा का दोष है।

यह एक त्रुटि है क्योकि ससार परिवर्तनशील है और उसके साथ ही ज्ञान (Scholarship) को भी बदलना होता है। अध्यापक बदलता है और उसके साथ पढाई भी बदलती है। शायद ही कोई विषय इतना स्थायी होगा जो हर साल बदलता न हो। इतिहास,

विधि, भाषा, और साहित्य, कार्बनिक विज्ञान (Organic Sciences), भूगोल, सगीत, कला और दर्शन आदि लगभग सभी महत्त्वपूर्ण विषयो पर नये दृष्टिकोण तथा नई समस्याओ पर विचार विनिमय होते रहते हैं। एक अच्छे अध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने विषय से सम्बद्ध खोज या तर्क से अपने को अवगत रक्खे। प्राय ऐसा करते समय वह देखेगा कि किसी ऐसे लेख मे भी जो सुनिश्चित या नीरस विषय पर लिखा गया हो, उसे उसकी अपनी विचारधारा पर भी प्रभाव पडता है। ऐसा करते हुए उसके दिमाग की कुछ उलझी हुई गुत्थियाँ सुलझने लगती हैं और विचार की नई सभावनाएँ सामने आने लगती हैं जिसका ख्याल अब तक उसके दिमाग मे नही आया था। केवल गणित और अकार्बनिक विज्ञान मे ही शायद विषय की मौलिक बातें या उसकी प्रारभिक तीन-चार परतें स्थायी रहती हैं। लेकिन दूसरे विषय सदा आगे बढते रहते हैं। यह इस बात का सूचक होता है कि वे जीवित हैं। किसी अध्यापक के लिये पिछले दस सालो मे शेक्सपीयर के बारे मे प्रकाशित साहित्य को बिना पढे ही शेक्सपीयर की कृतियो को पढाना ठीक वैसे ही उचित न होगा जैसे बाउड्लर कृत हैमलेट पढना या किसी डाक्टर का सन् १८५० ई० के तरीको का १८९० के औजारो के जरिये चीर-फाड करना।

तब प्रश्न यह है कि महत्त्वपूर्ण नूतन साहित्य को किस तरह ग्रहण किया जाय ?

यह अध्यापक को स्वय तय करना चाहिये। केवल उसे यह निश्चय करना चाहिये कि वह ऐसा कर सकता है और उसे जरूर ऐसा करना है। तभी वह ऐसा कर सकता है। कुछ लोग गर्मी के दिनो मे एक महीना साल भर के नये प्रकाशनो को पढने और सकलित करने मे बिताते हैं। कुछ दूसरे पास की किसी लाइब्रेरी मे जाकर सप्ताह की पत्रिकाओ को पढते हैं। मेरे एक साथी ने किसी लाइब्रेरियन मे ऐसा प्रबन्ध किया है कि एक महीने बाद जिल्द बँधने के लिये जाते समय वे पत्रिकाएँ उनके यहाँ पहुँच जाया करें। इस तरह का इन्तजाम अध्यापक के अवकाश काल को सचमुच रचनात्मक बना देता है। जब कभी भी पढाई की जाय उस समय उसके पास काफी समय होना चाहिये और आराम से नोट तैयार करने की सुविधा भी होनी चाहिये।

पुस्तको और पत्र-पत्रिकाओ पर केवल अपनी नजर दौडाना ही काफी नही होता बल्कि उनके हितकारी अशो को जहाँ तक हो सके ज्यादा-से-ज्यादा ग्रहण करना चाहिये। योरोपीय पुनर्जागरण युग के किसी महान् विचारक ने लिखा है—"कुछ पुस्तको का रसास्वादन करना होता है, कुछ को सम्पूर्णत ग्रहण कर लेना होता है और कुछ थोडी-सी पुस्तकें ऐसी भी हैं जिनका अध्ययन करने पर मनन करना होता है। दूसरे शब्दो मे कुछ पुस्तकें ऐसी हैं जिनको आशिक रूप से ही पढा जाता है, कुछ ऐसी हैं जिनको पढा तो जाता है पर किसी विशेष सावधानी के साथ नही और कुछ थोडी-सी पुस्तकें ऐसी हैं जिनको सम्पूर्णत परिश्रम और ध्यान के साथ पढना होता है।"

यद्यपि ग्रहण करने का मुख्य काम दिमाग को करना होता है फिर भी इस काम मे सहयोग और सहायता के लिए और स्वय अपने लाभ के लिये भी नोट तैयार करने

चाहिये। हरेक नयी पुस्तक या उपयोगी लेख से तैयार किये गये इन नोटो की अध्यापक की अपने लेक्चरो की पाण्डुलिपियो (Manuscript) या गोष्ठी की रूपरेखा मे सम्मिलित कर लेना चाहिये। सभी अध्यापको को चाहिये कि वे पढाने के काम मे अपनी मदद के लिये नोट रक्खें (हम इन नोटो तथा उनकी उपयोगिता के बारे मे आगे चल कर विचार करेंगे) और जैसे ही कोई नई बात या नया दृष्टिकोण उनके सामने आये, तुरन्त उसे अपने नोटो मे लिख लेना चाहिये। उसके बाद जब वह विषय के उस भाग में पहुँचे या उपयुक्त पाठ की तैयारी कर रहे हो, उस समय उनको एकत्र सूचना के आधार पर उस विषय पर थोडा ज्यादा विचार करना चाहिये। हो सकता है उस विषय पर अपना दृष्टिकोण बिल्कुल बदलना पडे। या वह जानने योग्य केवल एक नयी बात भी हो सकती है। कभी-कभी तो समुचित टिप्पणी के साथ केवल किसी नयी पुस्तक का नाम बता देना या किसी क्लास के विद्यार्थियो को उसे पढने और उसकी आलोचना करने को कह देना ही काफी होगा। वह उस ज्ञान को किसी तथ्य की पुष्टि या अपनी रोजमर्रा की पढाई से अलग रखने के लिये सचित भी रख सकता है। फिर भी दोनो का एक ही नतीजा होगा। हरेक साल एक ही चीज को बार-बार न दुहरा कर वह अपना ज्ञानवर्द्धन कर सकेगा, अपने अध्यापन कार्य मे जीवन और स्फूर्ति प्रदान कर सकेगा और अपने दिमाग को ओहदे और उम्र की बीमारियो से बचा सकेगा जो एक प्रकार का पक्षाघात है।

इसका और कोई उपचार नही हो सकता। मानव जीवन निरन्तर परिवर्तन की अनियमित प्रक्रिया है। कोई भी आदमी दो वर्षों तक लगातार किसी एक ही विषय को उसी प्रकार नही पढा सकता। अगर वह उन्ही पुस्तको, तथ्यो और उपसहारो को बार-बार प्रयोग करता है तो भी दूसरे साल वह कुछ बातो को दुहराने मे भूल जायेगा और बुढापे के कारण कुछ कठिनाइयो को छोड देगा। बाकी रास्ते केवल ये ही हो सकते हैं कि या तो अध्यापन के काम को बिगाडने के लिये छोड दिया जाय, या उसे बार-बार अपनी योग्यता और पुस्तको मे अभिरुचि के द्वारा बराबर नया रक्त प्रदान किया जाता रहे। अगर ठीक से देखा गया तो इनमे से किसी एक को चुनना कठिन नही होगा। बुढापे के कुछ फायदो मे से एक यह भी है कि ज्यो-ज्यो शरीर कमजोर होता जाता है, दिमाग मजबूत और समृद्ध होता जाता है।

पढाने की तैयारी के बारे मे आखरी बात यह कहूँगा कि हमेशा मौलिक पुस्तकें पढें।

यह अध्यापको के लिये देववाणी की तरह हैं जिसे वृद्ध लहरो (Lehrs) ने लगभग सौ वर्ष पहले कहा था। उन उपदेशो मे से कुछ अब बेकार हो गये हैं। जैसे भाषा शास्त्रियो का सस्कृत के प्रति अनुराग। कुछ दूसरो का सम्बन्ध केवल विश्वविद्यालय के अध्यापको से ही था लेकिन उनमे से दो-तीन तो बहुत ही उपयोगी हैं। उनमे से एक यह है कि "हमेशा मौलिक पुस्तकें पढें। सब बाते उसमे से स्वत फूट पडती है।"

यह बात आसान मालूम पडती है और सच पूछिये तो आवश्यक भी मालूम पडती है। यह इतनी स्पष्ट है कि किसी अध्यापक का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना उसकी

तौहीन करने जैसा लगता है। फिर भी इस बात पर ज़ोर देने की जरूरत है। कुछ तो इस लिये कि तरुण अध्यापक जो अपने व्यवसाय मे पदार्पण कर रहे हैं उनको यह बात साफ-साफ नजर आये और वे उससे लाभ उठा सकें और कुछ इसलिए क्योकि जिस बात पर हम विचार कर रहे हैं उसके अन्तिम चरण मे ऐसा करना उपयुक्त भी होगा। इन्ही कारणो से मैं इस बात को और भी स्पष्ट शब्दो में कहने जा रहा हूँ। अध्यापको के लिए पाठ्य पुस्तक और टीकाओ को जानना जरूरी होता है और उसे सामने आने वाले नये साहित्य से भी अवगत होना चाहिये। लेकिन इनके विचार का केन्द्र विन्दु हमेशा मौलिक ग्रन्थ ही होना चाहिए। यदि वह इतिहास पढाता है तो उसके लिए सिर्फ इतना ही जानना काफी नही कि ग्रान्ट और टेम्परले द्वारा लिखी गयी पाठ्य-पुस्तक मे 'वर्साइ सन्धि' के वारे मे क्या लिखा है। उसे उस सन्धि के और 'लीग ऑफ नेशन्स' के कावनेन्ट (Covenants) के मौलिक विवरणो का भी ज्ञान होना जरूरी है। अगर वह अंग्रेजी साहित्य पढाता है तो उसे शेक्सपीयर की दुखान्त रचनाओ पर अन्तरदृष्टि के लिए केवल ब्रेडले और विलसन नाइट पर ही आश्रित नही रहना चाहिए। हर महीने उसे शेक्सपीयर की एक-एक रचना को पढना और उस पर विचार करना चाहिये। उसको उतनी ही जानकारी मिल जायेगी जितना ब्रेडले उसको वताते। कम-से-कम उसे जो ज्ञान होगा वह उसे पढाने के लिये दूसरो द्वारा लिखी गयी पुस्तको से मिलने वाले ज्ञान से कही अधिक मूल्यवान होगा।

स्कूल के अध्यापको की बात तो दूर रही यह यूनिवर्सिटी के अध्यापको पर भी वहुत हद तक लागू होती है। मेरे एक मित्र ने कठिन विषय पर एक वडी पुस्तक को हाल ही मे समाप्त किया है जिसके बारे मे वे वर्षो से चिन्तित थे। उन्होने कई गर्मियाँ उस विषय पर छपी सामयिक चर्चाओ को पढने मे और कितने ही जाडे उस विषय पर लिखी गयी प्रमुख पुस्तको को पढने, उस पर विचार करने, तुलना करने और उसकी अशुद्धियो को सुधारने मे विताए। लेकिन जब उन्होने लिखना शुरू किया तो उनको वही रोग हो गया जो अक्सर ज्यादा सहायक सामग्रियो को पढने वालो को हो जाता है और वे यह अनुभव करने लगते हैं कि उस विषय पर वे अधिक नही लिख सकते। लगभग तीन महीनो तक वे गुमसुम और असहाय रहे। उन्होने अपने नोट फिर से पढे लेकिन गुत्थी नही सुलझी। उन्होने अपने पूर्व लेखको की पुस्तकें फिर से पढी। फिर भी कोई नतीजा न निकला। तव लाचार होकर उन्होने आखरी मे अपनी कापियो को अलग रख दिया और मानो नयी दृष्टि ने उन मूल ग्रन्थो को पढने लगे जो उनके अध्ययन के अभिन्न अग थे। यद्यपि ये ग्रन्थ देखने मे कम थे फिर भी उनको पढने पर उनके सामने नये भाव स्पष्ट होकर आने लगे जो अब तक केवल उनके दिमाग मे धुंधले थे। भाव इस तरह स्पष्ट होते जायेंगे इसकी पहले उनको कल्पना भी न थी। एक ही शाम उन्होने अपने भावी पुस्तक के वारह अध्यायो की रूपरेखा तैयार कर ली और एक सप्ताह के भीतर पहला अध्याय लिख डाला और इस तरह एक महीने मे सारी पुस्तक लिख दी। जब आधी पुस्तक समाप्त हो गयी तब उनको उसी रोग का दौरा एक वार फिर आया लेकिन इस बार वह दौरा एक ही क्षण मे लीन

हो गया जब उन्होने अपने पूर्व लेखको और प्रतिद्वन्द्वियो की रचनाओ को छोड कर मूल-ग्रन्थो की शरण ली। केवल तभी उन्हे यह साफ-साफ दिखायी पडा कि उनकी कृति का सच्चा अभिप्राय क्या है।

हो सकता है यह बात पहले दिये गये उस सुझाव के ठीक उलटी मालूम पडे जिसमे यह कहा गया है कि अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह अपने विषय पर लिखी गयी नवीनतम पुस्तको से सम्पर्क बनाये रक्खे। लेकिन वास्तव मे इन दोनो नुस्खो को एक ही साथ काम मे लाना चाहिये। मान लीजिये आप पढते हैं। सेर्वान्टे के बारे मे एक नयी और बहुमूल्य पुस्तक छपती है। स्पैनिश पढने के मुख्य उद्देश्यो मे से एक सेर्वान्टे की रचनाओ को पढना है। इसलिए उस पुस्तक को आप ले आते हैं और उसे पढकर अपने नोट्स मे ऐसे ज्ञातव्य तथ्यो और विचारो को लिख लेते हैं जो आपको उसमे मिलती हैं। लेकिन उसके बाद आपको "डॉन क्वीजोट" (Don Quixote) को पुन पढने का आनन्द उठाना चाहिये। चूँकि आपके विचार बदल गये हैं इसलिये आप उसमे कुछ नयी बातो का अनुभव करेंगे। इससे आपका दिमाग समृद्ध होगा और आपके पढाने मे नयी जान पैदा हो जायेगी। अगर आपने ऐसा करना जारी रखा तो आपके विकास मे पूर्ण सामजस्य होगा। आपको रोचक लगने वाले लेखको के एक वर्ग के बारे मे कोई नया लेख पढाना और उनको एक नयी दृष्टि से दुबारा पढकर अपने विचारो को नियत करना तथा नये साहित्य और नयी पुस्तको से सपर्क रखना आपकी बुद्धि को सजीव बना देगा। इससे आप मे ऐसी शक्ति आ जायेगी कि पढाना एक बोझ न रह कर सहज बन जायेगा और स्वय आप और आपके विद्यार्थी उसमे आनन्द लेने लगेंगे।

वस्तुत बहुत से अध्यापक ऐसा ही करते हैं। यही उनकी सफलता के कारणो में से एक है। सभी अध्यापको द्वारा ऐसा न किये जाने का कारण यह है कि अक्सर वे बिना सोचे विचारे ऐसी धारणा बना लेते हैं कि उम्र बढ जाने पर जैसे शरीर का विकास रुक जाता है वैसे ही मानसिक विकास भी रुक जाता है। इसकी वजह यह है कि साधारणत स्वय अध्यापक ने भी अपना आरम्भिक काम (Preparatory work) अट्ठारह से पच्चीस साल की उम्र मे ही किया था। उस समय उनका शारीरिक विकास हो रहा था जो बाद मे रुक गया। वे समझते हैं कि दिमाग भी उसी तरह विकसित होता है अर्थात् पच्चीस वर्ष की आयु तक तो खूब तेजी से बढता है और उसके बाद वही मृत्यु काल तक खपता रहता है। यह धारणा अक्सर अज्ञात होती है और यह उस विचार पर आधारित होती है जिसके अनुसार 'मानव मस्तिष्क को सकुचित समझा जाता है और यह सोचा जाता है कि वह एक ऐसी वस्तु है जो मानो किसी बक्स में पडी हो और उसमे किसी निश्चित परिमाण से अधिक तथ्य नही डाले जा सकते। यह चित्र गलत है और ऐसी धारणा निर्मूल और भयानक है। जहाँ तक हम लोगो को ज्ञान है, वयस्को के सीखने की प्रक्रिया मे दिमाग के रूप के बदलने का कोई भी विधान नही है। हाँ, इसका मतलब यह जरूर है कि उसकी प्रक्रियाएँ ज्यादा प्रखर हो जाती हैं और सुलझ जाती हैं। जिस क्षेत्र पर दिमाग का अधिकार

हो गया है उसकी रूपरेखा और दिशाएँ मालूम पडने लगती हैं या दूसरे शब्दो मे अगर यह कहा जाय कि ज्यो-ज्यो इसका चालक इससे अपना राह पहचानने लगता है वैसे-वैसे यह नाजुक मशीन बढने के साथ अधिक गुणो को सीख भी सकती है। पुस्तक की पढाई पर दिमाग खपाने से दिमाग पर बोझ नही पडता और न उसमे खिचातानी ही पैदा होती है। उसका सदुपयोग होता है। दिमाग फट न जाय इसके डर से अखबार, मोटी-मोटी पत्र-पत्रिकाओ को न पढना ठीक वैसा ही होगा जैसे आँखो को आराम पहुँचाने के लिए उनको दिन भर बन्द रक्खा जाय।

(ख) संचार

जब अध्यापक ने पढाने के विषय को तैयार कर लिया है तब उसको विद्यार्थी को अपनी जानकारी से अवगत कराना होता है। अगर वह सचारण के इस काम मे रुक जाय तो वह कुशल अध्यापक की असफलता समझी जायेगी। इस तरह असफल होने पर भी सभव है वह अध्यापक अपनी विद्वता के प्रति अपने निर्लिप्त अनुराग या अपने व्यक्तित्व के आकर्षण के कारण कुछ बालक-बालिकाओ को प्रेरणा देता रहे। लेकिन इससे वह अपनी मौलिक असफलता को छिपा नही सकता। चाहे वह मामूली श्रेणी का विद्वान् ही क्यो न हो। अगर वह अपने विद्यार्थियो को कोई विषय समझाने मे दक्ष है तो वह एक कुशल अध्यापक बन सकता है। विचारो का आदान-प्रदान या सचारण मानव जाति का मौलिक काम है। यह एक ऐसी कला है जिसके द्वारा मनुष्य महान् सफलताएँ और आश्चर्यजनक असफलताओ को प्राप्त होता है। यह एक ऐसी कला है जिसके अभाव मे प्रतिभा मूक, शक्ति पाशविक और उद्देश्यहीन और मानवता चीखती चिल्लाती वन जातियो का समूह मात्र रह जाती हैं। विचारो का सचारण सभ्यता का आवश्यक अग है। पढाने का काम, बहुत से ऐसे धन्धो मे से एक है जो इस पर न केवल निर्भर है बल्कि एकमात्र आश्रित है।

अध्यापक और विद्यार्थियो के बीच ज्ञान के आदान-प्रदान के तीन मुख्य तरीके हैं। हम उन पर आगे विचार करेगे लेकिन आइये पहले हम इन तीनो को साफ-साफ समझ लें।

लेक्चर देना इनमे से पहला है। अध्यापक लगभग निरन्तर विद्यार्थियो से बातें करता रहता है। विद्यार्थी केवल सुनते हैं, तथ्यो और याद करने लायक बातो को नोट करते हैं और बाद मे उन पर विचार करते हैं। लेकिन उनको अध्यापक से बातचीत नही करनी पडती। ज्यादा से ज्यादा वे किसी विषय को स्पष्ट कराने के लिए न कि विचार विमर्श के लिए अध्यापक से दो-एक सवाल पूछ सकते हैं। पढाने की इस पद्धति का मूल और उसका एकमात्र उद्देश्य यह है कि ज्ञान के प्रवाह का स्रोत अध्यापक से चलकर विद्यार्थियो तक निरन्तर बहता रहता है। दूसरे अर्थ मे यह एकतरफा प्रवाह है।

यूनिवर्सिटी के लेक्चर और हाई स्कूलो के पाठ ठीक वैसे ही होते हैं। अगर विद्यार्थी

ग्राह्य और शान्त चित्त होकर बैठे हो और अध्यापक उनके बीच कोई बाधा न पडे तो शल्य प्रक्रिया समझाता हुआ सर्जन (Surgeon), नेबुला (Nebulae) की रचना के सिद्धान्त को समझाता हुआ भौतिक शास्त्री, कुछ नये न्यायादेशो का अध्ययन करते हुए विधि विशेषज्ञ या पानी से बनी शिलाओ (Water-Made Rocks) और आग्नेय शिलाओ से तुलना करते हुए भूगर्भ-शास्त्री सभी अपने पाठो को ठीक तरह से समझा सकते हैं। करीब-करीब सभी रेडियो और टेलीविजन पर कमेन्ट्री (Commentry) देने वाले उसी प्रणाली का प्रयोग करते हैं। अगर एक वृहत दृष्टिकोण से देखा जाय तो धर्म प्रचार मे भी यही प्रणाली काम मे लायी जाती है। पश्चिमी देशो का सबसे सुन्दर भाषण "सर्मन ऑफ दी माउन्ट" ईसा मसीह द्वारा अपने धर्मावलम्बियो और उनके चारो तरफ एकत्र शान्त और जिज्ञासू भीड के सामने दी गयी थी (ईसा मसीह को वे रब्बी या अध्यापक कहते थे)।

एक दूसरा तरीका, जिसका आविष्कार सुकरात (Socraes) ने किया था ट्यूटोरियल सिस्टम (Tutorial System) के नाम से पुकारा जा सकता है। इस प्रणाली मे अध्यापक बोलता नही वह केवल विद्यार्थी से प्रश्न ही पूंछता है और वे उसका जवाब देते हैं। लेकिन सवाल इस तरह से निर्धारित किये जाते हैं कि विद्यार्थियो को अपने अज्ञान का बोध हो सके और उनको सचाई की तह तक पहुँचने का रास्ता दिखाया जा सके। इसका नतीजा यह होगा कि वे उन बातो को और भी मजबूती से अपने दिमाग मे रख सकेंगे क्योकि वह उन्हे बना बनाया नही मिला है बल्कि वह उन विद्यार्थियो और उनके अध्यापको के दिमाग के मिले-जुले प्रयत्नो का फल होता है। यहाँ यह जरूरी है कि विचार विनिमय का कोई आधार हो जिससे विद्यार्थी उन्हे तैयार करने मे कुछ समय लगाये जो बाद मे वह अध्यापक द्वारा देखा जा सके। वह उस पर अपनी आलोचनाएँ प्रस्तुत कर सके और रचनात्मक प्रश्नावली से उसे चिरस्थायी बनाने का यत्न कर सके।

तीसरा वह नियम है जिसमे विद्यार्थी निर्धारित पाठ को प्रारम्भिक काम के रूप में तैयार करते हैं। उसके बाद उस पाठ को अध्यापक और अधिक विस्तारपूर्वक उन्हे समझाते हैं और इस बात की जाँच करते हैं कि उन्होने जो कुछ पढा है उसको उन्होने अच्छी तरह लमझ लिया है। साधारणत वे ग्रहण नही कर पाते हैं। भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल और बनस्पति शास्त्र जैसे वर्णात्मक विज्ञानो को पढाने का यह प्रचलित तरीका है। विषाद-ग्रस्त दिनचर्या का पालन करने वाले उस अध्यापक ने जिसने विलियम लियन फेल्पस को होमर से अवगत कराया था उसने अध्यापन की इस प्रणाली का वास्तव मे दुरुपयोग किया था। (पृष्ठ ६४) यही प्रणाली लोअर हेब्रू स्कूलो मे भी काम मे लायी जाती है जहाँ लडको को धार्मिक ग्रन्थो से पाठ कण्ठस्थ करना पडता है, अपनी कुशलता दिखाने के लिए अक्षरश उसे दुहराना पडता है और बाद मे जब वे हायर हेब्रू स्कूलो में जाते हैं तब उनका अध्यापक उनसे उन ग्रन्थो को अलग-अलग बतलाने के लिये कहता है। यह प्रणाली दूसरी विधियो से भिन्न होती है।

का रूप धारण कर लेता है, जिन्हे याद करना पडता है। अन्त मे विद्यार्थियो के ज्ञान की परीक्षा होती है।

निश्चय ही अब आप पूछेंगे कि इन तीनो नियमो मे से कौन-सा नियम सबसे अच्छा होता है। उत्तर है, कोई भी नही। ये सभी अलग-अलग उपयोगो के लिए ठीक हैं और कोई भी अच्छी शिक्षा प्रणाली तीनो से विद्यार्थियो को अवगत करायेगी। फिर भी इन तीनो की अपनी-अपनी कठिनाइयाँ और अपने-अपने दोष होते हैं। इनकी अपनी-अपनी अद्वितीय विशेषताएँ भी हैं। जो अध्यापक इनमें से किसी एक ही तरीके का पढाने मे उपयोग करता है उसकी पढाई मे यह डर रहता है कि कही अपने विद्यार्थियो मे एक ही प्रकार का गुण न पैदा करे और एक शिक्षा विज्ञ के रूप मे स्वय वह अपनी कुछ ही शक्तियो का परिमार्जन कर सकेगा। दूसरी ओर एक विद्यार्थी जिसको पढने का एक ही तरीका आता है उसे कभी यह मालूम नही हो पायेगा कि अपने मस्तिष्क की सोची हुई विशेषताओ का वह किस तरह उपयोग कर सकता है। ये सभी तरीके कुछ काम के लिए उपयोगी, दूसरे के लिए बुरे हैं। फिर भी कहना न होगा कि वे सब मूल्यवान हैं।

अब हम उन पर अलग-अलग, एक अध्यापक के दृष्टिकोण से विचार करते हैं।

सबसे पहले आख्यान को लीजिये। किसी महान् वक्ता से एक बार पूछा गया कि जनता मे भाषण देने के तीन कौन से आवश्यक गुण होने चाहिएँ। उसका उत्तर था, "(१) आख्यान (२) आख्यान और (३) आख्यान।" भाषण के लिए यह करीब-करीब ठीक है लेकिन लेक्चर देने के लिए तो एकमात्र आवश्यक गुण आख्यान (Delivery) ही है।

आख्यान वाणी और भाव भगिमाओ पर निर्भर करता है। इन दोनो मे वाणी ज्यादा महत्त्व की है। कहना न होगा कि वाणी स्पष्ट होनी चाहिए। बहुत से अध्यापक सुनाई न पडने वाली आवाज़ मे बोलने की गलती करते हैं, कुछ इतनी तेजी से बोलते हैं कि उनको समझना बडा कठिन होता है जबकि कुछ अपने शब्द मुँह में ही खा जाते या मुंह मे निगल लेते हैं या फुसफुसा कर या गडगडा कर बोलते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि विद्यार्थी उन आवाजो को समझ कर मतलब निकालने की कोशिश करने के बदले बदला लेने के लिए अध्यापक की बोली मे ही मुँह चिढाते हैं। अगर आपकी आवाज किसी प्रान्त विशेष से मिलती है, बोली अचानक तेज हो जाती है या आपको किसी अक्षर का उच्चारण करने मे दिक्कत होती है उस समय विद्यार्थियो की ओर जरा गौर करे और उनकी आँखो की तरफ देखे। आपको मालूम हो जायेगा कि तब वह आपकी बाते समझ नही रहे और आप की बात केवल इसलिये सुन रहे हैं कि कब उन्हे चिल्लाने और सीटी बजाने का मौका मिले। अगर आप पढाते समय घबराहट का अनुभव करें या अगर आप किसी बडी क्लास को पढा रहे हो उस समय आपको नि सकोच उनको यह बता देना चाहिए कि जब कभी भी उनको आपकी आवाज़ नही सुनायी पडे तो वे उनको इस बात की खबर करने मे उनके साथ सहयोग करें। ऐसा करने से विद्यार्थियो मे इस बात की अभिरुचि पैदा होगी

कि आपका लेक्चर सफल हो। इस तरह अध्यापक और विद्यार्थी के बीच का भेदभाव मिट जायेगा। मेरे एक साथी, जिन्हे बडी-बडी सभा-मण्डपो मे भाषण देना पडता है, कभी-कभी अपना भाषण आरम्भ करने से पहले अपने पीछे बैठे हुए लोगो से यह पूछते हैं कि उनका भाषण उनको सुनाई पड रहा है या नही। भाषण के दौरान मे भी समुचित अवसर पाकर वे उनसे यह पूछते हैं कि उनको सुनाई पड रहा है या नही। स्काटलैण्ड की यूनिवर्सिटियो मे लेक्चरर और विद्यार्थियो के बीच काफी परस्पर विचारो का दोतरफा अदान-प्रदान होता है। वहाँ विद्यार्थी जब अध्यापक द्वारा कहे जा रहे मुहावरे या विचार की प्रशसा करते है तो वे अपने जूतो की एडी धरती पर टपटपा-टपटपा कर (Stamping) अपनी प्रशसा को अभिव्यक्त करते है। जब आख्यान का कोई अश छूट जाता है या उनकी समझ मे नही आता तो वे अपने जूतो को सीटो के नीचे घसीटने लगते हैं (Shuffle)। उनकी यह क्रिया तब तक चलती रहती है जब तक अध्यापक वह वाक्य दुहरा नही देता। यह बात भले ही भद्दी मालूम पडे लेकिन विद्यार्थियो का ऐसा करना अध्यापक के लिए बडा उपयोगी होता है। इससे विद्यार्थी अपने अध्यापक का पूरा लाभ उठा पाते हैं।

यह भी याद रखने की बात है कि जैसे-जैसे अपकी आयु बढती जाती है वैसे-वैसे आपकी आवाज़ भी कम होती चली जाती है या यो कहे कि बोलने मे आप जो शक्ति लगाते है वह घटने लगती है और आपको इसका ज्ञान तक नही होता। चाहे श्रोताओ की सख्या कम हो या ज्यादा उनके सामने भाषण देने में शारीरिक शक्ति की आवश्यकता होती है। कोई भी अध्यापक जो शर्माता नही हो या जो घमण्ड से चूर न रहता हो अपने आख्यान मे ताकत का प्रयोग करेगा। लेकिन जैसे-जैसे उसकी जानकारी बढती जायेगी और वह यह अनुभव करने लगेगा कि उसकी क्लास मे विद्यार्थी सुस्त हैं और उनको कुछ आता नही वैसे-वैसे वह अपनी उस शक्ति को बचाने लगेगा और सिर्फ वैसे ही कुछ विद्यार्थियो तक ही सीमित रक्खेगा जो तेज हैं और जो उसकी बातो पर ध्यान देते हैं। किसी महान् शिक्षा शास्त्री ने कहा है "वैसे आदमी को सुनने दो जिसके पास सुनने के लिए कान हो अर्थात् (He who has ears to hear let him hear) लेकिन वह सिद्धान्त तो बडी उम्र के विद्यार्थियो के लिए था लेकिन छोटी उम्र के तो सभी विद्यार्थियो को सुनने की इच्छा होती है और हमे उनको स्पष्ट रूप से समझाना चाहिए।

कभी-कभी कुशल अध्यापक भी अभिनेताओ की तरह आख्यान मे आवाज को कम करने (Under playing) के महत्त्व को समझ जाते हैं। जरा सोचिये, अगर कोई वक्ता अपने श्रोताओ के सामने गला फाड-फाड कर चिल्ला रहा हो तो उसका भाषण सुनने वालो को कितनी थकान का अनुभव होता है। ऐसे भाषण लोग चाव से नही सुनते। महान् वाद्य-वादक कभी-कभी किसी साज़ को बजाते-बजाते उसकी तान बहुत ही धीमी कर देते हैं। इससे जब वे राग की गति पढाते हैं तो उसका महत्त्व बढ जाता है। कठिन और विवाद जन्य विषयो को बढाने वाले अध्यापक, जो इस बात को समझते हैं कि उस विषय को समझने और उसके निष्पक्ष विवेचन के लिए उनका और विद्यार्थियो का शान्त चित्त

रहना जरूरी है अक्सर अपना आख्यान बडे शान्त भाव से देते हैं। जब तक अध्यापक की आवाज सुनायी पडती रहे उस समय तक वे बडे उपयोगी होते हैं। लेकिन अक्सर उनकी आवाज फुसफुसाहट जैसी धीमी होती है और अन्त मे तो मानो लुप्त ही हो जाती है। दार्शनिक अक्सर ऐसा ही करते हैं क्योकि वे अपना सारा जीवन अत्यन्त गभीर विषयो के चिन्तन में बिता देते हैं और वे यह जानते हैं कि वैसे विषयो पर भावुकता मे उत्तेजित होकर चर्चा करना व्यर्थ और हानिकारक भी होता है। उन्होने यह सीख लिया है कि किसी योग्य विद्यार्थी के बारे मे ऐसा सोचना उसके अपमान करने की तरह है कि वह भी अध्यापक की ही तरह दलीलो को पेश करने मे उनसे पीछे हो सकता है और कभी-कभी वे समस्याओ से अपने जीवन-काल मे सघर्ष करते-करते यह अनुभव करने लग जाते हैं कि उन समस्याओ को वे सारी जिन्दगी सुलझा नही सकेगे। मैंने इसी तरह के एक अध्यापक से दर्शन-शास्त्र की चर्चा की थी जो पढाने की इन सब बातो से इतने दुखी हो चुके थे कि उन्होने जो कुछ कहा उसका आधा भाग तेजी से कानाफूसी मे वे ठीक उसी तरह कह गये जैसे कोई कैदी जेल से भाग निकलने की योजना अपने किसी साथी से कहता है। उन्होने अपनी बात का शेष आधा भाग उस तरह कह सुनाया जैसे वे किसी गीले माउथपीस (Mouth-piece) से या किसी बडे और चिकने पाइप लगाये बडबड-बडबड बोल रहे हो।

यह आदत अग्रेजो मे अमरीकियो से कही अधिक पायी जाती है। फ्रासीसी और जर्मन अध्यापको में यह बात बहुत ही कम पायी जाती है क्योकि उनके आख्यान ऐसे होते हैं जैसे उनको पहले से ही तैयार किया गया हो। मुझे याद है कि जब मैं बच्चा था उस समय मेरी प्रिय रोमासपूर्ण पुस्तक मे एक बार किसी महत्त्वपूर्ण सभा का सभापतित्व करने वाले वैसे ही धीरे-धीरे बोलने वाले वक्ता का परिचय देते हुए कोनन डॉयल ने (जो आयरलैंड का निवासी था) कहा था—"मुझे विश्वास है कि प्रोफेसर मुरे मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह कहूँ कि उनमे भी वही दोष है जो अधिकाश अग्रेजो मे होता है। वह यह कि भाषण देते समय उनकी आवाज़ सुनायी ही नही पडती। यदि दुनिया मे लोगो को कुछ ऐसी ही बातें कहनी हैं जो सुनने योग्य हो तो थोडा-सा कष्ट उठाकर जोर से न बोलने की उनकी आदत वर्तमान युग की एक रहस्यमय बात बन गयी है। उनके बोलने का ढग ठीक वैसा ही होता है जैसा किसी झरने से बहने वाले बहुमूल्य तरल पदार्थ को किसी टकी मे जमा करने के लिए कोई ऐसी पाइप लगाई गयी हो जिसमे से कुछ भी नही निकलता हो यद्यपि उसको जरा-सा खोलकर यह काम लिया जा सकता है। प्रोफेसर मुरे ने अपनी सफेद नेकटाई और सभा मे मेज पर पडी पानी की बोतल के विषय मे कुछ बडे गम्भीर विचार व्यक्त किये और अपनी दाहिनी ओर पडी हुई चादीजडित मोमबत्ती लगाने वाली लकडी से हँसाने वाली कानाफूसी की।

निश्चय ही इस वक्ता का गिल्बर्ट मुरे के साथ कोई सम्बन्ध न था जिनकी वाणी सुन्दर, स्पष्ट और सुमधुर है। फिर यह चरित्र काल्पनिक था। फिर भी वह इसी साधारण वक्ता श्रेणी का एक नमूना था जिनके बोलने के ढंग की वजह से समस्त अध्यापक वर्ग

वदनाम हो गया है। जिस अध्यापक की आवाज़ सुनाई नही पडे वह उसी राजनीति की तरह वेकार है जिसकी कोई नीति न हो या उस मजदूर की तरह निकम्मा है जिसने अपने काम करने के औज़ार तोड लिए हो।

आप जब अपनी क्लास के सामने बोल रहे होते हैं उस समय आपकी आवाज़ की तेजी ही सवसे अधिक महत्त्व की वात नही होती। वोलते समय आपको अपनी गति भी ध्यान मे रखनी चाहिए। यदि आप वहुत तेजी से बोलते हैं तो विद्यार्थी आपकी वाते नही समझ सकेंगे और यदि आप बिल्कुल धीरे से बोलते हैं तो उन्हे नीद आने लगेगी। जहाँ तक मेरा अनुभव है वहुत से अध्यापक वहुत धीरे-धीरे बोलते हैं क्योकि इससे उनके परिश्रम की बचत होती है और वे अग्राह्य (Unintelligible) बनने की अपेक्षा नीरस (Boring) बनना अधिक पसन्द करते हैं। उनमे से कुछ अध्यापक राजनीतिक नेताओ की तरह धीमी आवाज मे वोलना पसन्द करते हैं। धीमी आवाज़ मे बोलने वाले राजनीतिक नेता ऐसा इसलिए करते हैं कि धीमी आवाज़ मे वोलने से श्रोतागण उनकी ओर अधिक ध्यान देंगे और वे यह न समझेंगे कि वक्ता चालाकी कर रहा है। सबसे घटिया वक्ता, जिन्हे मैंने अब तक अपनी सारी जिन्दगी मे सुना है वे स्वर्गीय स्टैन्ले वाल्डविन थे। वे वडी धीमी आवाज़ मे जोर दे दे कर और दिखावट के साथ बोलते थे। वे न केवल वाक्य के वीच-बीच मे अनुपयुक्त स्थान पर रुकते थे बल्कि हरेक तीन-चार शब्दो के बाद रुक कर यह कहते, "सभापति महाशय! देवियो और सज्जनो! मैं यहाँ आया हूँ। आज आपको अपने अच्छे मित्र के अनुरोध पर। इस चुनाव क्षेत्र के सदस्य। अपने मित्र। कर्नल ब्लप। को यहाँ देखकर इस अवसर पर देखकर मैं वहुत प्रसन्न हूँ।"

आधे घण्टे तक ऐसी वातो को सुनते-सुनते लोगो को नीद आ गयी। सालो तक इस तरीके के चलते रहने से ब्रिटेन को भी नीद आ गयी।

हाँ, इसमे सन्देह नही कि असगत ढग से और बार-बार भाषण मे रुकना बुरे वक्ता की निशानी है। कभी-कभी इसका अर्थ यह निकलता है कि वक्ता जो शब्द वोल रहा है उसको उसने पहले से नही सोचा था। उनका यह व्यवहार ठीक वैसा ही लगता है जैसे किसी टेढे-मेढे रास्ते पर गाडी चलाने वाले ड्राइवर को हर मोड पर रुकना और गाडी की आवाज़ बढने पर जगह-जगह उसको कम करना पडता है। कभी-कभी तो इसका यह भी अर्थ निकलता है कि वह अपने श्रोताओ को बेवकूफ समझता है। जिनको मानसिक अनपच से बचने के लिए एक समय मे केवल कुछ ही शब्द देने की जरूरत पडती है। वस्तुत यदि ऐसा वक्ता अपना दोष समझ ले तब तो उसके छोटे-छोटे हिस्सो में तोडे गये भाषण को समझना उसी प्रकार ज्यादा कठिन हो जाता है जिस तरह टिमटिमाती रोशनी में किसी पन्ने को पढना कठिन हो जाता है।

बोलते समय वेमतलब वीच-बीच मे रुकना बुरा है लेकिन उससे भी अधिक बुरा है वाक्य के वीच-बीच मे 'अर्‌र' करना। वैसे तो अर्‌र करना मनुष्य का स्वभाव है (To Err is human) लेकिन निश्चय ही ऐसी गलती अक्षम्य है। वक्ताओ को, साधारणतया

यह नही मालूम होता कि उनके ऐसा करने से श्रोतागण कितने क्रुद्ध होते हैं और यदि वक्ता अपने भाषण का रिकार्ड स्वय सुने तो उसे सुन कर उन्हे बडा अफसोस होगा। यह एक हानिकारक आदत है जिसका हर अध्यापक को ध्यान रखना चाहिए। कुछ यह आदत इसलिए डाल लेते हैं क्योकि वे यह भावना पैदा करना चाहते हैं कि वे भाषण देते समय न केवल उन्ही तथ्यो को दुहरा रहे हैं जिनको उन्होने रट लिया है या अपने नोट को ही दुबारा सुना रहे हैं बल्कि 'खडे होकर भी वे सोचते जा रहे हैं।' ऐसा जान पडता है अर्र कि आपको-अर्र, सच्चा और—अर्र शुद्ध ज्ञान है। हम सोचते ऐसा ही हैं लेकिन वास्तव में यह बहुत ही बेहूदा और अयोग्य-सा लगता है। एक बार मैंने किसी बडी कम्पनी के मैनेजर को बोलते सुना जिनके भाषण से यही धारणा बनती थी कि वे अपने भाषण मे जगह-जगह नियमित ढग से रुकते और 'अर्र' किया करते थे। श्रोताओ पर इसका ठीक वैसा ही प्रभाव होता है जैसे नीद लाने वाली गोलियो के साथ एक गिलास दूध का असर होता है। बोलचाल करते समय यह कहना कि मैंने कोई पहलू नही छोडा या जितने तथ्य हो सकते हैं सब की छान-बीन की है एक गलत तरीका होता है। लेकिन यह वक्ता हमेशा ऐसी बाते करने मे सकोच करता जिससे हम कभी निश्चित नही हो पाते कि वह कोई विद्वत्तापूर्ण बात कहने जा रहा था या उसे बोलने के लिए शब्द याद नहीं आ रहे थे। युद्ध-काल मे उत्पादन के बारे मे बोलते हुए उन्होने इस तरह अन्तिम शब्द कहे

लेकिन उस समय से अब तक—अर्र
बहुत-सा पानी—अर्र
(पता नही अब आगे वे क्या कहने जा रहे हैं ?)
पुल के नीचे से गुज़र चुका है।

निस्सन्देह प्रत्येक वक्ता को बोलते समय बीच-बीच मे इसलिए रुकना पडता है ताकि उसके शब्द ग्रहण किये जा सकें और श्रोताओ की आवाज़ की प्रतिध्वनि शान्त हो सके। लेकिन अपने भाषण मे उस जगह रुकना चाहिए जहाँ आपके लम्बे विचार को समझने लायक बनाने के लिए ऐसा करना आवश्यक हो और आपके वाक्य सुनने मे अच्छे लगें। हर तीन चार शब्दो के बाद रुकना मूर्खता है। बोलते समय आपको ठीक वैसे ही रुकना चाहिए जैसे लिखते समय आप 'कौमा' और 'विराम' पर रुकते हैं। यदि आप सचमुच एक कुशल वक्ता हैं और आपको अपने विषय की बौद्धिक रूपरेखा का पूरा ज्ञान है तो आपका भाषण एक अच्छा रिपोर्टर पूरा का पूरा लिख ले सकता है और इसके बाद वाक्यो, पैरा-ग्राफ और विभाजन किये बगैर आपकी मदद के उनका शीर्षक (Subhead) भी तैयार कर सकता है क्योकि जैसे-जैसे आप बोलते गये वह आपका भाषण समझता गया।

लेकिन इतना याद रखें कि एक अनुभवी रिपोर्टर के सिवा आपका भाषण कोई दूसरा आदमी शायद ही पूरा लिख सकेगा। इसलिए ऐसा सोचना व्यर्थ है कि कम तेजी से बोलने से विद्यार्थी आपके शब्दो को नोट कर लेंगे। सब मिलाकर बुरे ढग के व्याख्यान के लिए यह आदत दूसरी आदतो की अपेक्षा कहीं अधिक जिम्मेदार है।

इसका वहुत लम्बा इतिहास है। यह मध्य-युग मे शुरू हुआ था। उस समय ज्यादा किताबें नही होती थी और महान कृतियो के सक्षिप्त सस्करण सचमुच ही दुर्लभ थे। मध्य-युग मे बनाये गये नये विश्वविद्यालयो मे पाठ्य पुस्तके इतनी मूल्यवान थी और विद्यार्थियो में मतलब समझने के लिए सहायक पुस्तको के उपयोग की आदत इतनी कम थी कि वे अपनी कापी को सचित रखते और अध्यापक को जो कुछ पढाते सुनते उसके हर शब्द को नोट कर लेते थे। इस तरह कोर्स के अन्त मे उनके पास अपनी ही हस्तलिपि मे एक ऐसी कापी तैयार हो जाती जो आजकल के सक्षिप्त सस्करणो से मिलती-जुलती होती थी। इसे वे बडे चाव से पढते और हरेक शब्द पर विचार करते थे। यदि विद्यार्थी स्वय कोई अध्यापक बन जाता तो वह अपने भाषणो मे उस व्याख्या के शब्द ज्यो-के-त्यो प्रयोग कर डालता था और उन भाषणो का एक-एक शब्द विद्यार्थी नोट कर लेते थे।

पढाई का यह तरीका मध्ययुग से भी पुराना है जिस समय अधिकतर लोग निरक्षर होते थे। सम्भव है यह हेब्रू परम्परा का हो जिसका पाश्चात्य सस्कृति में प्रचार ईसाई धर्म के प्रचार से हुआ। यहूदियो के ज्ञान कोष के मुख्य भाग को मिश्नाह (Mishnah) कहा जाता है जिसका अर्थ है "दुहरा कर पढना"। किसी यहूदी स्कूल में विद्यार्थी तब तक अपने अध्यापक के शब्द रटता रहता है जब तक वह उसको जबानी याद न हो जाय। यह तरीका अध्यापक के शब्दो को ज्यो के त्यो उतार लेने और फिर उसको जबानी याद कर लेने से ज्यादा भिन्न नही है।

यह सोचकर किसी शिक्षा प्रणाली को त्याग देना, क्योकि वह हमे हेब्रुज (Hebrews) से मिली थी और मध्य-युग मे स्थापित की गयी थी, अनुचित होगा। यह एक अच्छा कारण है कि इस प्रणाली की उपयोगिता पर आज सावधानी से विचार किया जाय, अपने लेक्चर का कितना भाग औसतन विद्यार्थी को नोट कर लेना चाहिए ? क्या सारे लेक्चर को नोट करना चाहिए ? या किसी को नही ? क्या उसको उतना नोट करना चाहिए जितना वह कर सकता हो।

अधिकाशत, यह अध्यापक कैसा है और वह विषय कैसा है इस पर निर्भर करता है। गणमान्य विद्वान् इतने पारगत होते हैं कि यदि वे "अपनी सामग्री को ठीक से तैयार करें" तो उनके आख्यान का हर शब्द करीब-करीब नोट कर लेने लायक होता है क्योकि वे बातें किसी पुस्तक मे नही मिल सकती और उनमे इतनी विद्वत्ता भरी होती है कि विद्यार्थी सैकडो घण्टे की खोज के बाद भी वैसे तथ्य नही निकाल सकते। मान लीजिये आइन्सटाइन को बिजली और गुरुत्वाकर्षण के सम्बन्ध में भाषण देने के लिए प्रेरित किया गया। ऐसी स्थिति मे एक रेकार्ड करने की मशीन और चित्र लेने वाले कैमरे की जरूरत होगी जो उनके हरेक शब्द को स्थायी रूप से सचित रख सके या यदि ऐसा न हो सके तो हम ही उस तरह के बन जायें कि उन मशीनो की तरह उनके शब्दो को दुहरा सकें। बहुत से विषय इतने महत्त्वपूर्ण होते हैं कि यदि उनको पढाना ही हो तो खूब ज़ोर देकर पढाना होगा। उनके तथ्य और तर्क इतने गूढ और याद करने मे कठिन होते हैं कि

विद्यार्थी का नोट लिये विना काम ही नही चल सकता। उदाहरण के लिए मान लीजिये अध्यात्म-शास्त्र (Metaphysics) पढाने वाला अध्यापक परमात्मा के अस्तित्व के बारे में तीन तर्कपूर्ण प्रमाणो पर विचार करता है। ये प्रमाण केवल तीन हैं लेकिन उनका विश्लेषण करना बहुत ही कठिन है और वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जिस विद्यार्थी का पहली वार इस विषय से परिचय हुआ हो और उसने इसका कोई प्रारम्भिक अध्ययन नही किया हो उसके लिए उपयुक्त सलाह यही है कि वह इन तीनो तर्को के हरेक शब्द को लिख ले और हर तर्क पर अध्यापक जो विचार व्यक्त करता है उन्हे भी लिख ले और फिर फुरसत के समय उनकी समस्याओ पर विचार करे।

लेकिन हम तो अध्यापक को छोड कर विद्यार्थी पर विचार करने मे लगे हुए हैं। हमे तो यह पूछना चाहिए कि अध्यापक की जिम्मेवारी क्या है, उसे कितना विद्यार्थियो को लिखवाना चाहिए और कितनी वाते सिर्फ समझाने तक ही सीमित रखनी चाहिएँ ?

सामान्य ज्ञान (Common sense) से इस प्रश्न का हल प्रत्यक्ष हो जायेगा। कोई भी औसत अध्यापक अपने विद्यार्थियो से यह आशा नही कर सकता कि वे उसके लेक्चर के हरेक शब्द को नोट कर लेंगे। इसकी वजाय उसे यह आशा करनी चाहिए कि वे मुख्य तथ्य और तर्को को लिख डालेगे और व्यक्तिगत रूप से वैसी दूसरी बातो को भी नोट कर लेंगे जो उन्हे रोचक जचे। इसलिए अध्यापक को चाहिए कि विद्यार्थियो को वे सारी बातें लिखवा दे जो उसे महत्त्वपूर्ण लगती हैं। बचा हुआ समय उसे विचार-विनिमय, तर्क और टीका-टिप्पणी और समझाने मे लगा देना चाहिए।

इसका तात्पर्य यह है कि उसकी आवाज़ मे काफी विविधता (Plenty of Variety) होनी चाहिए। जब वह ऐसी बातें बता रहा हो जो उसकी दृष्टि में विद्यार्थियो के नोट करने लायक हैं तो उसे उनको धीरे-धीरे और ज़ोर देकर कहना चाहिए। शेप समय में वह तेजी से विना सुस्ती दिखाये उसी तरह बोल सकता है जिस रफ्तार से साधारण सम्भापण होता है। उसके विद्यार्थी जल्दी ही यह जान जायेगे कि कौन-सी बात स्थायी रूप से याद रखने की है और किन व्याख्याओ से वे आवश्यकतानुसार तथ्य प्राप्त कर सकते हैं। वे गति परिवर्तन (Changes of Tempo) से उत्तेजना ग्रहण करेंगे और उससे उनकी अभिरुचि बढेगी। उनको यह भी देखने में सहायता मिलेगी कि वे तर्क जो प्रत्येक लेक्चर के कोर्स मे निहित होते हैं और जो एक दूसरे मे परस्पर लगाव पैदा करते हैं उनका वृहत् बौद्धिक निर्माण (Larger Intellectual Structure) क्या है।

लेकिन इसका मतलब यह होगा कि अध्यापक अपनी ओर से पढाने के पाठ की तैयारी अधिक सावधानी से करे। यही कारण है कि अच्छे ढग से लेक्चर देना बहुत ही मुश्किल और खराब लेक्चर इतने साधारण हो गये हैं। हाल ही में मैं एक ऐसे प्रमुख विद्वान् का लेक्चर सुनने गया जिनकी पुस्तकें और लेखो को मैं अक्सर पढ़ता और उनकी सराहना भी करता था। वे किसी कालेज के एक बड़े हॉल (Hall) में सैकड़ो अतिथियो और आठ-नौ सौ युवक-युवतियो के सामने भाषण दे रहे थे जो उनकी ख्याति से सम्भवत प्रेरित

होकर और अपने अध्यापको के कहने पर उनको सुनने के लिए वहाँ आये थे। वे निर्मम थे। मैं भी उस विषय के बारे मे कुछ-कुछ जानता था और मैं यह सुनने के लिए आतुर था कि वे क्या कहने जा रहे हैं। लेकिन कुछ देर उनको सुनने के बाद मैंने सुनना छोड दिया। मैं स्नातक स्तर (Under Graduates) के विद्यार्थियो के बीच बैठा था और मैंने बिना कठिनाई के उनको (विद्यार्थी) परख लिया। वे विनम्र थे। उन्होने दायित्व के साथ भाषण को सुना लेकिन उन्होने कुछ सीखा नही। मेरे पास बैठे कुछ लोगो ने वक्ता के भाषण आरम्भ होने पर नोट लिखना आरम्भ कर दिया था। शुरू-शुरू मे उन्होने शीर्षक और आरम्भ के कुछ पैराग्राफ के विषयवस्तु को सही लिखा और कुछ नाम भी लिखे। लेकिन उसके बाद लिखना कम होने लगा। वे सब कुछ नही लिख सके क्योकि वक्ता ने सभी बातो को एक ही सुर से कहा और उन्होने उच्चारण के जोर से या रुक रुक कर या भाव-भगिमाओ द्वारा महत्त्वपूर्ण बातो पर जोर नही दिया, सिर्फ उनके भाषण मे जैसे शब्दो का ताता लगा रहा इसलिए श्रोताओ के लिए यह चुनना और लिखना कठिन हो गया कि उसमे कितना अश महत्त्वपूर्ण है। अन्त मे हार कर उन्होने लेक्चर की सामान्य रूपरेखा को ही याद करना चाहा। पर मैं जिन लोगो से मिला उनमे से कुछ ही ऐसा कर पाये।

बाद मे मैं कमेटी रूम मे गया और अपने उस लेक्चरर मित्र से मिला। शीघ्र ही मैंने इस बात का पता लगा लिया कि क्यो उन्होने अपने श्रोताओ को अचरज मे डाल दिया और उनको परेशान किया। वह उनको बातचीत से कुछ नही समझा रहे थे, वे तो केवल अपनी उस पुस्तक का एक अध्याय उनको सुना रहे थे जिसे वे लिख रहे थे। निस्सन्देह इसका असफल परिणाम होना था। विद्वतापूर्ण पुस्तकें अक्सर नीरस, शुष्क और पढाने मे कठिन होती हैं। फिर भी उनसे लाभ ही है। वह यह कि जब आप कोई बात (Fact) दुहरा रहे हो या किसी तर्क पर विचार कर रहे हो तो उस समय आप उस पुस्तक को बार-बार पढकर उपयोग मे ला सकते हैं। यह सुविधा भी तब जाती रहती है अगर उन बातो को जोर से पढने लगते हैं। यही बात रचना की अनुभूति (Sense of Structure) पर भी लागू होती है। इस बात की जानकारी पढते समय होती है जब सारी पुस्तक प्रत्यक्ष रूप से पैराग्राफो, खण्डो (Sections) और अध्यायो मे बटी हुई हो। इस कमी को लेक्चर सुनकर पूरा नही किया जा सकता क्योकि उसमे फर्क सिर्फ इतना ही होता है कि वहाँ पुस्तक पर ध्यान न देकर कोई किसी बोलने वाले आदमी की तरफ ध्यान देता है।

इसलिए एक कुशल लेक्चरर कभी भी व्याख्यान देते समय अपने लेक्चर को पढकर नही सुनायेगा। अपने लेक्चर में वह इस बात का स्पष्टीकरण भी कर देगा कि वे कौन-कौन से भाग हैं जिन्हे वह यह चाहता है कि उसके श्रोता अपनी कापियो पर उतार लें और याद कर लें या वैसे कौन-कौन से भाग हैं जिनको दृष्टान्त, सबद्ध तर्क या व्याख्या की तरह जल्दी-जल्दी समझा देना चाहिए। इस भेद का स्पष्टीकरण उसकी आवाज, भाव-भगिमा और आचरण से ही हो जायगा। जिस समय वह अपने लेक्चर को तैयार कर रहा

होगा, या भाषण देने से पहले उस पर दृष्टिपात कर रहा होगा उसी समय उसके मस्तिष्क मे यह भेद साफ-साफ दिखाई देगा।

यहाँ हम लेक्चर देने और साधारणत बोल-चाल मे नोट के प्रसग के महत्त्व पर विचार करेंगे। इसको हम एक कहावत से शुरू कर सकते हैं जो इस प्रकार है—"बिना तैयारी के भाषण देना असम्भव होता है।"

आप झट पूछ बैठेंगे कि, "और उन प्रख्यात मजाकियो का क्या होगा जो बिना पूर्व सूचना के ही किसी दावत मे बोलने के लिए बुला लिए जाते हैं और जो सब लोगो को बीसियो मिनट तक हँसाते ही रहते हैं और जो न तो अपने भाषण को पहले से तैयार ही करते हैं और न उसके लिए किसी नोट की सहायता ही लेते हैं? उन राजनीतिज्ञो का क्या होगा जो बिना किसी तैयारी के ही दिन-रात मे किसी भी वक्त भाषण दे सकते हैं?"

इसका उत्तर यह है कि ये सभी वक्ता अपने भाषण में जो कुछ भी कहने जा रहे हैं उन सब बातो को वे पहले ही व्यवहार मे ला चुके होते हैं। अभ्यास के कारण ये इतने प्रसिद्ध हो जाते हैं कि बिना पूर्व सूचना के इनको कही भी बोलने के लिए बुलाया जा सकता है। इसके लिए ये अभ्यास के तौर पर हँसी आरम्भ करने के दस-बारह नुसखे याद कर लेते हैं, उनको परीक्षण करके देख लेते हैं और ज़बानी याद कर लेते है। आख्यान मे सभापति को सबोधित करने के दस-बीस हास्यपूर्ण तरीके, खाने-पीने और मेहमान या अपने को परिचित करने के कुछ सामयिक प्रसग और तीन सौ उपयुक्त चुटकुले याद कर लेते हैं जो किसी अवसर पर कहे जा सकें। इस तरह जब कभी वे दावत मे बोलने जाते हैं और खाने बैठते हैं तो उन्ही याद किये हुए चुटकुलो आदि मे से कुछ जो सबसे उत्तम और सामयिक हो चुन लेते हैं। इसके विपरीत राजनीतिक वक्ता कार्यक्रमानुसार दौरे पर चलने से काफी दिन पूर्व ही अपने सलाहकारो से राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलो पर क्या विचार व्यक्त करेंगे इस विषय मे गम्भीर मत्रणा करते हैं। वे अपने भाषण के हर पहलू पर विचार विनिमय करते हैं जिससे उनको यदि रूस के बारे मे या अपने देश मे चीजो की बढती कीमत पर प्रश्न किये जाने पर क्या बोलना है उसका हर वाक्य याद हो जाता है। इस दृष्टि-कोण से हिटलर का उदाहरण विशेष उल्लेखनीय है। वह बहुत ही कम बोलता था। यहाँ तक कि अपने मित्रो से भी वह बहुत ही कम बोलता था। वह हमेशा एक या दो ही अपने अन्तरग सहयोगियो से बाते करता था। उसकी पुस्तक "Mein Kampf" मे एक ही बातचीत का विवरण लिखा है जो उसने हेस नामक व्यक्ति से की थी। हेस को पदच्युत कर दिया गया था और वह लैण्डबर्ग जेल मे बन्दी था। लोगो ने ज्यादा बातचीत करने मे असमर्थ होने के कारण हमेशा या तो वह चुप ही रहता या बहुत ज़ोर-ज़ोर से बोलता था। जब कभी वह भाषण देता तो अपने श्रोताओ पर आधिपत्य जमाने की कोशिश करता, उसके विचार मस्त होते और उन विचारो को दुहरा-दुहरा कर उनमे तारतम्य स्थापित करता था। हिटलर जैसे कम पढे-लिखे व्यक्ति का, जिसके आचरण और गमन सूरत म

कई दोष थे, जिसका उच्चारण बडा अप्रिय था, एक प्रकाण्ड वक्ता होना इस बात का सबसे सुन्दर उदाहरण है कि नियमित प्रतिबिम्बन और सतत परिश्रम से कोई भी बडा वक्ता बन सकता है।

लेकिन हिटलर भी अपने भाषण में बहुत अधिक उत्तेजित हो जाता या बडी तेज़ी से बोलने लगता था जिससे उसका भाषण बेलगाव बन् जाता था। कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता था जैसे वह शब्द-ससार मे भ्रमण करने जा रहा हो। दूसरे वक्ता, जो अपने विषय के बारे मे अधिक गहराई से विचार नही करते वे उन लोगो से भी अधिक अपने विषय के इर्द-गिर्द चक्कर काटते और भाषण मे हिचकिचाहट का अनुभव करते हैं जिन्होने अपने विषय की तैयारी नही की है। जनता के सम्मुख भाषण देना गाना गाने या अभिनय करने से कही अधिक कठिन कार्य है और यह जरूरी है कि इसके लिए भी पहले ही सावधानी से तैयारी कर ली जाय। बल्कि उससे भी ज्यादा सावधानी से वक्ताओ को तैयारी करनी चाहिए। जनता के सामने बोलने वालो का यह कर्तव्य है कि जब वे सामने बोलें तो ऐसा अनुभव हो जैसे वक्ता की जबान से बातें सहज स्वाभाविक रूप मे निकल रही हैं। ग्रीस और रोम के प्रख्यात वक्ता अपने आख्यान को उतनी ही सावधानी से तैयार करते थे जैसे किसी ऑपेरा मे भाग लेने के लिए आजकल कलाकार तैयारी करते हैं। दस-बारह बार अपने भाषण को लिखने के बाद वे उसको अपने विश्वस्त मित्र, आलोचक और अध्यापक को पढकर सुनाते और भाषण को उस समय तक बराबर दुहराते जाते जब तक उन्हे उसका हर भाग मुँहजबानी याद नही हो जाता। इतना होने पर भी उनके भाषणो मे यह कभी नही मालूम होता कि उसे बडे परिश्रम से तैयार किया गया है बल्कि वह मानो वक्ता के हृदय के अन्तरतम उद्‌गारो का सच्चा और विशुद्ध अभिव्यजन है। सिसेरो जब काटिलाइन पर वाक्य बौछार करने के लिए उठा तो उस समय उसको वहाँ क्या कुछ बोलना है यह सब मालूम था। यहाँ तक कि अकस्मात भय और आपत्ति की भावना कहाँ अभिव्यक्त करनी है वह उसे ठीक उसी तरह मालूम था जिस तरह इस बात की पूर्ण रूपरेखा किसी अभिनेता के दिमाग मे स्पष्ट होती है कि मच पर आने के बाद, मच से जाते समय या जब वह खडा है मच पर उसको क्या सवाद बोलने हैं। यही कारण है कि हम आज भी सिसेरो जैसे विद्वानो के भाषणो को पढते हैं। उनके भाषण के पन्ने-पन्ने मे विचारो का गागर मे सागर है। उनमें व्यवहारिक अनुभव, कठिन मानसिक ज्ञान (Intricate psychological knowledge) प्राप्त होता है। उनमे भाषा की ऐसी शिक्षा मिलती है जो आधुनिक वक्ता अपनी सारी जिन्दगी बिता कर भी शायद ही हासिल कर सके। यह तो ठीक उसी तरह हुआ जैसे एक तरफ डूरर (Durer) जैसे महान् चित्रकार का एक चित्र और दूसरी तरफ दूसरे अनेक नगण्य चित्रमय विज्ञापनो से भरी कोई पत्रिका या एक और बिथोवेन (Beethoven) जैसे प्रख्यात सगीतज्ञ की किसी एक रचना को थोडी देर सुनना और दूसरी तरफ दूसरे अनेक नगण्य कलाकारो की रचनाएँ दिन भर सुनना।

इसलिए विना तैयारी किए लेक्चर देना असम्भव है। अपना आख्यान आरम्भ करने से पूर्व वक्ता को यह सही-सही मालूम होना चाहिए कि वह अपने श्रोताओ से क्या कहना चाहता है, किस तरह कहना चाहता है और कितना जोर देकर कहना चाहता है। उसके दिमाग में अपने आख्यान की सम्पूर्ण रूपरेखा तैयार होनी चाहिए। अध्यापक को सिर्फ इतना ही जानना आवश्यक नही कि उसको कितने पन्ने पढाने हैं वलिक उसे विचारो के जोड-तोड को अलग-अलग और साफ-साफ ठीक उसी तरह समझना चाहिए जिस तरह कोई भूगर्भ शास्त्री मिट्टी की परतो की तह, रेत, पानी, आग्नेय या जलेय पत्थरो का अध्ययन करता है।

यदि उसे इस वात का ध्यान है तो निश्चय ही वह लेक्चर के लिए नोट तैयार करेगा। चाहे उसे एक आख्यान देना हो चाहे उसे पूरा कोर्स कराना हो उसको हमेशा नियोजित ढग से काम करना चाहिए। इस स्थान पर अक्सर लेक्चरर दो मे से एक महत्त्वपूर्ण गलती कर जाते हैं। वह गलती यह है कि वे या तो किसी कागज़ के एक ही पन्ने पर अपने नोट तैयार कर लाते हैं और क्लास मे उसी को पढ कर सुना देते हैं या फिर वे अपने तथ्यो को इस तरह एकत्र करते हैं कि वह एक पुस्तक का रूप धारण कर लेता है और क्लास में उसी को पढकर सुना देते हैं। पहली अवस्था मे विद्यार्थी को कुछ समझ नही आती और वे उलझन में पड जाते हैं। दूसरी अवस्था मे वे सुनते-सुनते थकान (Bored) महसूस करने लगते हैं।

कोई भी कुशल अध्यापक इन दोनो तरीको से काम ले सकता है। इस कथन की पुष्टि कैम्ब्रिज के किंग्स कालेज के सनकी, हँसमुख और विद्वतापूर्ण प्रोवोस्ट (Provost) डाक्टर शेपर्ड के दृष्टान्त से की जा सकती है। वे 'इलियड' की कलात्मक नियोजन (Artistic plan) पर आख्यान दे रहे थे। उतनी वडी काव्य-कृति की रचना को पहचानना और उसका वर्णन करना वडा कठिन काम है विशेषकर वैसी दशा मे जब उसको चातुर्य-पूर्ण यूनानी भाषा मे लिखा गया हो। लेकिन डाक्टर शेपर्ड ने 'इलियड' नामक पुस्तक के चौवीस खडो की अनेकानेक लडाइयो, वाद-प्रतिवादो और भावना और गतिशीलता के अदम्य प्रवाह मे एक नियमित सयोजन का आभास पाया। यही सयोजन उन मुख्य कारणो मे से एक है जिनके द्वारा अनगिनत पीढियो ने "इलियड" को अनायास ही एक अत्युत्तम कला-कृति समझा है। उनके तीसरे लेक्चर के वाद एक छात्रा उनके पास गयी और वोली, "डाक्टर शेपर्ड महोदय, मैं समझती हूँ कि आपका लेक्चर अत्यन्त सुन्दर रहा। यद्यपि मैं आपके पूरे लेक्चर को नोट न कर सकी लेकिन जितना कर सकती थी उतना किया। क्या आप अपने नोट मुझे देगे ? मैं वचन देती हूँ कि उन्हे उतारकर तुरन्त आपको लौटा दूंगी।" "हाँ, हाँ, क्यो नही, ये लीजिये मेरे नोट।" डाक्टर शेपर्ड ने, जो एक घण्टे तक विना रुके प्रवाहिनी की तरह लेक्चर दे चुके थे, कहते हुए उस छात्रा को एक लिफाफा दिया जिसके ऊपर यह लिखा हुआ था—

Zeus	जियस
Agamemnon	आगमेमनान
Zeus	जियस

फिर भी मुझे सदेह नही कि उनका लेक्चर वडा तर्कपूर्ण और सुन्दर ढग से अलकृत था। उस लेक्चर मे आरम्भ, मध्य और एक निर्दिष्ट अन्त था, उसका अपना पूर्ण और सुसतुलित ढाँचा था। जिसे यथा शब्द लिखा जा सकता था और यथारूप प्रकाशित भी किया जा सकता था। डाक्टर शेपर्ड जैसे अनुभवी और चतुर गुण-दोष विवेचक निश्चय ही वैसे नोट की सहायता से लेक्चर दे सकते हैं लेकिन हममे से अधिकतर अध्यापको के लिए ऐसा करना भयानक होगा।

इसका ठीक उल्टा भी होना उतना ही भयानक है यद्यपि इसमे अधिक गुण होते हैं। यदि किसी लेक्चरर के सामने पढाने वाले विपय का ऐसा सम्पूर्ण मूलग्रन्थ हो जिसको छापा जा सकता हो तो इससे वह अध्यापक चाहे सुस्त भले ही वन जाये लेकिन उसके लेक्चर कभी वेलगाव (Incoherent) नही हो सकते, वह कभी "वडवडा या फूट नही" पडेगा लेकिन इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जीवन का अध पतन शुरू होने से पूर्व वह कितना नीरस (Dull) वन सकता है ? जब मैं स्नातक स्तर का विद्यार्थी था तो मुझे अच्छी तरह याद है कि एक प्रोफेसर ने जो लेक्चर पहले दिन दिया था उसी को दूसरे दिन भी अक्षरश दुहराया। उनके पास टाइप किया हुआ जो नोट था उसे वे इतनी देर तक पढते रहे कि अपने श्रोताओ (विद्यार्थियो) का उनको तनिक भी ध्यान न रहा। दूसरे दिन फिर जहाँ उनको १५०वाँ पन्ना शुरू करना था वहाँ १४०वाँ ही पढने लगे। जव हम लोगो ने इस ओर ध्यान दिलाने के लिए सकेत दिया तो उन्होने अपनी नाक पर लटकते चश्मे के ऊपर से हम लोगो की तरफ झाँका और अन्तिम वाक्य को फिर से दुहराकर आगे वोलते चले गये। जब तक वे अपना पुराना लेक्चर दुवारा सुना रहे थे मैंने अपनी रगीन पेंसिल निकाली और जो नोटो का सग्रह मैंने तैयार किया था उनके शीर्षक उस पेंसिल से रगने लगा और मेरे पीछे वैठे चार उन्मत्त (Fanatics) विद्यार्थियो ने तो ब्रिज मे की एक वाजी ही पूरी कर ली।

यह कोई ऐसी उपहासजनक घटना नही जो नियमित रूप से नोटो की सहायता से पढाई करने से हो सकती है। इसका खतरा यह रहता है कि कही श्रोताओ से सम्पर्क न छूट जाय।

शुरू-शुरू मे ऑक्सफोर्ड में मुझे फिलासफी पढाने वाले अध्यापक एक नर्वस (Nervous) युवक लेक्चरर थे जिनकी वुद्धि कुशाग्र थी। वे एक उत्तम शिक्षक थे। लेकिन किसी लेक्चर हाल में बैठे विद्यार्थियो तक अपने विचारो को किस तरह पहुँचाना चाहिए इस समस्या पर उन्होने कभी विचार नही किया था। वे जब लेक्चर देने के लिए आये तो उनके हाथ में टाइप की हुई और कुछ हाथ के लिखे लेखो की अनवँधे पुस्तक की शक्ल का सग्रह था जो शायद लेखो का ऐसा क्रम था जिन्हे वे प्रेस में भेजने के लिए

लिख रहे थे। हम लोगो को छपने जाने से पूर्व उन लेखो को सुनने का मौका मिला। अपनी डेस्क पर पहुँचकर वे बैठ गये और हॉल मे विद्यार्थियो को, जो तेरहवी सदी के चोगे पहने हुए थे अरुचिपूर्ण ढग से देखा और अपने कागजात निकाल कर पढने लगे। आवाज उनकी ठीक वैसी सुनायी पड रही थी जिस तरह दूर किसी नल से पानी के टपकने की आवाज आती है। जैसे-जैसे वे बोलते गये और अपनी दलीलो से ही अभिरुचि का अनुभव करते गये वे कुछ गर्म हो गये और जब इस तरह जोर से बोलने लगे तो उनकी आवाज सुनाई पडने लगी। उनका चश्मा चमकने लगा। उन्होने अपने लेक्चर मे "प्रत्यक्षत कान्ट अधिक धृष्ट था और हम भी अपने आप को उसी प्रकार व्यक्त कर सकते हैं जिस प्रकार विटगेंस्टाइन के विरुद्ध हुआ था" जैसी विचित्र बात कही। उनके गर्म मस्तिष्क से मानो भाव टपकने लगे। उनकी खोपडी पर भाव रूपी मोम पिघलकर उनके गालो से धीरे-धीरे टपकने लगी। फिर भी उन्होने हम लोगो की तरफ नही देखा यद्यपि हम लोग उनको सुन रहे थे। हम मे से कईयो ने यद्यपि "विटगेंस्टाइन" (Wittgenstein) का नाम पहले कभी नही सुना था या जो "कान्ट" (Kant) जैसे शब्द केवल उबा देने वाले शब्द समझते थे, वे लेक्चरर को अचम्भा भरी बेचैनी से देख रहे थे। वे अपनी नाक पर चढे चश्मे और अपने हाथ मे पकडे नोट दोनो के बीच मे रज भरी नजर से देख रहे थे। उन पन्नो मे, जाहिर है वे ब्रेडले, बर्कले, हेगेल और श्लेगेल को ही देख रहे थे।

यद्यपि उनका भाषण अब सुनाई पड रहा था लेकिन उसमे तारतम्य नही रहा। यह टाइप किये हुए लेखो का सग्रह उस जादू की पुस्तक की तरह मालूम पडता था जो मेरलिन ने अपनी जादू-टोना करने वाली सहेली को सुनाया था

O aye, it is but twenty pages long,
But every page having an ample marge,
And every marge enclosing in the midst
A square of text that looks a little blot,
The text no larger than the limbs of fleas,
And every margin scribbled, crost, and cramm'd
With comment, densest condensation, hard
To mind and eye
And none can read the text, not even I,
And none can read the comment but myself

अर्थात् 'हे प्रिये ! यह पुस्तक केवल बीस पन्नो की है। लेकिन हरेक पन्ने मे पर्याप्त हाशिया छोडा गया है। दोनो ओर हाशिये के बीच पुस्तक के अक्षर चौकोर बनाते हुए लिखे हैं और वे देखने मे धब्बे मालूम होते हैं। उनके अक्षर बिल्कुल छोटे-छोटे हैं मानो छोटे-छोटे कीडो की शकल के हो। हरेक हाशिये मे कुछ न कुछ घनीटम्बर घने शब्दो मे लिखा गया

है और वह इतना सटाकर और गूढ बनाकर लिखा गया है कि आँख और दिमाग दोनो को ही उन्हे पढने के लिए बडा कष्ट उठाना पडता है ' और लिखावट मे विषय-वस्तु को कोई भी नही पढ सकता, यहाँ तक कि मैं भी उसे नही पढ सकता और जहाँ तक हाशिये मे लिखी गयी टिप्पणियो का प्रश्न है वह तो मेरे अतिरिक्त और दूसरा कोई पढ ही नही सकता।'

और वक्ता को छोडकर दूसरा कोई भी उस भाषण को नही समझ सकता था। वहाँ हमारे लिए दिखावे और सत्य का अन्तर परखना मुश्किल था। हम यह मानने को तैयार थे कि रग नही होते (या उनका अस्तित्व भी उतना ही है जितना हमारा है) और उनके वजन का कोई मतलब नही होता लेकिन हमे यह धैर्यपूर्वक समझ मे आने लायक शब्दो मे उसको समझने की जरूरत थी। अब इस युवक लेक्चरर महाशय ने यह समझकर कि हमने ग्रहण (Perception) के क्षेत्र के हरेक प्रश्न को पहले ही से निबटा रक्खा है, हम लोगो को अध्यात्म-शास्त्र के दूसरे उस्तादो के साथ अपनी कुश्ती मे अपना समर्थक समझने लगे यद्यपि हममे से कुछेक को ही उनके नाम मालूम थे या इस बात की जानकारी थी कि वे किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते थे। इधर दिन पर दिन वे पढ़ते चले गये। सबसे पहले वे मौलिक लेखो की टाइप की हुई प्रति पढते, फिर कूक विल्सन (Cook Wilson) के विवादास्पद पैराग्राफ पढते और इसके बाद वे लबी, कठिन, अक्षरश और एक-एक धारणा की काट उनको पढकर सुनाते जिसको उन्होने तैयार किया था। अत में अपनी विजयी यात्रा को समाप्त करते हुए यह कहते "Thus I submit it has been proved, as against Cook Wilson, that the perception of a colour is itself sensed!" हममे से शायद ही कोई यह सुनकर खुशी व्यक्त करता क्योकि हममे से किसी को भी यह मालूम नही था कि वे क्या पढा रहे हैं।

इससे यह नतीजा निकलता है कि किसी भी लेक्चर को तैयार किये गये नोट पर आधारित होना चाहिए। लेकिन पढाते समय लेक्चर को पढकर नही सुनाना चाहिए। जब लेक्चरर ने कोर्स के विभिन्न खण्डो के नोट तैयार कर लिए हो तो उसे चाहिए कि वह उनमें से प्रत्येक को पढे और यह निशान लगाता जाय कि,

(क) उनमें खास-खास पाइन्ट (Points) कौन-कौन से हैं जिन्हे धीरे-धीरे और सविस्तार बल देकर समझाना चाहिए जिससे उन्हे ज्यो का त्यो विद्यार्थी उतार सकें।

(ख) उस लेक्चर को जोडने वाले (Connecting links) कौन-कौन से तथ्य हैं जिनकी रूपरेखा उसे याद रखनी चाहिए और जिनको उसे तेज़ी से और बोल-चाल की साधारण भाषा में समझाना चाहिए जिससे लेक्चरर इतना समय निकाल सके कि यदि विद्यार्थियो को जरूरी हो या वे तथ्य समझने में कठिनाई अनुभव हो तो सविस्तार प्रकाश डाल सके।

आवाज़ का तेज़ और धीमी होना ही एक कुशल लेक्चरर और एक बुरे लेक्चरर

का फर्क होता है या हम कह सकते हैं एक अध्यापक और एक ज्यादा काम से लदे अध्यापक (Hack) मे होता है। काम से बोझिल अध्यापक यदि किसी विषय पर पढाने लायक इतनी सामग्री इकट्ठी कर लेता है जिसको पढने मे एक घण्टा लगे तो वह समझता है कि उसका काम पूरा हो गया और तव वह क्लास मे जाकर उसी को पढ देता है। दूसरी तरफ अध्यापक को यह मालूम है कि उन तथ्यो को विद्यार्थियो तक पहुँचाना उसका कर्तव्य है। अत वह मौलिक तथ्यो को ठीक से उनको कह सुनाता है। उसके बाद व्याख्या और दृष्टान्त प्रस्तुत कर और किसी पाइन्ट (Point) पर बहस द्वारा, नये दृष्टान्त देकर और महत्त्वपूर्ण परिच्छेदो (Passages) को पढ कर वह अपने को इस वात से जितना सन्तुष्ट वना सकता हो वनाता है कि क्लास ने उन तथ्यो को न केवल स्वीकार कर लिया है अपितु उनको बिल्कुल समझ गयी है और तथ्य पचाने भी लगी है।

वैसा पहला लेक्चरर, जिसने यह काम नियमित ढग से किया वही आधुनिक शिक्षा प्रणाली के सस्थापको मे से एक था। वह महापुरुष अरस्तु थे। हमारे सामने आने वाली रचनाओ मे से शायद ही कोई ऐसी होगी जो उनके नाम मे एक पुस्तक के आकार मे छापी गयी हो। वे सव उनके अपने ही लेक्चरो के नोट की शक्ल मे हैं जिनको या तो उनके विद्यार्थियो ने लिखे थे या जिनको स्वय उनके सहयोगियो और उत्तराधिकारियो ने याद कर लिया था। इस तरह हम देखते हैं कि उनके कुछ शब्दो मे ही कठिन वातो का साराश दिया है, उनके एक शब्द से ही कई दृष्टान्त याद आ जाते हैं। क्लास मे किसी वात की चर्चा करते हुए कुछ ऐसी एकाध वात कह देता है जिनको उदाहरण के तौर पर प्रयोग किया जा सके या किसी वैसे कठिन शब्दो को छोड देता है जो उसके दर्शन (Philosophy) में इतना अन्तरग था कि उनको समझाने की आवश्यकता ही नही थी और जिनको वह विविध ढग से हर क्लास मे हर साल समझाता रहता है। जव हम अरस्तु को पढते हैं तो हमे कभी भी पैराग्राफो को यह समझ कर नही पढना चाहिए कि वे पुस्तक के विचारो का नियमित अभिव्यजन करते है। उनको चाहिए कि वे उनको लेक्चर—नोट समझ कर पढें और उस वात को सुनने की कोशिश करें जो अध्यापक की वाणी उनके नोटो (Notes) मे गूंज रही है और तव उनको उस चर्चा (Discussion) के तत्पर आत्म-उत्साहन शक्ति का लाभ उठाना चाहिए।

इस नियोजन के वारे मे लेक्चर देने का सवमे वडा खतरा यह कदापि नही कि किसी के नोट चित्रमात्र (Sketchy) होगे। यह खतरा यह है कि अगर उसने पढाते समय अपनी क्लास के साथ सच्चा अतरग सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तो वह विद्यार्थियो के साथ इतनी गहरी अभिरुचि पैदा कर देगा कि वह उन्हे जिस वात को वता रहा है उसे उन्हे याद कराने में असफल हो जायेगा। क्योंकि जब तक कोई लेक्चर उनके दिमाग पर स्थायी प्रभाव नहीं छोडता (जैसे तथ्यो का नवीन विवेचना (Interpretation), परीक्षण करने की एक भावना, या तर्क करने के लिए विचारो का एक तांता) तब तक वह पढाने का एक स्वांगमात्र है या कोई अभिनय के समान है। उनमे अभिरुचि अवश्य पैदा की

जानी चाहिए। हाँ, लेकिन साथ ही साथ उनको शिक्षा भी जरूर दी जानी चाहिए।

इसलिए लेक्चरर अपने मन मे प्रमुख बातो को बार बार दुहरायेगा और उसके बाद उनको बोलेगा। पढाते समय वह उन सभी साधनो का उपयोग करेगा जिससे हर बात क्लास की समझ में आ जाये। इन बातो को वह अच्छी तरह जानता है कि उसके तर्क किन तथ्यो पर आधारित हैं, उनमे सबसे प्रबल और सबसे दुर्बल कौन पक्ष हैं, कौनसी बातो मे सदेह हो सकता है या वे विवादास्पद हैं और उनमें से कौनसी बातें ऐसी हैं जिनको जरूर याद रखना चाहिए। लेकिन जब लेक्चर जारी होता है उस समय श्रोता-गण केवल अध्यापक के मुँह से निकलने वाले शब्द प्रवाह को ही सुनते हैं इसलिए अध्यापक का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह विद्यार्थियो की इस बात मे मदद करे जिससे उन विचारो और तथ्यो को वे भी उसी तरह नियोजित कर सकें जिस तरह वे विचार और तथ्य अध्यापक के दिमाग में हैं। ऐसा करने का सबसे बढिया तरीका यह होगा कि उसने जो तथ्य एकत्र किये हैं उनको उस समय तक अध्ययन करता जाय जब तक उनका बौद्धिक सामजस्य इतना स्पष्ट और प्रबल न हो जाय कि पढाते समय उनके छूटने की कोई सभावना न रहे। हरेक प्रूफ के भागो का और हर काम की मुख्य बातो को गिनवाना और हाव-भाव से इसका सकेत देना वक्तव्य कला की सबसे पुरानी और सुरक्षित विधि है और यद्यपि इनका अतिशय उपयोग करना बहुत सहज है, फिर भी यदि सावधानी से उसका उपयोग किया जाय तो ये अमूल्य गुण हैं। किसी जानी पहचानी क्लास को या श्रोताओ को, जिन्हे आप सचमुच सहानुभूतिपूर्ण समझते हैं, उसके साथ पढाते पैराग्राफो के बीच मे समय निकाल कर सहज और बोलचाल की भाषा मे पीछे बताई गई बातो को समझा देना अक्सर सम्भव होता है। जैसे एक पथ-प्रदर्शक किसी चढाई के बीच मे रुक-रुक कर अपने दल को विश्राम के लिए ठहरा देता है और यह बताता है कि अब तक पार किये गये रास्ते मे किन-किन कठिनाइयो को झेलना पडा है या इटालियन सुखान्त रचनाओ के उन अभिनेताओ की तरह, जो नाटक के प्लाट में श्रोताओ की अभिरुचि बढाने के लिए उनके विश्वासपात्र बनने का यत्न करते हैं। चूँकि लेक्चर देकर पढाने की मुख्य त्रुटि यह है कि विद्यार्थी पहले निश्चेष्ट और आगे चल कर अचेत हो जाते हैं। इसीलिए आप उनकी चेतनता और सहयोग का पता "क्या यहाँ तक समझ गये न ? पहली दो बाते समझ गये या समझाऊँ ?" कह कर लगा सकते हैं। (जब आप उनसे यह पूछेगे तो इसका उत्तर वे अक्सर यह चिल्ला कर देंगे कि "नही"।)

अपने लेक्चर को स्पष्ट करने का दूसरा उत्तम ढग यह है कि बोलते समय आवश्यकतानुसार रुक-रुक कर बोला जाय (Punctuate with the voice) या अपने विचारो के विभिन्न तर्कों के बीच-बीच में थोडी-थोडी देर ठहरा जाय। चुप रहना चिल्लाने से कही अधिक महत्त्वपूर्ण (Emphatic) होता है। अपने भाषण की गति और उसमे बल इस ढग का होना चाहिए जिससे भाषण के तथ्यो को अभिव्यक्त करने मे सहायता मिले। अक्सर अपनी वाणी को बनावटी ढग से मीठा बना कर कहना अधिक प्रभावोत्पादक नही होता, लेकिन

आपकी आवाज़ में व्याख्यान देते समय कम-से-कम ठीक वैसे ही उतार-चढ़ाव आना चाहिए जिस तरह घर पर बोलचाल में आता है। वहाँ अपने मित्रों से बातचीत करते समय तेजी से उसमें उतार-चढ़ाव आता है उसमें और डाक्टर या लायर (Lawyer) के बातचीत की गति में अन्तर होता है। कोई भी आदमी ऐसे व्यक्ति से बातचीत करना पसन्द नही करेगा जिसकी आवाज़ में उतार-चढ़ाव नही आता या जिसके बोलने की गति नही बदलती, जिसकी आँख या अभिव्यक्ति से उसकी भावनाओ का उथल-पुथल नही नजर आता। कोई भी वैसे भाषण को सुनना रुचिकर नही समझता जिसमे एक ही शिथिलता बराबर छायी रहती है। भाषण में अभिव्यक्ति का होना स्वाभाविक होता है। भावनाओ को दबाना या शिथिलता का प्रदर्शन अस्वाभाविक होना प्रकट करता है।

फिर भी लेक्चर देना कोई एकतरफा सम्भाषण नही है। अतः वह भाषण (Speach) होता है। लेकिन सारा का सारा लेक्चर वार्तालाप की तरह का नही होना चाहिए। एक विख्यात इतिहासज्ञ प्रोफेसर टायनबी (A S Toynbee) लिखने में विस्तृत और सपूर्व विविधता और सौन्दर्य के साथ लिखते हैं। लेकिन जब वे लेक्चर देते हैं तो ऐसा जान पडता है कि वे घनी श्रोतामण्डली को भी उसी सहज बोलचाल की साधारण भाषा में बातचीत करते हैं मानो ऑक्सफोर्ड के किसी सीनियर कामन रूम (Senior Common Room) में बैठे किसी अतिथि से विनम्रतापूर्वक बातचीत कर रहे हैं। जिन लोगो को सन् १९४७ के जाड़े के दिनो मे प्रो० टायनबी को कोलम्बिया यूनिवर्सिटी मे बोलते हुए सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उन्होंने देखा है कि उनसे जानने योग्य और उनके लेक्चरो मे सुनने योग्य काफी बाते थी। लेकिन उनमे से कुछ लोगो ने यह भी अनुभव किया कि वे अपने विचारो को बहुत ही स्पष्टता से व्यक्त करते हैं या शायद अपनी पुस्तक "स्टडी ऑफ हिस्टरी" (Study of History) के विशाल और पारदर्शी विचारो को बोलचाल की झगडालू (Fugitive) और सस्ती भाषा मे अनूदित कर रहे हैं। ऐसा वे सम्भवत विनम्रता के वशीभूत होकर करते हैं। शायद वे यह समझते हैं कि एक लेक्चरर केवल अपने सुनने वालो को सुनाता ही है जबकि बातचीत केवल बराबरी के स्तर पर ही होती है। वे उस विषय के एक पारंगत विद्वान् की तरह बर्ताव करने मे हिचकिचाते हैं और अपने सुनने वालो को एक अवैयक्तिक सत्य की खोज के विद्यार्थी के साथ लिए चलते हैं। शायद वे यह भी सोचते हैं कि बड़े-बड़े विचारो को आसानी से नही समझा जा सकता इसलिए उन पर धीरे-धीरे मनन करने और समझने की जरूरत होती है। अत उनसे परिचित होने के लिए यह अच्छा होता है कि वे अपने श्रोताओ को उनसे सविनय परिचित करावें और उन लोगो को आसानी से समझने का अवसर दें। यह तो सच है ही लेकिन यह भी [illegible] अनजाने श्रोताओ को राह बताने और राह दिखाने की जरूरत होती है और उन [illegible] को बताने की जरूरत होती है जिनको वे अभी नही जान सकते। प्रोफेसर टायनबी [illegible] शब्दों में प्रत्येक लेक्चरर को अपने श्रोताओ को समझाने की जरूरत रहती है [illegible] अपने श्रोताओ का ध्यान पूर्ण रूप से अपनी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं [illegible]

कि वे उनके लेक्चर को समझें।

वक्ता के हाव-भाव और आवाज़ उसके लेक्चर के नियोजन को स्पष्ट कर देते हैं। स्कूल और युनिवर्सिटी के क्लासो मे ब्लैक बोर्डों का होना बहुत ही जरूरी होता है। कठिन नाम, फार्मूले और तारीख अवश्य ही बोर्ड पर लिख देने चाहिएँ जिससे उनकी नकल की जा सके और उन को याद किया जा सके। लेकिन यह भी आवश्यक है कि नौसिखिए विद्यार्थियो के मानस-पटल के 'चिकने स्तर' पर ब्लैक बोर्ड की तरह ही लेक्चर की मुख्य बातें भी लिख दी जायें। किसी छोटे से वाक्य या प्रश्न को कुछ सैकिण्ड मे बोर्ड पर लिखा जा सकता है। आप को उसे उस समय तक लिखा रहने देना चाहिए जब तक आप बातो को समझा रहे हैं या उनके अपवादो को समझा रहे हैं या जब तक अगले प्रश्न पर आप नही पहुँचते। आगे बढने से पहले तनिक थम जायें। अपने लेक्चर के अन्त मे ब्लैक बोर्ड पर आपके लेक्चर का साराश दिया जाना चाहिए जिसमे विचारो और रेखा-चित्रो आदि का क्रमानुसार विकास झलके और उनके सहारे उस घटी मे उस क्लास को कुछ निश्चित जानने योग्य बातें नज़र आ जायें जो शायद अपनी जानी-पहचानी सूरत से कुछ सतोपजनक मालूम पडें।

जिस समय मैं यह पुस्तक लिख रहा हूँ उस समय टेलिविजन अपनी प्रारभिक अवस्था मे है। लेकिन उस भावी समय की कल्पना करना कठिन नही जिसमे यह साधन समाचार के आदान-प्रदान, राजनीतिक प्रचार और कुछ तरह की शिक्षा के लिए मौलिक साधन बन जायेगा। बहुत से विषय जिनको वयस्क विद्यार्थी पढना चाहेगे, वे शाम के समय बडी-बडी श्रोता मडलियो में टेलिविजन के सहारे पढाये जायेंगे। हमे मालूम है कि फिल्मो में किसी 'विशेषज्ञ' पढाने वाले को जल्दी-जल्दी टाइप की हुई कापी को पढते और बीच-बीच में कैमरे के सामने ताकते हुए दिखाना कितना बेकार मालूम होता है। टेलिविजन के ज़रिये पढाने के ठीक तरीको को ढूँढ निकालने मे वर्षों लगेंगे। लेकिन इससे एक मौलिक परिवर्तन यह होगा कि लेक्चर देने के सभी वर्तमान तरीको मे थोडा-सा सुधार हो जायेगा अर्थात् इसमे शिक्षक की आवाज़, उसके व्यक्तित्व और चेहरे से पैदा होने वाली "व्यक्तिगत अभिरूचि" (Personal interest) और उदाहरणो को दूसरे कैमरो से दिखाना जिससे श्रोताओ का ध्यान आकर्षित किया जा सके या उसके दिमाग मे बैठाया जा सके, सभव हो सकेगा। इस तरह के माध्यम से सारी दुनिया के लोगो और मानव समाज के विभिन्न वर्गों के भविष्य मे पढने की सभावना बढ जायेगी।

पढाने का दूसरा तरीका, ट्युटोरियल प्रणाली (Tutorial system) का आविष्कार सुकरात ने किया था। यथार्थ तो यह है कि यह प्रणाली यूनानियो के स्वभाव से ही पैदा हुई थी जो प्रश्नोत्तर और तर्क में दिलचस्पी रखते थे। जैसा कि सेन्ट ल्युक ने कहा है उन्हे नये विचारो को सुनने और उस पर विनिमय करने से अधिक प्रिय और कोई चीज़ न थी। लेकिन सुकरात ही पहले व्यक्ति थे जिन्होने यह सोचा कि पढाने का अर्थ नये विचार को केवल खाली दिमागो मे भरना ही नही हो सकता बल्कि उनके दिमाग मे पहले ही से छिपे हुए ऐसे शास्वत सत्यो को उभारना भी हो सकता है। उन्होने शिक्षा देने का सारा

कार्य बातचीत द्वारा ही किया। वे केवल प्रश्न पूछते जिसका दूसरों को उत्तर देना पड़ता था। नि सन्देह दूसरा व्यक्ति उत्तर देने से इन्कार कर सकता था। कुछ लोगो ने ऐसा किया भी और सभा को क्रुद्ध होकर छोड भी दिया। लेकिन युवकगण सुकरात के प्रसन्नतापूर्ण सौजन्य से आकर्षित होते, विशेषज्ञ अपने विशेष ज्ञान के अधिकार को बचाने की कोशिश करते और परदेसी उनसे प्रभावित होते और कभी-कभी उनके इस ढोंग से धोखा भी खा जाते कि उनको बिलकुल कुछ मालूम नही था या उन्हे थोडी शिक्षा की आवश्यकता थी और कुछ सीधे-सादे सवालो का उत्तर सीखना था''

फिर भी सुकरात के लिए पढाना केवल अपने विद्यार्थियो के अज्ञान को उभारने और उनके ढोंग को हटाने के लिए उनसे प्रश्न पूछने तक ही सीमित नही था। ये तो केवल नकारात्मक लक्ष्य थे (These are negative aims)। उनके मस्तिष्क मे इसका एक सार्थक अभिप्राय भी था यद्यपि यह अभिप्राय विद्यार्थी को नही बताया जाता था। वे हरेक विद्यार्थी को इस योग्य बनाना चाहते थे जिससे वे यह समझ सके कि सत्य को समझना विद्यार्थी की शक्ति से बाहर नही होता यदि वे पूरी खोज करे, सभी 'प्रामाणिक वक्तव्यो' को स्वीकार करें और हरेक समस्या का समाधान तर्क मे ही करे। सुकरात को स्वय सत्य के बारे मे सुस्पष्ट और विस्तृत जानकारी थी। उनके प्रश्न क्रमश और धीरे-धीरे उनके विद्यार्थियो को उसी क्षेत्र की ओर ले जाते थे। रास्ते मे अवसर वे असफल होते या पथ भूल जाते या आकस्मिक आपत्तियो का सामना करने के लिए रुकते थे। आलोचनात्मक पद्धति और निर्दिष्ट उद्देश्य का समन्वय ही ट्यूटोरियल प्रणाली का मूल है।

यह तरीका सबसे कठिन, सबसे दुर्लभ और पढाने का सबसे परिपूर्ण तरीका है। यह सबसे कठिन इसलिए है क्योंकि इसमे अध्यापक और विद्यार्थी, दोनो को बराबर जागरूक, हमेशा प्रसन्नचित्त, पूरी ईमानदारी और सत्य के लिए पूर्ण आत्म-समर्पण की आवश्यकता होती है। यह सबसे दुर्लभ इसलिए है क्योंकि इसमे समय, धन और परिश्रम तीनो अधिक लगते हैं। सुकरात गरीब थे और मूलत अपने शिष्यो से प्राप्त उपहारों पर ही जीवन-निर्वाह करते थे। लेकिन अध्यापन मे जीवन-निर्वाह इस प्रणाली के अन्तर्गत मिलने वाले कुछ विद्यार्थियो की फीस से हो सके और ऐसे विद्यार्थी भी कम ही होगे जो उनके जीवन को सम्पन्न बनाने योग्य रकम उनको फीस के रूप मे देने को तैयार हो। इस प्रणाली के अन्तर्गत समय और परिश्रम बहुत लगता है। पचास-साठ लड़कों की कक्षा को एक-एक घण्टे के दो लेक्चर देना एक या दो विद्यार्थियो को दो घण्टे तक ट्यूटर की तरह पढाने से कही सरल होता है। इस तरह दो बच्चो को पढाने मे सवाल पूछना, बच्चो को गलती करने से रोकना, खुद पाठ याद रखना और साथ-साथ समझाते जाना, उनसे तर्क करना, अपने को बचाना (Defending) और तब उनको दबाना और इन सब बातों के बावजूद धीरे-धीरे बिना तेजी के एक निश्चित उद्देश्य को सवारना पडता है। इस तरह ट्यूटोरियल पढाई अध्यापक पर भारी है। इसका विवेक

शून्य हो जाता है और वे आगे नही पढा सकते। इससे भी बुरा परिणाम यह होता है कि वे प्राय दूसरा कोई काम नही कर सकते। यह बहुत ही कठिन है कि कुछ परिश्रमी और उत्साहवर्धक विद्यार्थियो को एकाध पारी पढाकर अपनी पुस्तको को पढा जाय या किसी विषय पर अनुसधान का कार्य जारी रखा जाय। मेरा विचार है कि कभी-कभी गणित, भैषज, या साधारण प्रयोगशाला के विषयो के अध्यापको के लिए ऐसा करना सम्भव हो जाता है क्योकि इनको पढाना उतना ही कठिन होते हुए भी कम समय का और लगातार नही होता। लेकिन भाषा मे साहित्य, दर्शन, इतिहास, और साधारणतया, मानवशास्त्रो के पढाने मे ऐसा करना सचमुच ही बहुत कठिन होता है। नतीजा यह होता है कि जो इन विषयो को इस तरह पढाते हैं उनके पास शायद ही समय या शक्ति होती है कि वे किसी ज्ञानवर्धन के दूसरे प्रयास मे पूरी तरह लग सके। कभी कभी तो वे अपने रोज के काम को भी बडी मुश्किल से ही निबट पाते हैं। जब वे दस-बीस विद्यार्थियो के मानसिक विकास मे बहुत व्यस्त होते हैं। जिन विद्यार्थियो का अपना अलग व्यक्तित्व हो और वे बढ रहे हो और सभी दिलचस्प हो तो अध्यापक कैसे अध्यात्मक-शास्त्र (Metaphysics) या (Hispanooportuguese Review) की नवीनतम सस्करण पढ पाये ? मध्ययुग मे राष्ट्रीय भावना के विकास के बारे मे छपी अमुक नयी पुस्तक को पढाना चाहते हैं लेकिन इस काम को उन्हे आगे के लिए टालना पडता है, कम से-कम तब तक जब तक अतिम परीक्षा खत्म नही हो जाती या शायद गर्मी की छुट्टियो मे भी वह नही पढ पाता।

लेकिन विद्यार्थियो के हित को देखते हुए इस तरीके से ट्यूटरिंग (Tutoring) करना शिक्षा का सर्वोत्तम तरीका है। ट्यूटर विद्यार्थी से अच्छी तरह परिचित हो जाते हैं। कभी-कभी तो वे विद्यार्थियो को उनके माता-पिता से भी अधिक समझ जाते हैं और कभी-कभी अपने आप से भी अधिक वे उनको जान जाते हैं। ऐसे घनिष्ठ सम्बन्ध के स्थापित हो जाने पर वे कभी क्रूर या मुर्दादिल नही हो सकते। अक्सर वे उनके आदर्श और मित्र बन जाते हैं। वे अपने विद्यार्थियो को जान जाते हैं और धीरे-धीरे सहानुभूतिपूर्वक उनकी कमजोरियो को दूर कर देते हैं। वे अपने विद्यार्थियो के गुणो को जानते हैं और उन्हे विकसित करते हैं। कठिनाई पडने पर लडके हमेशा उनसे मदद के लिए कह सकते हैं। कभी-कभी तो अध्यापक उनके कहने से पूर्व ही उनकी आवश्यकता समझ जाते हैं। यहाँ सिर्फ एक ही खतरा है कि अध्यापक का दृढ व्यक्तित्व कही विद्यार्थियो को कमजोर या उनकी प्रतिलिपि मात्र न बना दे। (सुकरात के पास कम-से-कम इस तरह की प्रतिलिपि जैसा एक व्यक्ति था जो सभी जगहो पर उनका अनुसरण करता और उनके पहनावे और आचरण की भी नकल करता था।) लेकिन अध्यापक का ही यह काम होना चाहिए कि जहाँ तक हो सके अपनी मौलिकता को वश मे रखकर और उस पर ज्यादा बल न देकर यथासम्भव ऐसा न होने दे। साधारणत, सबसे अच्छे अध्यापक परिवर्तनशील और अपने को विद्यार्थियो के व्यक्तित्व के अनुसार ले चलने वाले

ही होते हैं। वे अधिक दृढ, कठोर, सुनिश्चित और प्रतिभाशाली नही होते।

यह आत्मविस्मृति, जो उन्हे अच्छा अध्यापक बनाती है, प्राय हमे उन लोगो को भुला देना सिखाती है। इसकी वजह से कभी-कभी विद्यार्थी भी यह भूल जाते हैं कि उन अध्यापको के प्रति वे कितने आभारी हैं जिन्होने उनका निर्माण किया। आधुनिक युग के कुछ सबसे अच्छी शिक्षा पाने वाले लोगो मे माइकेल दे मोंते (Michel de montaigne) थे। उन्होने शिक्षा की समस्या पर काफी विचार किया था और स्वेच्छा से इस विषय पर लिखा भी था। उनके इस विषय पर लिखे गये लेखो मे हम यह देखते हैं कि वे सदा यह मान लेते हैं कि कोई भी व्यक्ति, जिसमे शिक्षा पाने का सामर्थ हो अपने को शिक्षित कर सकता है। अगर ज्यादा नही तो प्राइवेट ट्यूटर द्वारा वयस्क होने तक तो अवश्य ही। ऐसा करने के लिए उसे विद्या घोलकर प्रेम से पिलानी नही पडेगी (बल्कि कभी-कभी तो वह उसकी उसके माँ-बाप से भी ज्यादा पिटाई कर सकता है)। ऐसा वह वैसी अवस्था मे भी कर सकता है अगर वह खोखली दिमाग (Empty headed) बालक को सम्पूर्ण मनुष्य बनाने के व्यवसाय मे अपने को अच्छी तरह लगाये। स्वय मोंते के भी एक ही अध्यापक थे, जो जर्मन थे और जिन्होने मोंते के पिता के किसी विचार का अनुसरण करते हुए उनके शिशु को अपने साथ ले लिया, उसे सबने पहले लैटिन भाषा की शिक्षा दी और इस तरह उसके दूसरे समकालीन लोगो से छ सात साल आगे कर दिया और साथ ही उसको वह साहित्य-प्रेम प्रदान किया जिसे उसने सारी जिन्दगी कायम रक्खा। लेकिन वह अपने अध्यापक का नाम कही नही लेता और कही भी इस बात को नही सोचता मालूम पडता है कि वह अपने अध्यापक के प्रति विशेष रूप से आभारी था। यही राबेले (Rabelais) पर भी लागू होती है। इसमे होलोफर्निस (Holofernes) (जिसके नाम का मतलब है 'अत्याचारी') और अच्छा अध्यापक पोनोक्रेटीज (Ponocrates) अर्थात् ('काम से शक्ति'), ये दोनो राक्षस राजकुमार गर्गन्टुआ के पालन-पोषण मे महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करते हैं। लेकिन शिक्षा के समाप्त होने पर युवक राजकुमार अपने आपको समझने लग जाता है और पोनोक्रेटीज को केवल अपने साधारण दरबारियो जैसा समझने लगा। ऐसे लोग बहुत कम होंगे जो स्वय ऐसी शिक्षा को हासिल करके भी इस प्रकार लिखते हैं जैसा कि लोगन पियर्सोल स्मीथ (Logan Pearsall Smith) ने अपनी आत्मकथा में इस प्रकार लिखा है कि, "उच्चकोटि के विद्वानो के लिए ऐसे अध-कचरे युवको को पढाने का धधा करना "उत्कृष्ट सामग्री की असहनीय बर्बादी" है, जब वे जीवन मे स्वय अपना रास्ता ढूंढ रहे हों। लेकिन यह बात ट्यूटोरियल प्रणाली की सफलता का प्रमाण है क्योकि जैसा कि मैं कह चुका हूँ, यह प्रणाली इस सिद्धान्त पर आधारित है कि शिक्षा वह कला है जिससे विद्यार्थी के मस्तिष्क मे पहले से ही मौजूद गुणो का अभ्युदय होता है जिससे विद्यार्थी के भावी व्यक्तित्व के निर्माण मे सहायता मिलती है। इसलिए जब यह काम पूरा हो जाता है तब विद्यार्थी भी यह समझने लगता है कि उसने कुछ पाया नहीं केवल उसका अपना ही व्यक्तित्व विकसित हुआ है। हम जानते हैं कि

हमने उसे पढाया था यदि लेकिन हम बुद्धिमान हैं तो हम कभी भी सच्ची वात नही वतायेगे।

जिस तरह पढने के विपय भिन्न-भिन्न होते हैं और व्यक्ति अलग-अलग किस्म के होते हैं वैसे ही एक विद्यार्थी या विद्यार्थियो का एक छोटे समूह को पढाने के ढग भी भिन्न-भिन्न होते हैं। लेकिन पढाने के सिद्धान्त हमेशा करीव-करीव एक से रहते हैं। विद्यार्थी किसी पाठ को तैयार करता है, इसके वाद उसको दिखाने के लिए वह अपने ट्युटर के पास ले जाता है जो वडी सावधानी से उसे पढकर शुरू से आखिर तक हरेक वडी से वडी और छोटी से छोटी वात की आलोचना करता है। विद्यार्थी को तीन तरह की क्रिया (Activities) से शिक्षा मिलती है। पहला अपने काम को खुद करके, दूसरा अपनी उन गलतियो को देख कर जिन्हे अध्यापक उनको वताता है और अपने अध्यापक से उस विवाद द्वारा जिसमे वह अपने किसी पाइन्ट के सर्मथन मे तर्क प्रस्तुत करता है आर तीसरा विल्कुल सुधार किये गये काम को अपने किये हुए काम की पहली कापी से तुलना करके। इन तीनो मे पहला काम क्रिया का है, दूसरा आलोचना और तीसरा सपूर्णता की प्रशसा। अध्यापक का यह मुख्य काम है कि वह इस बात को देखे कि अलग-अलग क्रियाएँ वास्तव मे अलग-अलग नही रहती हैं। वे एक दूसरे से मिली हुई होनी चाहिएँ और उसका दायरा वडा होना चाहिए जिससे हर विपय का उतना भाग दूसरे मे जरूर आ जाये जितने की विद्यार्थी को आवश्यकता है।

उदाहरण के लिए सगीत में कोई अध्यापक बच्चो को विलकुल शुरू से सिखाना शुरू कर सकता है जैसे राग और लय आदि के प्रारम्भिक पाठ से, धीरे-धीरे गाते समय किस तरह दम लेना चाहिए, किस तरह आवाज को नियन्त्रित करना चाहिए, किस तरह जल्दी गाना चाहिए, किस तरह सुमधुर स्वर मे द्रुत गति से गाना चाहिए। दूसरी तरफ नये कलाकारो मे गला फाड कर चिल्लाना, गाते समय कम्पन होना, रुक-रुक कर गाना या गाते समय तेजी से साँस लेना जैसे जो दोप आ जाते हैं उनको जहाँ तक सभव होगा कम करने या बिल्कुल खत्म करने की कोशिश करेगा। सहज रागो को सिखा चुकने के वाद अध्यापक उनको अधिक कठिन और लम्वे पाठ सिखायेगा और पहले पाठ को सिखाकर कई साल बाद वह उनको कोई बहुत ही कठिन राग सिखा रहा होगा। (फिर भी हो सकता है कि वह स्वय गाना नही जानता हो।) यदि वह ऐसा करने मे सफल हुआ तो उसको कुशल अध्यापक मानना होगा। उसने ऐसा करके दो वडी समस्याओ को सुलझा दिया होगा जिनका सामना अध्यापको को करना पडता है। इन समस्याओ मे से पहली समस्या बच्चे की शिक्षा के सम्पूर्ण विकास अर्थात् शिक्षा के शुरू होने से लेकर उसके परिपक्व होने तक के सारे भाग की रूपरेखा पहले ही तैयार कर लेना है और दूसरी समस्या यह है कि उन्होने जितनी प्रगति की है उसका उनको स्मरण दिलाकर उन्हे भावी आशाओ की ओर प्रेरित करना और उस समय उनको प्रेरणा देना है जब वे निश्चय ही हतोत्साहन का अनुभव करते हैं।

उनको जो पाठ पढाये जाते हैं उनमे परस्पर लगाव होना ही काफी नही है । वे वहुमुखी होने चाहिएँ जिससे विद्यार्थी की अभिरुचि बनी रहे और उनका सर्वतोमुखी विकास होता रहे । प्रसिद्ध पाश्चात्य गायक काफ रैली (Caffarelli) को, जो अलकृत गायन के युग का सब से बडा सोप्रानो गायक माना जाता है, सिखाने वाला एक ही इटालियन अध्यापक था जिसने उन्हे पाँच साल तक ही राग सिखाया और अन्त मे यह कह कर जाने का आदेश दिया, "तुम अब जा सकते हो, अब तुम यूरोप के सबसे बडे गायक हो ।" निश्चय ही वह दुखी आदमी यूरोप का सबसे बडा गायक था। वह आधुनिक ऑपेरा (Opera) के कलाकारो से कही अधिक शुद्ध और सुमधुर राग मे गा सकता था, कठिन रागो को भी अधिक लचीले और सुन्दर ढग मे गा सकता था। लेकिन उन्होने अध्यापन के कार्य मे एक ऐसा जोखिम मोल लिया जिसकी कोई जरूरत नही थी और वह एक नपुसक के सिवा और किसी के साथ सफल होने वाला नही था ।

लेकिन उनके अध्यापक ने एक ऐसा जोखिम मोल लिया जो बिल्कुल अनिवार्य था और यह जोखिम किसी नपुसक को छोडकर और किसी व्यक्ति के साथ नही निभ पाता। थोडे-से विद्यार्थियो को छोडकर अधिकतर विद्यार्थियो ने नयी कृतियाँ, नयी चुनौतियो और किसी तरह के हेरफेर की शक्ल मे अपने विकास का प्रमाण माँगा होगा । अच्छे प्रशिक्षण के लिए अनुशासित सुस्ती (Disciplined monotony) अच्छी होती है लेकिन इसे मशीन की तरह दुहराने वाली शिक्षा बनने का खतरा रहता है और इस तरह मशीन जैसा दुहराते रहने से बहुत ही परिश्रमी (और इने-गिने लोगो) को छोडकर ताश की कलाबाजियो या करतब से अधिक और कुछ नही सिखाया-पढाया जा सकता ।

शिक्षा की ट्यूटोरियल प्रणाली (Tutorial System) का प्रचलन बहुत अधिक नही । यह ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज मे प्रयोग मे लाया जाता है । हार्वर्ड मे इसको परीक्षण के तौर पर प्रयोग मे लाया गया लेकिन चूँकि इसमे समय और परिश्रम अधिक लगता है इस वजह से वहाँ पर यह ज्यादा सफल नही हो सका है। कुछ युनिवर्सिटियो के स्नातक स्कूलो मे यह प्रणाली कुछ परिवर्तित रूप में पायी जाती है । जैसे छोटी-छोटी कक्षाओं के रूप मे आयोजित गोष्ठी मे जहाँ एक विद्यार्थी किसी चुनी हुई विशेष समस्या पर एक रिपोर्ट तैयार करता है, अपने सहपाठियों की आलोचनाओ का उत्तर देता है और उस गोष्ठी के इन्चार्ज की आलोचनाओं और सुझावो को मिलाकर अपने लेख को एक ऐसी पुस्तक का रूप दे देता है जिसमे उस विषय पर अनुसधानित तथ्य होते है । कोई प्रोफेसर, जो अपने स्नातक स्तर के विद्यार्थियो को थिसिस (Thesis) लिखने के बारे मे बताता है और उस थिसिस के हरेक सफहे पर अपनी राय देता है और उसके अध्ययन को देखता है, यदि पूछिये तो एक ऊँचे स्तर पर ट्यूटर का ही काम करता होता है । लेकिन जहाँ तक मै समझता हूँ यह गहन और कठिन किन्तु उपयोगी व्यवस्था केवल ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज युनिवर्सिटियो मे ही पायी जाती है । अध्यापक और विद्यार्थी के इस सम्बन्ध का किसी अमरीकन राजनीतिज्ञ ने अपने शब्दो मे इस प्रकार किया है "A simple bench,

Mark Hopkins on one end and I on the other"

मैं एक विद्यार्थी और एक ट्यूटर दोनो की हैसियत से इस परिस्थिति से गुज़रा हूँ, और दोनो दृष्टिकोणो से यह मेरे जीवन के सबसे सुखद अनुभवो मे से था। मैं यहाँ अपने विद्यार्थी जीवन का उल्लेख करता हूँ और यह बताता हूँ कि मेरे समय मे यह प्रणाली किस तरह काम करती थी। मेरे साथ एक और विद्यार्थी युवक था और हम दोनो ने एक ही विषय ले रखे थे। हम लोगो को श्री हार्निश के कमरे मे हर मगलवार और शुक्रवार को पाँच बजे उपस्थित होने का निर्देश दिया गया था। मगलवार के लिए मुझे एक ऐसे विषय पर लेख लिखकर लाने के लिए कहा गया था जो हम दोनो का विषय था। उस समय हम लोग, जिन लेक्चरो मे शामिल हो रहे थे हम उनसे काफी आगे थे। मुझे उस लेख को पूरा करने मे आशा से अधिक समय लगा, फिर भी मगलवार की सुबह तीन बजे तक के करीब मैंने उसको पूरा कर लिया और शाम को हार्निश महाशय को पढकर सुनाया। मेरा साथी डिक भी सुनता रहा और हार्निश महाशय अपनी कुर्सी पर बैठे आँख बन्द किए सिग्रेट पीते रहे। उनके चेहरे पर चाव, दुख, भय और आशा के मिले-जुले भाव अकित थे। मेरे लेख के समाप्त होने के बाद एक या दो मिनट तक बिना कुछ बोले वे कमरे मे जलती आग की ओर देखते रहे। (ये क्षण प्राय बेचैनी से बीतते थे लेकिन उनमें विद्यार्थी काफी बाते सीखता था।) तब वे मेरे लेख के बारे मे हरेक पन्ने, प्रत्येक पैरा और हर शब्द पर प्रश्न पूछने लगे। पहले पन्ने पर मित्रराष्ट्रो के बारे में दिये गये आशय की प्रमाणिकता क्या थी ? नि सन्देह यह उस विषय पर लिखी गयी सभी पुस्तको मे दी हुई थी, फिर भी इसका मौलिक सबूत क्या था ? क्या इस बात पर अधिक साव-धानी से गौर करने की जरूरत न थी ? इसके और क्या-क्या सम्भाविक अर्थ हो सकते थे ? क्या मैं जानता था कि किसने ऐसे सुझाव दिये थे ? क्या उन लोगो की न्यूनतम खोजो के कारण उन पर अधिक गौर करने की जरूरत न थी ? और पृष्ठ पाँच पर उदाहरणा-त्मक अवतरण का मूल रूप क्या था ? क्या वह साधारण अनुवाद था ? मैंने उसका जो रूपान्तर प्रस्तुत किया था उसका क्या औचित्य था ? आइये अब हम इन सब बातो पर गौर करें। इसी समय डिक भी हमारी बातचीत मे शामिल हो गया और तब हम तीनो ने इस पर विचार किया। लेख के तीसरे पन्ने पर अमुक सिद्धान्त को ही दुबारा दिया गया था न ? इस सिद्धान्त की क्या-क्या वास्तविक त्रुटियाँ थी ? सारे लेख पढने के दौरान मे ऐसे ही प्रश्न आते चले गये।

इसके बाद मिस्टर हार्निश ने सारे लेख पर विचार किया और उसकी कमियो पर प्रकाश डाला और पूछा कि किस तरह से इन कमियो को पूरा किया जा सकता है। उन्होने हाल ही मे पूरे किये गये कुछ अनुसधान कार्यों की चर्चा की, गत सप्ताह फीलोबिब्लियन सोसायटी में विचार किये गए कुछ तर्कों का जिक्र करने के बाद कैह्वरशैम द्वारा उस विषय पर लिखी गई पुस्तक का उल्लेख करते हुए उसे पढने की राय दी। अगले सप्ताह के लिए अमुक-अमुक विषय पर लिखने को कह कर हमने पेग लिया।

यह तो हुई मगलवार की वात। शुक्रवार के लिये डिक ने अपना तैयार किया हुआ लेख पढा और मैं शान्तचित्त सुनता रहा और वाद मे मिस्टर हार्निश को उसी तरह वाल की खाल उतारते हुए सुना। अगले सप्ताह भी ऐसा ही हुआ। पहली अवधि के समाप्त होने तक हमने आठ-आठ लेख लिख या सुन लिये थे। इन्ही सव विपयो पर हम पुस्तकें भी पढते और लेक्चर भी सुना करते थे। आठ सप्ताह की अवधि लम्वी नहीं होती। उसके अन्त तक पढाने की इस खीचातानी से वे उस विपय के उस विशेप अग मे पूर्णतया परिचित हो गये।

आरम्भ मे जव हम भापा और साहित्य पढा करते थे, हमारी क्लास मे सप्ताह मे दो वार अनुवाद करने के लिए काम दिया जाता था। जर्मन गद्य का अग्रेजी मे, अग्रेजी पद्य का स्पेनिश मे, रूसी पद्य का अग्रेजी पद्य मे, अग्रेजी गीतो का लैटिन गीतो में, कहने का मतलव यह है कि हम जो कोई भी भापा पढते थे उनमे अनुवाद करने का काम मिलता था जो साधारणतया वडा ही कठिन था। कभी-कभी अकेले या कभी दूसरे किसी के साथ हम अपना काम ट्यूटर को दिखाने के लिये ले जाते थे जो अक्षरश हमारे काम को देखता, छद और शब्दो के चुनाव मे हमारी आलोचना करता, अनुपयुक्त शब्द के वदले दूसरे शब्द वनाता, छद ठीक करता और कभी-कभी हास्यास्पद ढग से मार्जिन मे सकेत आदि लिखता और अन्त मे सारे अनुवाद की अभिव्यक्ति और उसके सौन्दर्य पर विचार करता था। इसके वाद प्राय वह उसी टुकडे पर स्वय किया हुआ रूपान्तर हमे दिखाता जो हम पूरा या सक्षेप मे अपनी इच्छानुसार उतार लिया करते थे। इस रूपान्तर के सौन्दर्य और चतुराई को परखना ही पडता था। इस अवस्था मे हफ्ते मे एक वार के करीव हममे से छ या आठ विद्यार्थी प्रमुख विपय पर लिखे गये छोटे-छोटे लेखो को दिखाने के लिये उसके कमरे मे एकत्र होते। इन लेखो की वे आलोचना करते और हमारी अभिरुचियो के मुताविक विचारो को जागृत करने के लिए अपने सुझाव देते। ये आलोचनाएँ मिस्टर हार्निश की आलोचनाओ जैसी गहन नही होती थी। पेजेन्ट्स वार (Peasants' War) मे लूथर के योग के वारे मे लेख पढने के वाद जव आपने और पाँच लेख रिफौरमेशन और इरास्मस, यूलरिच वौन हटन (Ulrich von Hutten) के उपद्रवी जीवन, पीटर कैनिसियस (Peter Canisius) और जर्मनी के जेसुइट्स (Jesuits), मोन्स्टर (Munster) के एना-वाप्टिस्ट्स और पोप और सम्राट् के प्रतिद्वन्दो के वारे मे सुन चुके होगे तो जर्मनी के रिफौरमेशन के वारे मे जरूर कुछ ज्ञान हो जायगा।

और जव मैं अपने ही अनुभवो से उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ (यद्यपि यह वहुत कुछ वदल चुके हैं), मैं अपने ग्रीक पढाने वाले स्कूल मास्टर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहूँगा। वे इम्पीरियल विधि से मुझे पढाते थे क्योंकि मैं ही उनका अकेला विद्यार्थी था और उनमें भी यही वात तो यह है कि लन्च के समय या चाय के समय तक मुझे पढाते मे लगा देते थे। हम दोनो ग्रीक भाषा [illegible] (Dirge) मे [illegible] रहे थे। यह भाग्य, मुझे इस-लिए भारी थी क्योंकि यद्यपि इनके अक्षर [illegible] होते थे फिर भी वे [illegible] सुन्दर लगते।

और उनको न जाने यह भाषा क्यो भाती थी क्योकि वे तो शान्तचित्त स्कौट्स-मन थे जिनको सिवा अपने खेत के और किसी विषय के प्रति अभिरुचि नही होती। शायद वे चाहते थे कि कोई विद्यार्थी यूनिवर्सिटी तक जाये और इस तरह उन्हे श्रेय मिले। शायद वे पढाने के काम को इतना पसन्द करते थे कि अगर कोई उचित विद्यार्थी मिल जाता तो उसे अपना फालतू समय भी दे देते। नि सन्देह वह ग्रीक साहित्य पसन्द करते थे क्योकि इसके सर्वोत्तम अगो से उन्होने मुझे परिचित कराया था। उनका उद्देश्य चाहे कुछ भी रहा हो, वे मुझे विनम्रता और विना थकावट के पढाते थे। मैं उनके डेस्क के पास खडा हो जाता और दिन का पाठ होमर की हरेक लाइन का अनुवाद करके पूरा करता था (और कभी-कभी लच के वाद वाहर फुटवाल खेलने वाले अपने मित्रो के चिल्लाने की आवाज को भी सुन लिया करता था।) शायद ही हमसे कोई चीज वचती थी। वे साफ-साफ शब्दानुवाद पर जोर देते थे जो शुरू करने वालो के लिए सवसे अच्छा तरीका है। चार्ल्स लैब के मिसेज वैटल की तरह वे "साफ चूल्हे साफ आग" और काम की यातना से प्रेम करते थे और यदि मैं समय से पहले भी पाठ समाप्त कर देता तो मैं जाता नही था। वे मुझे कोई अदृश्य पाठ पढने या अनुवाद करने के लिए दे देते या कोई आगे का पन्ना दे देते जिसे मैंने देखा या पढा न हो। वीच-वीच मे वुकानन महाशय कठिन शव्दो से मेरी मदद करते। शेप समय मे वे वही चुपचाप और सख्ती से खडे रहते और तम्बाकू और कपडे की गन्ध आती रहती थी। इस तरह वे एक छोटे और अबोध वालक के लिए सच्ची विद्वत्ता और उच्च शिक्षा की लम्बी और सज्जन परम्परा का प्रतिनिधित्व करते थे। आज मैं उन्हे श्रद्धाजलि अर्पित कर रहा हूँ। मुझे दु ख इतना ही है कि ऐसा मैंने वहुत देर के बाद किया।

पढाई का तीसरा तरीका सबसे ज्यादा प्रचलित है। यह है क्लास की पढाई। इसको किसी एक नाम से पुकारना कठिन है। 'दुहराना' (Repetition) शब्द का इसके लिए उपयोग करना अनुपयुक्त लगता है। 'विचार विमर्श' (Discussion) शब्द क्लास की औसत मीटिंग से ज्यादा स्वतत्र आदान-प्रदान का द्योतक है। कम से कम स्कूलो के विषय में तो यही कहा जा सकता है। इसके लिए पारपरिक अमेरिकन शब्द 'पाठ' (Recitation) है, लेकिन यह भी दुहराना की तरह दोषयुक्त है। इस तरह के क्लास की पढाई मे केवल याद करने का ही काम नही होना चाहिये, हालाकि यह इसी पर आधारित है।

चाहे इसे किसी नाम से पुकारा जाय लेकिन जैसा कि मैंने पहले वताया है, इस पद्धति की पढाई का आधार किसी एक पुस्तक को, या एक प्रकार के ग्रथो या ज्ञान के किसी निश्चित और सीमित क्षेत्र को जानना होता है। मैकवैथ या स्टव्स लिखित चार्टर्स या थोरेक्स की अग रचना से क्लास की पढाई शुरू होती है। अध्यापक विषय को विभिन्न भागो मे वाँट देता है और हरेक हिस्से को पढाने के लिए क्लास की अलग-अलग बैठको के लिये अपने आप तैयार करना होता है। जब क्लास एकत्र होती है तो उसके दो काम होते हैं। पहला यह कि वह बताए कि विद्यार्थी क्या सीख रहे हैं। उनके समझने में जो

कमियाँ रह जाती हैं या उन चीजो को जिन्हे वे नही समझ पाते उनको बता कर या समझाकर, और कभी-कभी उस पाठ मे उनके विश्वास को ज्यादा पक्का करने के लिये, व्यवहार से, दुहराकर या उनको उन से पढवाकर समझाया जा सकता है। दूसरा यह तय करना होता है कि उन्होने सचमुच तैयारी की है या नही । दूसरा काम पहले जितना महत्त्वपूर्ण नही होता फिर भी दुर्भाग्य की बात है कि बहुत से स्कूलो मे यह ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझा जाने लगा है। अध्यापको को रखने और प्रशिक्षित करने का सच्चा उद्देश्य यह है कि वे बच्चो को पढाने मे मदद करें। साथ ही साथ पढने पर उनको बाध्य करना आवश्यक नही होना चाहिये।

मैं ठीक-ठीक तय नही कर पाया हूँ कि उपरोक्त पहली आवश्यकता के महत्त्व को घटाने के लिये दूसरी आवश्यकता पनपी है। मैं समझता हूँ कि पाश्चात्य देशो मे सर्वव्यापी शिक्षा के प्रसार के साथ ही इसका अभ्युदय हुआ होगा। निःसदेह स्कूल के अनुशासन और कठिन तथा उकता देने वाली चीजो को सीखने के प्रति विरोध और हिचकिचाहट होती है। शायद ही कोई ऐसा होगा जो पहाडे की पुस्तक को हँसी के लिये पढता हो। सचमुच शेक्सपीयर के समय से ही हमे यह पता चलने लगता है कि सुबह मे चेहरे के कातिमान होने पर भी स्कूल जाने वाला बालक घोंघो की तरह रेंकता हुआ बेमन मे स्कूल जाता है । लेकिन मेरा विचार है कि सभी वर्गो के बालक बालिकाएँ सालो-साल स्कूल जाने का विरोध नही करते थे। ऐसा तभी से होने लगा जब शिक्षा केवल कुछ लोगो की सत्ताभिमान न रहकर सबो पर थोप दी गयी। उन देशो मे जहाँ शिक्षा को पद्रह साल से कम के बालक-बालिकाओ के ऊपर थोप दिया जाता है वे इस बात को कभी नही समझते कि राष्ट्रीय सुरक्षा, जन-स्वास्थ्य और न्याय शासन के बाद शिक्षा राज्य का मूल्यवान उपहार है। जब शिक्षा को अनुशासन के घेरे मे बाँध दिया जाता है तब वे उससे नफरत करने लगते हैं। अगर उसे सहज और रोचक बना दिया जाय तो बालक उसे गभीरता से नही स्वीकार करते जैसा कि कुछ स्कूलो मे होता है, जहाँ विद्यार्थियो को 'आप से आप' अगले क्लास के लिए उत्तीर्ण कर दिया जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि अगर उन्होंने बहुत ही आलस्य या शरारत के कारण पहले साल मे भूगोल नहीं पढा है तो भी उन्हे अगली क्लास मे इसलिए चढा दिया जाता है कि वे अपने अध्यापक के हाथ से निकल जायें या अपने अधिक प्रतिभावान साथियो के सामने हीनभाव न महसूस करने लगें। इस समस्या का मुझे कोई हल नहीं दिखाई पडता। मैं सिवा ऐसे शरारती बच्चो को पुस्तक की पढाई के लिए नालायक घोषित करने जैसी सख्त कार्रवाई को ही इस समस्या का हल समझता हूँ और उनको व्यस्त रखने के लिए व्यवसाय प्रशिक्षण को अनिवार्य बनाने की जरूरत समझता हूँ जब तक वे बडे नहीं हो जाते। मौंटे (Montaigne), जो एक शान्त प्रकृति, दयालु शिक्षक थे और शिक्षा के मार्गदर्शक थे, उनके पास भी इसका कोई हल नहीं था। वे कहते थे कि अगर कोई बालक नहीं पढना चाहता हो या उसके लिए सर्वोत्तम उचित हो तो 'उसे दूसरा' से उसका गला घोंट देना चाहिए अगर

कोई उसे देखता न हो या उसे किसी हलवाई की दूकान मे मिठाई वनाना सीखने के लिए लगा देना चाहिए।

तब तक अध्यापक अपनी क्लास को कैसे पढाने मे लगाये ?

अधिकतर यह काम उसके चरित्र और मस्तिष्क पर निर्भर करता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो किसी जहाज़ के सिग्रेट पीने के कमरे में आधे घटे तक भी अपनी सुस्ती के कारण हमे नही भाते। इसी तरह कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी होती हैं जिनको यदि हम टेलीफोन पर बातें करते सुन लें तो झट समझ जाते हैं कि वह सुस्त और शरारती है। वैसे लोग सख्ती के सिवा और किसी तरह नही पढाये जा सकते। लेकिन इस वात का हम अध्यापक के व्यक्तित्व पर विचार करते हुए उल्लेख कर चुके हैं। इन तरीको को किस तरह सुधारा जाय ?

प्रत्यक्षत क्लास ने अपने पाठ को तैयार किया है या नही, इस बात को जानने या लडको को भविष्य मे पढने के लिए उकसाने का तरीका उनसे प्रश्न पूछना है। लिखित प्रश्नो के द्वारा, लिखित उत्तर माँगना, 'परीक्षा' या 'टेस्ट' कहलाते हैं। ये दोनो भयकर शब्द हैं। मेरी आत्मा इनके नाम से काँप उठती है। मैं स्वय उनमे से कितनो में बैठ चुका हूँ और सैकडो परीक्षाओ की कापियाँ देखी हैं, फिर भी मेरे दिमाग में कोई ऐसी दूसरी व्यवस्था का विचार नही आया है जो परीक्षा की जगह प्रयोग मे लायी जा सके और न मुझे अब तक कोई ऐसा आदमी ही मिला है जिसने इसका कोई दूसरा रास्ता ढूँढ निकाला हो। जब मैं शिक्षा के इतिहास पर दृष्टिपात करता हूँ तो मुझे यह बात रोचक मालूम होती है कि पुराने समय मे, जब लोग सुशिक्षित हुआ करते थे उस समय सभी बडे इम्तहान लिखकर नही जबानी ही हुआ करते थे। यूनानी और रोमनो के यहाँ अच्छे-अच्छे स्कूल थे लेकिन जब उनकी सन्तान परीक्षा देने जाती तो उनसे कविता सुनाने या भाषण देने के लिए कहा जाता। शेक्सपीयर के (The Merry Wives of Windsor, IV,1) मे एक ऐसी ही छोटी सी परीक्षा की चर्चा आती है लेकिन यह भी ज़बानी ही है। मध्ययुग की महान यूनिवर्सिटियो मे स्नातक बनने वाले "मास्टर" और "डाक्टर" अपनी थिसिस की घोषणा करते थे और आलोचको और प्रतिद्वन्द्वियो के सामने उनके गुण-दोषो का बचाव करते थे। यह रिवाज आज भी हमारे यहाँ डाक्टर की उपाधि पाने से पूर्व रक्खी जाने वाली ज़बानी परीक्षा के सदृश्य होती है। लेकिन लिखित परीक्षाएँ, जिनमें सभी सिर एक ही पर्चे का हल करने मे लगे रहते हैं, उन्नीसवी सदी के पहले नही सुनने मे आती थी। शायद जनसख्या के तेजी से बढने (स्कूलो और उसके बाहर दोनो जगहो में) और आधुनिक औद्योगिक तरीको के विकास के कारण ही ऐसा हुआ है। परीक्षार्थियो से भरा हुआ कमरा, जिसमे बडी-बडी कडियाँ लगी हो और सतर्क निरीक्षको का नियत्रण हो, फोर्ड के कारखाने मे मशीनो को जोडने वाले बडे कमरो की तरह लगता है।

इस बात से यह सिद्ध होता है कि शिक्षा के तरीको के विशेषज्ञ एक ऐसी शिक्षा प्रणाली को ढूँढ निकालने मे मत्रणा कर रहे है जिसको मशीन की तरह चलाया जा सके।

उनका मकसद यह है कि बडे-बडे हस्पतालो मे जिस तरह रोगियो के खून लिम्फ (Lymph), टिस्सु (Tissue) की परीक्षा की जाती है और वे रोगी केवल परीक्षको के निर्णय को ही जान पाते हैं उसी तरह ज्ञान और बुद्धि के बिलकुल निष्पक्ष परीक्षण के ढग का आविष्कार किया जाय। पर्चे एक विशेषज्ञ द्वारा तैयार किये जाते हैं लेकिन पुर्जे जोडने वाले कारखानो की तरह ही उन पर्चों पर नम्बर जोडे जाते हैं। वह विशेषज्ञ केवल पर्चा बनाता है, उसका हल लिख देता है और साथ ही प्रत्येक प्रश्न के साथ तीन गलत उत्तर भी लिख देता है। केवल पर्चे पर उसका सही उत्तर दिया गया होता है। परीक्षार्थियो को केवल सही जवाब पहचानने होते हैं। वे चारो सभावी उत्तरो को देखते हैं। १, २, ३ या ४, उनमे से कोई एक अक अपने चुने हुए उत्तर के अनुसार लिख देते हैं। तब स्त्रियो की एक मडली, जो बिजली का काम करनेवाली प्रशिक्षित औरतो की तरह उन कापियो का मुआयना करती है और यह देखती है कि उनके पास सही उत्तरो की जो अधिकृत कापी है उसके अनुसार किनके अक ठीक हैं। गलत उत्तरो को सही उत्तरो मे से घटा दिया जाता है। उत्तरो के सफल चुनाव के लिए नम्बर के भी निश्चित प्रतिशत के अनुसार अक घटा दिए जाते हैं। शेष अक परीक्षार्थी के प्राप्त अक होते हैं।

एक अध्यापक के दृष्टिकोण से यह बहुत ही सहज और आनन्दमय होता है। विद्यार्थी की स्मरण-शक्ति को जाँचने के लिए यह बहुत ही उपयोगी होता है। कोई भी अध्यापक हरेक विद्यार्थी से एक-एक करके यह प्रश्न करता फिरे कि यूरोप की क्रान्तियाँ कब हुई थी इत्यादि। जबकि वह तेजी से और बगैर व्यक्तिगत जांच के उनके ज्ञान को जांच सकता है?

लेकिन ये परीक्षाएँ स्मरण-शक्ति जाँचने को छोडकर किसी दूसरे स्तर के लिए भ्रामक होती हैं। मान लीजिये न्यू टेस्टामेन्ट के विषय मे परीक्षा हो रही है। पहला प्रश्न इस प्रकार है

पीटर—(१) सैनिक था।
(२) धनी फारसी था।
(३) गरीब मछेरा था।
(४) सम्पन्न किसान था।

ये उत्तर इस प्रकार बताये गये हैं जैसे सभी एक दूसरे की तरह ठीक हो। जो कोई उत्तर मे (३) लिखे वह ठीक है। जो जवाब मे (१) या (४) लिखता है उसको कुछ-कुछ ठीक कहा जा सकता है। लेकिन जो (२) लिखता है उसे न केवल गलत ही बताना चाहिए बल्कि उस को कुछ नम्बर काटकर दड दिया जाना चाहिए। कितने नम्बर काटे जाये? जहां हम यह प्रश्न पूछते हैं वहां 'विषय जन्य' (Subjective factor) बातें उठ खडी होती हैं। अध्यापक को चाहिए कि इस बात का पता लगाकर कि विद्यार्थी को सारे विषय की कितनी जानकारी है। विद्यार्थी की बुद्धि और उसके उपयोग का स्तर मालूम करना चाहिये। जैसे जैसे उसको पढाने का काम अलग-अलग स्तरों [illegible]

याद करने से ऊँचे स्तर पर पहुँचता जाता है, वृहत् और गूढ चिन्तन के रचनात्मक ज्ञान की ओर बढता जाता है वैसे-वैसे उसके लिए ऐसा करना और भी ज्यादा जरूरी होता जाता है।

ऐसे प्रश्नो को पूछकर ली जाने वाली परीक्षा, विद्यार्थी अभी जो काम कर रहा है, उसके प्रति उसके दृष्टिकोण में घातक परिवर्तन ला देगी। इसकी वजह यह है कि उस विद्यार्थी को इस परीक्षा के लिए ऐसी बहुत सी बेमेल और छोटी-छोटी बातो का ध्यान रखना होगा। जैसे "नेपोलियन ने फौशे (Fouché) को वडा वनाया ", "नेपोलियन ने आस्ट्रिया को विवश किया ", "नेपोलियन ने जोसेफीन को तलाक दिया ।" इसके बावजूद अध्यापको को पढाते समय विद्यार्थियो मे निर्माण सन्तुलन की भावना (Sense of Structure) पैदा करने की सबसे ज्यादा कोशिश करनी चाहिए। निर्माण सन्तुलन की भावना से यह अभिप्राय है कि इतिहास की मौलिक गति-विधि विस्तृत भौगोलिक ज्ञान या किसी महान् पुस्तक के प्लाट और उसके मकसद को समझने की क्षमता हो। जैसे-जैसे विद्यार्थी इस तरह की परीक्षाओ से परिचित होते जाते हैं वैसे-वैसे उनका ध्यान किसी विषय की ज्यादा विस्तृत और गहरी जानकारी से हटकर केवल उसके कुछ मौलिक तथ्यो तक ही सीमित रह जाता है जिसको उस विषय की सच्ची जानकारी या शिक्षा पाये बिना भी सीखा जा सकता है।

फिर भी कहना न होगा कि ऐसे टेस्ट विद्यार्थियो के प्रति ज्यादा न्यायपूर्ण (Fair) होते हैं। टेस्ट प्रणाली शुरू-शुरू मे उन अनुसधानकर्त्ताओ ने चलाई थी जिन्होने यह अनुभव किया कि एक ही परीक्षा को जाँच करने वाले विभिन्न अध्यापको के स्तरो (Standards) मे वडा फर्क होता है जिससे विद्यार्थियो के प्रति बडा अन्याय होता था क्योकि अगर किसी कापी की जाँच "क" करते तो उसमे परीक्षार्थी अच्छे नम्बर से पास होता और अगर वही कापी "ख" को देखने के लिए मिलती तो वह विद्यार्थी फेल हो जाता। यही नही कभी-कभी तो ऐसा भी देखा गया कि अगर कापी को सुबह के समय "क" ने देखा, जब उनका दिमाग ताज़ा होता, तो वह विद्यार्थी पास हो जाता और अगर वे उसी कापी को शाम को थके होने पर देखते तो वह फेल हो जाता। इसलिए ऐसे पर्चों मे, जिनका उत्तर पहले ही निर्धारित कर दिया जाता है उनके स्तर में ज्यादा फर्क पडने की सम्भावना नही रहती, चाहे उस कापी को कोई भी किसी समय देखे। उपरोक्त उदाहरण में प्रस्तुत किए गये प्रश्न १ का उत्तर हमेशा (३) ही होगा।

फिर भी इससे समस्या हल होने की जगह एक कदम पीछे ही चली गयी है। पहले समस्या यह थी कि "क", "ख" और थके होने पर "ख" महाशय विभिन्न स्तरो पर कापियो मे नम्बर दिया करते थे लेकिन इस स्थिति मे, परीक्षा पत्र तैयार करते समय "क", "ख" और "अगले वर्ष 'ख' महाशय" किसी और ही स्तर पर काम करते हैं। दो विश्व महायुद्धो के बीच के अर्से मे ससार का वाणिज्य जैसे महत्त्वपूर्ण विपयो की परीक्षा लेते समय उनमे से केवल पचास प्रश्न चुन लेना असम्भव है जिनका विद्यार्थियो

से उत्तर लिखवा कर इस बात का पता लगाया जा सके कि क्या विद्यार्थियो को उन विषयो की उपयुक्त जानकारी है या नही। "क" और "ख" के लिए ऐसे प्रश्न चुनना कठिन काम है जो महत्त्वपूर्ण भी हो और साथ-साथ कठिन भी। ऐसा उस समय करना तो और भी ज्यादा कठिन हो जाता है जब उस विषय का क्षेत्र विस्तृत हो।

हमसे ऐसा कहा जाता है कि अगर जीवन के अन्य क्षेत्रो की तरह शिक्षा का भी यन्त्रीकरण (Mechanisation) कर दिया गया तो उसका स्वर्ण-युग आ जायेगा। इस सम्बन्ध मे हम अमेरिका के कार्नेज फाउन्डेशन (Carnegie Foundation) की शिक्षा के विकास के विषय पर प्रस्तुत २८वी विज्ञप्ति (बुलेटिन) का एक अश यहाँ दुहराते हैं— "The items in a new type test .can eliminate from instruction the attempts to guess at or to emphasise or gamble on examinable topics" अगर यह बात सच्ची हो पाती तो कितना अच्छा होता! एक बार विद्यार्थियो को कुछ तारीखें और फार्मूले याद करने के लिए दिये जाते हैं। अब अगर आप यह बात याद कर लें कि जस्टिनियन का शासन सन् ५२७ से लेकर सन् ५६५ तक था या व्याकरण का अमुक नियम किसी तरह के सही शब्दो पर लागू होता है तो आपको यह जरूर विश्वास होगा कि ये तथ्य आपसे दुबारा पूछे जायेगे। इस तरह कोई बुद्धिमान अध्यापक शीघ्र ही यह जान जायेगा कि "पूछे जाने लायक" विषय और प्रश्न कौन-कौन से हैं। क्या इसमे कोई परिवर्तन हुआ है? नही! किसी "नये तरीके" के पाँच-छ इम्तहानो को चलाकर और समझकर, हरेक बुद्धिमान अध्यापक यह जान जायगा और सबसे बुद्धिमान विद्यार्थी भी यह समझ जायेगे कि किसी विषय के किसी खास अग के बारे मे पचास "परीक्षोपयोगी" बातें हो सकती हैं। उन्हे पूरा विश्वास होगा कि इन पचास में से कम से कम पैंतीस जरूर पूछे जायेंगे और ये ही सवाल बार-बार पूछे जायेंगे अन्यथा उस परीक्षा को बुरा समझा जायेगा। ऐसे ढग के इम्तहानो मे कम से कम हरेक तीन साल के बाद आप यह पूछेंगे कि महात्मा पीटर एक किसान थे या मछुआ। अगर आपने ऐसा न किया तो आपका व्यवहार टाइबेरियस नामक सम्राट् जैसा होगा।

कठिन विषयो या वैसे विषय, जिन का गहरा अध्ययन किया गया हो उनकी परीक्षा लेने के लिए परीक्षा का वैसा कोई ढग निकालना असम्भव है। ऐसे प्रश्न जैसे "नेपोलियन कान्टिनेन्टल पालिसी की क्या कमजोरियाँ थी?" या "बेलीनी (Bellini's) ने आपेरे का महत्त्व बताओ" के बीसियो उत्तर हो सकते हैं और अगर वैसे प्रश्नो के ठीक उत्तर निर्धारित कर दिए जायें तो वे प्रश्न इतने सहज बन जायेंगे कि वे विषय बिल्कुल निर्जीव बन जायेंगे। फिर इस समस्या का हल क्या है? फिर अध्यापक अपनी व्यक्तिगत रुचियों और अपेक्षा को बीच मे लाये बिना कैसे निष्पक्ष भाव से कापियो मे नम्बर दे सकते हैं?

कापियाँ जाँच करने का सबसे उत्तम ढग यह होगा कि एक कमेटी जाँच करने के लिए जाय। अगर दो विशेषज्ञ एक ही कापी को बारी-बारी से पढ़ें तो उस कापी का देखने वाला पहला विशेषज्ञ यह समझ रहे कि दूसरे विशेषज्ञ को भी वह कापी देखनी है, तब

कापी को ज्यादा सावधानी से देखेगा और अपनी मनमानी कम करेगा। इसी तरह वे जब अपने-अपने विचारानुसार उस पर नम्बर देगे उस समय कापी पर अतिम रूप से नम्बर लिखने से पहले वे विचार विनिमय करेंगे। इससे विद्यार्थी को जो नम्बर मिलेंगे वे विश्वस्त रूप से ज्यादा निष्पक्ष होगे। उन दो के अलावा एक तीसरा विशेषज्ञ और होना चाहिए जो उनमे मतभेद होने पर काम करे। जिस सबसे ज्यादा गम्भीर परीक्षा मे मैंने भाग लिया है उसमे कापी देखने वाले बोर्ड में पाँच सदस्य थे। कोई भी ऐसी कापी नही होती जिसे कम से कम दो आदमी नही पढते हो। ऐसे सभी पर्चों को, जिस पर सदेह हो या सभी सदेहजनक विद्यार्थियो की कापियो को तीन-चार विशेषज्ञ कई बार जाँच करते। जाँच समाप्त होने पर हमने यह महसूस किया कि हमने जो परीक्षाफल निकाले थे उनसे ज्यादा न्यायपूर्ण परीक्षा-फल शायद मनुष्य नही निकाल सकता।

लेकिन जब कोई अध्यापक अपने ही पर्चे की जाच कर रहा हो तो क्या उसके लिए यह सभव है कि वह बिल्कुल अवैयक्तिक (Impersonal) भाव से कापी में नम्बर दे ?

निश्चय ही ऐसा करना बडा कठिन है। "क" कोई व्यक्ति है जिसकी स्मरण-शक्ति तेज़ है लेकिन वह इतने भद्दे ढँग से लिखता है कि उसकी लिखावट को पढने मे घृणा होती है। 'ब' एक बुद्धिमान और रोचक विद्यार्थी है लेकिन वह अँग्रेजी लिखते समय अक्सर गलत हिज्जे लिखता है जैसे beleive, imagnation, hopless, rymth आदि। पर्चा करते-करते जब "स" के पैन की स्याही खत्म हो गयी थी तो उसने अपनी भोथी (Blunt) पेंसिल से ही पर्चा करना शुरू कर दिया जिस को पढते समय आप का सिर चकराने लगता है। 'द' महाशय एक लम्बे और पतले युवक हैं जो क्लास लगते समय अपने कधे के बल बैठे रहते हैं और शायद ही कभी आँखें उठाकर देखते हैं। उनकी शक्ल देखने पर ऐसा लगता है कि उन्हे नीद आ रही है। अब उसके जैसे विद्यार्थी का पर्चा सावधानी से "पढने लायक" हो सकता है ? लेकिन अध्यापको का यह कर्त्तव्य है कि वे विद्यार्थियो के दोष और उनके प्रति अपनी घृणा भावना को भुला कर उनके पर्चे की जाँच करते समय शान्तिपूर्वक, भावुकता को त्याग कर निष्पक्ष तर्क से काम लें।

कापियो को एक बार पढकर ही ऐसा करना कठिन है। इसलिए सभी इम्तहान की कापियो को कम से कम दो बार पढा जाना चाहिए और दोनो पढाई एक दिन बीच देकर की जानी चाहिए। विद्यार्थियो के व्यक्तित्व को भुला देना भी बडा कठिन होता है। इसलिए अगर सभव हो तो, जिस पन्ने पर विद्यार्थियो का नाम लिखा हो उसको मोड देना चाहिए और पर्चे को किसी अनिश्चित ढग से क्रमबद्ध कर देना चाहिए इस तरह नही कि अगर आपने किसी कापी पर "क" लिखा है तो उसके बाद वाली कापी पर निश्चित रूप से "ख" लिखा जाय। किसी पूरे पर्चे को पढकर उसके व्यक्तित्व का पूरा अनुमान लगा लेना कठिन है। इसलिए कापियो की तादाद पर नम्बर लगाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि कापी को कई हिस्सो में बाँट दिया जाय, हरेक सवाल अलग-अलग पढा जाय, और उसी के मुताबिक अलग-अलग नम्बर दिये जायें और तब सबो का योग निकाला

जाय। भले ही यह तरीका बहुत ही पेचीदा है और इसमे ज्यादा मेहनत लगती है। इस तरह मान लीजिये "क" नामक विद्यार्थी की कापी आप देखते हैं। उसके सभी प्रश्नो को एक ही बार न देखें। उसके किसी प्रश्न को पहले पढे, नम्बर डाले फिर "ब" नामक विद्यार्थी की कापी के उसी प्रश्न को देखे और योग्यतानुसार नम्बर डाले। विभिन्न कापियो मे एक ही प्रश्न को पढने का काम कठिन होता है। लेकिन इससे आपका एक उद्देश्य पूरा हो जाता है। अगर "स" नामक विद्यार्थी किसी प्रश्न का जवाब ज्यादा अच्छा लिखता है तो उसको "द" से ज्यादा नम्बर मिलेंगे। अगर आप उनके उत्तरो को एक साथ पढ़ेंगे तो उनकी तुलना से आपको न्यायोचित नम्बर देने मे सुविधा होगी।

मान लीजिये कि किसी पर्चे मे पांच प्रश्न हैं। अपने काम को शुरू करने से पहले आप उसे पढें और वैसे तथ्य नोट कर लें जो उन प्रश्नो के उत्तर मे जरूरी तौर पर लिखे जाने चाहिएँ। वे तथ्य भी नोट करे जो उन प्रश्नो के उत्तर मे अप्रधान (Secondary) हैं और जिनके बारे मे आप यह सोचते हैं कि उन तथ्यो का उन प्रश्नो के उत्तर मे होना अनिवार्य है। कोई विद्यार्थी शायद ही अपने उत्तरो मे उन सभी तथ्यो को लिख सकेगा। कुछ विद्यार्थी कुछ अलग ही विचार व्यक्त करेंगे जो सचमुच सराहनीय है। इसकी वजह से अध्यापक को उन पर्चो की दुबारा जांच करनी चाहिए। आपको कई ऐसी बाते भी मिलेंगी जिसको किसी विद्यार्थी ने नही लिखा है। अगर ऐसी बात है तो इसका मतलब यह है कि उस पाठ को पढाने मे आपने कसर रखी है। इसलिए अगले साल के लिए इस बात को आप नोट कर लें।

पर्चे के हरेक प्रश्न के लिए कुछ अधिक-से-अधिक ऐसे नम्बर रख ले जिससे उन सभी प्रश्नो के नम्बरो का योग १००, ५००, या १००० जैसे पूर्णांक हों जिनको जोड़ने मे आसानी हो। हो सकता है आपको कापियां एक बार देखने के बाद, उन अंको मे फेरबदल करना पडे। जब आप यह देखते हैं कि उन विभिन्न प्रश्नों का कितनी पूर्णता से उत्तर दिया गया है लेकिन अधिकांशत के नम्बर वही रह जायेंगे, तब आप एक 'मार्क शीट' (Mark sheet) तैयार करें जिसमे पांच कालम हों। कुल नम्बरो का योग लिखने के लिए एक अलग कालम हो, थोड़ी जगह विद्यार्थियो के बारे मे नोट लिखने के लिए और कभी-कभी अंको को अक्षरो मे लिखने के लिए भी एक कालम होना चाहिए। (किसी भी उत्तर को पढ़कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह उत्तम-से-उत्तम श्रेणी का है या दूसरी श्रेणी का और तदनुसार उस कापी पर उसकी अच्छाई के अनुसार II या I या "अ" या "ब" अपनी सहूलियत के लिए लिख लेना चाहिए जिससे सारी कापी का स्तर मालूम हो सके।) तब जैसे-जैसे परीक्षार्थियो के उत्तर पढ़ते जायें वैसे-वैसे "मार्क शीट" पर नम्बर उनके नाम के आगे लिखते जायें और बाद मे उनको जोड़ ले। इस तरह, आपको जो नतीजा हासिल होगा वह काफी प्रयोजनपूर्ण (Objective) होगा और कभी-कभी तो उसकी सफाई और दम (Emphasis) को देखकर आप हैरान होंगे। एक या दो दिन के बाद एक नई मार्क-शीट को लेकर ठीक इसी तरह फिर करें। जो नम्बर आपने पहली बार

दिये थे और जो अब दिये हैं दोनो की तुलना करें। किसी ऐसी कापी को दुबारा पढ़ें जिसके बारे मे आपको शक हो कि उसमे आपने नम्बर अनियमित (Unevenly) दे दिये हैं और दूसरी कापियो के उत्तरो से मिलाकर एक ठोस निर्णय पर पहुँचें। इस तरह सभी कापियो के नम्बर जोडकर उन कापियो को लौटा दें।

निश्चय ही कापी देखने का यह तरीका काफी तेज भी है और न्यायपूर्ण भी। ऐसा करने से आप किसी असतुष्ट परीक्षार्थी को या स्वय अपने को भी सतुष्ट कर सकते हैं कि नम्बर आपने ठीक दिये हैं और इससे परीक्षा को शिक्षाप्रधान करने के एक यत्र के रूप में बदला जा सकता है। अगर आप नैपोलियन की यूरोपीय नीति पर पूछे गये किसी सवाल के सही हल को बता सकते हैं तो यह शव परीक्षा कभी-कभी काफी उपयुक्त होती है। इसी सदर्भ में आप दूसरी कापियो से दो एक अच्छी टिप्पणियाँ पढकर सुना भी सकते हैं। ऐसा करते हुए कुछ बहुत ही हास्यास्पद जवाबो को पढकर सुनाने की भी इजाजत है, बशर्ते आप ऐसे जवाब लिखने वालो के नाम नही बताते। शेष विद्यार्थी वैसी बातो मे आनन्द लेंगे क्योकि उससे उनके आत्माभिमान और दभ की भावना को सहारा मिलता है। हरेक गलती पर छूटने वाले हँसी के ठहाके गलती करने वाले विद्यार्थी को शिक्षा देंगे और उनका नाम न बताकर आपने उन्हे जिस बदनामी से बचाया है उसके लिये वे आपके कृतज्ञ होगे। इस हास्यास्वादन के अतिरिक्त सारी क्लास को यह अनुभव होगा कि आपने निष्पक्ष न्याय करने का भरसक प्रयत्न किया है। इसका परिणाम यह होगा कि विद्यार्थी केवल परीक्षा के लिए ही नही वल्कि सचेष्ट विचार-विमर्श के लिये भी उस विषय को एक पात्र बनायेंगे।

रोज़-रोज लिखित परीक्षा लेना न तो बुद्धिसगत है और न सभव। हाँ, हर हफ्ते ऐसा करना काफी होता है। लेकिन आप को हर रोज यह पता लगा लेना चाहिए कि आप के विद्यार्थी ने प्रगति की है या नही। अध्यापक की तरह क्लास गतिहीन नही होता। चाहे वह आगे बढता है चाहे बिगडता है। अगर क्लास कुछ नही सीखे तो वह भूलने लगता है, अगर उसमे परिवर्तन न हो तो वह अस्थि-पजर रह जाता है इसलिए आप को हर समय क्लास को प्रोत्साहन और परिश्रम द्वारा आगे बढाते ही जाना चाहिए। पढाने का अर्थ ही है निरन्तर विस्तार और विकास।

विद्यार्थियो ने कितना विकास किया है यह मालूम करने का तरीका यह है कि पिछली बार मिलने के बाद क्लास ने जो अगला पाठ तैयार किया हो उनमें से प्रश्न किये जायें। शिक्षा के सभी दूसरे क्षेत्रो मे जो गलतियाँ की जाती हैं उन सबो को मिलाकर पढाई की जो हानि होती है उन सबो से ज्यादा हानि विद्यार्थियो से अनुपयुक्त प्रश्न पूछने से होती है। हमने कई लोगो को रेल अधिकारियो से ऐसी आवाज़ मे रेलगाडियो का समय पूछते सुना है जिसको सुनकर जी करता है कि उनकी पिटाई करें। हम सभी ऐसी औरतो के सम्पर्क में आते हैं जो अपने बारे मे उत्सुकता से भरे हुए सभी सवालो का ऐसी निर्दयता से उत्तर देती हैं मानो अपने हैटपीन (Hatpin) से मक्खियाँ मार रही हो। ये ढग अक्सर

वैसे अध्यापक अख्तियार करते हैं जो हतोत्साहित, सताये हुए (Harassed) और चिडचिडे स्वभाव के हो और इससे विद्यार्थी मे अक्सर स्वाभाविक रूप से वैरभाव और मन्दबुद्धि पैदा होती है।

क्लास में प्रश्न पूछने के वास्तव में दो कारण हैं। पहला तो यह जानने के लिए कि प्रत्येक विद्यार्थी ने अपना पाठ तैयार किया है या नही और दूसरा यह कि सामूहिक रूप से विद्यार्थी ने जिन प्रश्नो को समझने मे अपने को असमर्थ पाया है उनको उभारना है। इनमे से पहले द्वारा विद्यार्थी किसी चीज को सीखते है और दूसरे से उनके सीखने मे सहायता मिलती है। इनमे से दूसरा कही ज्यादा महत्त्वपूर्ण है लेकिन कभी-कभी लोग इसे बिल्कुल ही भूल जाते हैं। इसको क्यो भुलाया जाता है ? क्योंकि अध्यापक अक्सर यह समझने की कोशिश करते हैं कि जिस विषय को वे पढा रहे हैं वह बिल्कुल सहज है और कोई भी विद्यार्थी उसे बिना किसी सहायता के सीख सकता है और विद्यार्थियो का वह विषय न समझने का कारण निश्चय ही यह है कि वे सुस्त हैं। शायद अध्यापक कभी-कभी यह भी सोचते हैं कि चाहे वे उस विषय को कितना ही क्यो न समझाये, जितनी तैयारी क्लास के मेहनती विद्यार्थी ने की है, उससे ज्यादा अच्छी तैयारी, चाहे वे कितना भी क्यो न समझाएँ, होनी सभव नही है।

ये सब धारणाएँ गलत हैं। विद्यार्थियो के घर के काम (Home Work) को देखने से ज्यादा जरूरी यह होता है कि उनको पढाई के किसी नये क्षेत्र को समझाया जाय, ऐसा करना ज्यादा रचनात्मक होता है क्योकि उस से विद्यार्थियों को इस बात का पता लग जाता है कि नया अध्यापक सिर्फ उनकी गलती पकडने मे, उनको गलत साबित करने में, दिखाने मे और झूठ बोलने पर बाध्य करने मे ही उतारू रहता है। और यदि आप ऐसा करने लगते हैं तो वे भी इस से बचने और आप को चिढाने के रास्ते भी ढूंढ निकालते हैं। लेकिन अगर वे यह समझने लगे कि आप व्यक्तिगत कमजोरियो से कहीं ज्यादा अपने विषय की चिन्ता करते हैं और आप उनके ऊपर चौकीदार नही हैं जो यह चाहता है कि सारा काम तो दूसरे करें और श्रेय उनको मिले तो विद्यार्थी अपनी मेहनत और आपकी शिक्षा को एक सहकारी प्रयत्न के रूप में देखने लगेंगे और उनमे से कुछ जहां पहले से ज्यादा परिश्रम करने लगेंगे वहां बहुत से ऐसे विद्यार्थी होंगे जो पहले से काम पढाई करते होंगे।

इसलिए किसी नये पढे हुए पाठ पर विद्यार्थियों से हमेशा ऐसे प्रश्न किए जाने चाहिएँ जो सार्थक और रचनात्मक हों और जिनका उद्देश्य विद्यार्थियो की जानकारी को और सुदृढ बनाना हो, उनकी उलझनो के प्रति उनकी सावधानी को और भी अधिक जागरूक करना और वैसी समस्याओ को उभारना है जिन्हें वे मुश्किल समझते हैं। मान लीजिए उनको मध्यपूर्व के भूगोल और उसके साधनों से सम्बद्ध पाठ को तैयार करने के लिए कहा गया है जो भूगोल की पुस्तक (Geography Manual) के २८८ से ३०८ पृष्ठ में दिया गया है। पढा लिखा देने का आसान और सदा का ढंग है कि पुस्तक को खोलकर पाठ के उन उन पृष्ठों की प्रश्नोत्तरी (Cross-examination) की जाए और सत्तर-अस्सी भिन्न

वाले भागो मे बाँट लेना और फिर एक तरह से क्लास के सभी लडके-लडकियो से पुस्तक के हर पन्ने मे से कुछ वाक्य ज़बानी सुनाने के लिए कहे। बाकू (Baku) कहाँ है? इसके साधन क्या-क्या हैं? लाल सागर के मुख्य बन्दरगाह कौन-कौन हैं? बहरीन के मुख्य उत्पादनो के नाम बताओ? इस ढग की पढाई करने वाला एक मेहनती लडका शायद स्कूल छोडने के बीस वर्ष बाद भी लाल सागर के मुख्य बन्दरगाहो के नाम बता देगा और कोई लापरवाह विद्यार्थी उन नामो को अगली ही परीक्षा तक याद रक्खेगा, लेकिन उनमे से किसी को भी उस विचित्र और महत्त्वपूर्ण क्षेत्र की सच्ची जानकारी होगी या उनमे मे किसी मे शायद ही यह इच्छा होगी कि वे उनके बारे मे और आगे पढे और जानने की कोशिश करे।

वैसे पाठ को पढाने का अच्छा तरीका यह होगा कि अध्यापक यह मानकर कि क्लास ने पुस्तक मे बिखरे तथ्यो को समझाने की यथासभव कोशिश की है और तब उनका (क) अधिक नियमित (Coherent) और (ख) अधिक विस्तृत चित्र दिखाए। ऐसे छोटे-छोटे तथ्यो को याद रखना बच्चो के लिए कष्टदायी होता है जिनका न तो उनके जीवन से कोई सम्बन्ध ही हो या जिन्हे वे अपनी बडी योजनाओ मे ही प्रयोग मे ला सकते हैं। लेकिन यह कोई प्रयास नही। यह तो किसी सुन्दर चित्र को याद रखने की तरह आनन्ददायी होता है जो समृद्ध तो है लेकिन स्पष्ट भी है। विचार-विमर्श के लिए कोई एक विषय चुनकर ऐसा किया जा सकता है जिसमे तैयार की हुई काफी बाते आ जायेगी। लेकिन उन्हे एक नयी रोशनी मे लाना होगा। विषय (Topic) क्लास के बच्चो की उम्र पर निर्भर करता है।

जहाँ बारह वर्ष के करीब के बच्चे पढते हो वहाँ आप नकशे खीचकर और कभी-कभी उनमे गलतियाँ छोडकर या और कोई भूल करके उन बच्चो से उन्हे पूरा करने के लिए कह सकते हैं। इस बात का ध्यान रक्खे कि प्रश्नो के उत्तर देने वाले बच्चे क्लास के केवल छ सात बच्चे न हो। बारी-बारी सभी बच्चो से पूछे कि वे क्या कुछ बता सकते हैं। फिर भी चुप रहने वाले बच्चो को नीचा न दिखाये। उन्हे केवल शहरो या समुद्री-तटो को ही नकशे मे भरने के लिए न बुलायें बल्कि तेल की पाइप-लाइनो, मरुभूमियो, भग्नावशेष शहरो, नजेब मरुस्थल, नजरथ कुर्द और आर्मेनियन जैसी कठिन बातो को भी पूछें। सहायता पाकर वे ऐसा कर सकेंगे और जाकर अगले दिन और नकशे और चित्र ले आयेंगे।

किसी ऊँची कक्षा के लिए आप किसी और भी विस्तारपूर्ण नकशे का प्रयोग कर सकते हैं और उसके बारे मे बता सकते हैं। उदाहरण के लिए आप पहाडो और तटो की भौगोलिक रेखाओ को बताने के साथ-साथ (क) धार्मिक वर्ग जैसे मुसलमानो के लिए सफेद, यहूदियो के लिए पीला, ईसाइयो के लिए नीला और पारसियो के लिए लाल रग जैसा कि "अरेबियन नाइट्स" की कहानी मे मिलता है, (ख) भाषावार इलाके, जिसमे इन अलग-अलग लोगो की विभिन्न भाषाओ का परस्पर ज्ञान और प्रचलित बोलियो को दिखाया जा सके, (ग) जिसमे सम्पत्ति—तेल या मोती जैसे बहुमूल्य पदार्थों के

उत्पादन क्षेत्र तथा उनके अभाव के इलाको, लेबेनान जैसे ऊँचे रहन-सहन के स्तर वाले इलाके आदि रंगे हुए टुकडो मे दिखाये गये हो। ऐसा करते समय हमेशा ऐसे विचारो को चुनें जो भूगोल के बारे मे पहली पढाई हुई बातो के अनुसार हो और फिर भी आपके विद्यार्थियो के मस्तिष्क को विकसित करते रहे।

स्नातक परीक्षा से पूर्व के विद्यार्थियो की क्लास को पढाते हुए कालेजो मे और भी भारी-भारी समस्याओं से अवगत कराया जा सकता है जैसे आप उन्हे किसी सम्पूर्ण इलाके के आर्थिक विकास के लिए ऐसी पचास साला योजना बनाने को कह सकते हैं जो संयुक्त-राष्ट्र के तत्वावधान मे आयोजित की गयी हो और जनशक्ति, वित्त और प्रशासन के लिए जहाँ तक सम्भव हो सके स्थानिक सहायता पर ही आश्रित हो। इस योजना के मुख्य उद्देश्य क्या हो ? उसके बीच मे आने वाली कठिनाइयो को कैसे सुलझाया जाय, उस योजना को लागू करने मे किस तरह के विरोध होगे और उन्हे किस तरह दूर किया जायेगा, इन सब बातो के आदर्शवादी विचार-विनिमय के समय आप दो या तीन विश्व-राष्ट्रो की मध्यपूर्व में लडाई की नीति पर विचार करने मे एकाध घंटे और लगा सकते हैं। युद्ध मे विध्वंस और आक्रमण के लिए उनके मुख्य लक्ष्य क्या होंगे ? इज़रायल, मिस्र और ईरान का वहाँ क्या हाथ होगा, इन बातो पर दो घंटे तक अच्छी तरह गौर करने और बीच-बीच मे क्लास के लिए बनाये गये नक्शो का हवाला देते रहना शीघ्र ही उनके मस्तिष्क में तैयार की हुई सारी बातो को साथ-साथ ले आयगा। जो बाते लडके आधी भुला चुके है उन्हे यह फिर से याद करा देगा और भूत और भविष्य दोनो की दृष्टि से पूरे विषय को समन्वित करा देगा।

यदि किसी नक्शे के सहारे विचार न भी किया जाय तो भी हमेशा ब्लैक बोर्ड का प्रयोग करना श्रेयस्कर होता है। क्लास मे किसी विषय को समझाते हुए सबसे प्रमुख समस्या अपने तर्क को संगठित ढंग से पेश करने की होती है अर्थात् यह निश्चित करने की होती है कि उनका कोई निष्कर्ष निकले या कम से कम वह विषय स्पष्टतर हो जाय और विद्यार्थियो के मस्तिष्क चिडियो को फुदकने की तरह एक ही बार अनेक दिशाओ मे उडने लगें। इस समस्या को मार्शल फोश (Foch) के ढंग को काम मे लाकर बडी आसानी से सुलझाया जा सकता है। सेनाधिपतियो की सभाओ मे जब सेना के विभिन्न [illegible] के और विभिन्न मित्रराष्ट्रो के प्रतिनिधि एकत्र होते और फौजी नक्शो से ढके हुए सारी मेजो पर घंटो तक सिर खपाने के बाद भी जब किसी निष्कर्ष के नजदीक आते नजर नहीं आते तब मार्शल फोश एक बडा कागज लेकर सब से ऊपर लिखते—

समस्या क्या है ?

कुछ ही क्षणो मे गोष्ठी निरुत्तर पडती। [illegible] के बारे में [illegible], [illegible] साथ मिली होगी लेकिन वह भी काफी आगे [illegible] सेना का [illegible] नही। मन मे ज्यादा [illegible] पश्चिम की ओर [illegible] थी। [illegible] हुई। [illegible]

ग्रौर प्राथमिकताग्रो को तय किया जा सकता था। इस तरह जो समस्या कभी धुंधली ग्रौर कठिन मालूम पडती थी ग्रासान वन गयी। ज्यो ही उनकी सीमाग्रो को नियत किया गया ग्रौर महत्त्व सुस्पष्ट हुए।

ग्रत हरेक गोष्ठी मे विषय को साफ-साफ ग्रौर इस तरह विद्यार्थियो के सामने रक्खा जाना चाहिए कि वे उनकी ग्राँखो के सामने से चूकने न पाये। समस्या क्या है, लिख दें। क्लास के विभिन्न विद्यार्थी जो भी ग्रधूरे उत्तर देते हैं उन्हे भी लिख दें। यदि ग्राप उचित समझे तो उनके उत्तर सशोधित कर दें या उनकी भाषा वदलकर लिख डालें। इस वात मे सावधानी वरते कि समस्या ग्रौर उसके समाधान स्पष्ट ग्रौर वुद्धियुक्त विधि से रक्खे जाये जैसा कि एक सहज वनाया हुग्रा उदाहरण नीचे दिया गया है—

हैमलेट राजा को क्यो नही मारता ?

प्रत्याशित उत्तर (१)
ग्रापत्ति या परिवर्तन
(२)
ग्रापत्ति या परिवर्तन
(३)
ग्रापत्ति या परिवर्तन

निष्कर्ष (क) .
(ख) . .

इस तरह के विचार-विनिमय मे, विद्यार्थी जो वाते पढते ग्राये हैं उनका वार-वार प्रसग ग्राता रहता है ग्रौर इसे इस तरह से सगठित किया जाता है कि क्लास के विद्यार्थी ग्रधिक से ग्रधिक सख्या में उनके उत्तर ग्रौर सुझाव दे सकें, न केवल किसी विषय विशेष मे उनके ज्ञान को वढाता है वल्कि उन्हे ग्रपने विचारो को सयोजित करने की ग्रमूल्य शिक्षा भी देता है। वे शीघ्र ही दृष्टान्तो के सहारे सीखने लग जाते हैं। ग्रपनी ग्रर्धचेतनावस्था मे ग्रपनी रचनाग्रो को सयोजित करने ग्रौर ग्रपने काम को भी उसी तरह के बौद्धिक ढाँचो के ग्राधार पर वनाने लग जाते हैं। इस तरह वे याद करने ग्रौर रचनात्मक चितन के वीच की खाई को पार कर सकते हैं।

इस तरह की क्लास में बिना प्रतिद्वन्द्विता की भावना लाये कार्य चलाना कठिन होता है। यदि ग्रध्यापक इस पर जोर न भी दे फिर भी विद्यार्थी इसका ग्रनुभव करते हैं। सुस्त विद्यार्थी जब वैसे-वैसे सहज प्रश्नो का उत्तर नही दे पाते जिनको दूसरे वता देते हैं तो उन्हे वडी ग्रात्मग्लानि होती है। सुस्त परन्तु परिश्रमी विद्यार्थी को ग्रगर प्रोत्साहित किया जाय तो वे वैसे विद्यार्थियो से टक्कर ले सकते हैं जो प्रतिभाशाली परन्तु दिखावटी होते हैं। प्रतियोगिता चलते रहने से क्लास ऐसे विद्यार्थियो का समूह वनने से बच जाती है जिसमे विद्यार्थियो का कोई व्यक्तित्व न हो वल्कि उससे क्लास में जीवन की विविधता ग्रा जाती है।

पढाने के काम मे कहाँ तक परीक्षा की भावना (Instinct) का उपयोग किया जाना चाहिए ? क्या इस पर इसलिए बल दिया जाना चाहिए जिसमे हर हफ्ते विद्यार्थियो को इनाम या दड दिया जाय या उनकी प्रशसा या अपमान हो ? क्या उसकी अवहेलना की जानी चाहिए ? या क्या अध्यापक को परीक्षा को घटाने या जहाँ तक हो सके पूर्णतया खत्म ही कर देने की कोशिश करनी चाहिए ?

अलग-अलग देशो मे परीक्षा का भी नियम भिन्न-भिन्न होता है। कुछ देशो मे स्कूल के काम मे प्रतियोगिता करना एक लबे अर्से से चली आ रही परम्परा भी हो गयी है। दूसरे देशो मे, जहाँ तक हो सके इसके कम करने की कोशिश की जाती है और उसको बिल्कुल समाप्त कर देना अधिक अच्छा समझते हैं। समयानुसार, अलग-अलग भूभागो मे इसका महत्त्व भी अलग-अलग है। फिर भी इसके बारे मे कुछ सामान्य विचार प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

सबसे पहले तो यह कि प्रतियोगिता की भावना बच्चो का एक स्वाभाविक गुण है। कभी, जब वे अकेले हो तो जरा आप उनकी आपस मे होने वाली बाते सुने कि किस तरह वे एक-दूसरे को नीचा दिखाते और अपनी बेहद शान (Outboasting) मारते हैं। वे जितने खेल खेलते हैं या जितने स्टन्ट (Stunts) का आनन्द लेते हैं उन सबो को आप देखें तो आपको मालूम होगा कि सहयोग और प्रतियोगिता, मिल-जुल कर काम करने और परस्पर विरोध करने की भावना, दोनो उनमे शामिल होगी। आप बडो को ही ले जो न केवल व्यापार या राजनीति मे ही जबर्दस्त प्रतियोगिता की भावना दिखाते हैं बल्कि वे तो व्यक्तिगत दिखावे मे जैसे मकान, मेज, कुर्सी, वस्त्र, मोटर गाडी आदि और अन्य दूसरी चीजो मे भी यह भावना दिखाते हैं, अपने प्रचार के लिए उत्कण्ठा और अनगिनत खेल-तमाशो मे भी इस भावना का प्रदर्शन करते हैं जिन पर वे अपना कितना समय और धन व्यय करते हैं। (यह बात बहुत ही रोचक जान पडती है कि बोलशेविक ने, जो प्राय स्वतन्त्र प्रजातन्त्रो मे "घातक प्रतिद्वन्द्व की भावना" पर आश्रित बताकर उनकी आलोचना करते हैं, स्वय इस भावना के महत्त्व को और इसके मौजूद होने की बात को स्वीकार किया है। उन्होंने रूस मे स्तारवानोव और जर्मनी मे हेनेके (Hennecke) जैसे कामगरो को विशेष उपहार देते हैं जो औसत से अधिक पैदा करते हैं और वे स्वभावत एक फैक्टरी या कारखाने को दूसरो के विरुद्ध "समाजवादी प्रतिद्वन्द्व" मे लगा देते हैं जिससे दोनो का उत्पादन बढे।) प्रगट है, कि ऐसी मजबूत भावना को दूर नहीं किया जा सकता इसलिए शिक्षा मे इसको रचनात्मक ढग से प्रयोग करना चाहिए।

यह केवल स्वाभाविक ही नहीं बल्कि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भी है। बच्चा [illegible] और धीरे-धीरे बढना नहीं बढने के बराबर ही होता है। क्योंकि आप यह नहीं [illegible] कि आप क्या हैं और न यही कि आप क्या बनना चाहते हैं। [illegible] हो कि आप क्या करना या क्या होना चाहते हैं। इसलिए दूसरे से [illegible]

अपने को बनाने लगते हैं। आगे चलकर यह विभिन्नता गुणात्मक हो जायेगी लेकिन शुरू शुरू में केवल थोडा बहुत ही फर्क होता है। आप "क" से ज्यादा दौड सकते हैं। "ख" से ज्यादा ऊँचा फाँद सकते हैं। "ग" को आप गोता लगाने मे हरा सकते हैं यद्यपि वह आपसे तेज़ तैर लेता है। "प" नामक व्यक्ति दूसरे सबो से ज्यादा अच्छा व्यग-चित्र बना सकता है। "फ" भूत-प्रेतो की अच्छी-से-अच्छी कहानी सुना सकता है। "ब" कविवरो के बारे मे हास्यपूर्ण कविताएँ बनाता है। स्कूल के बाहर प्रतिद्वन्द्विता की भावना से अनेक अच्छे और बुरे गुणो के पनपने का मौका मिलता है जैसे उत्साह, प्रतिज्ञा, लगन, स्वार्थ, द्वेष और गुप्त रखने की भावना। इसलिए स्कूल के भीतर इसका उपयोग करना चाहिए और इसे नियन्त्रित रखना चाहिए। इसे सावधानी से और सबसे उपयुक्त अवसर पर प्रयोग करना चाहिए जिससे अच्छे गुण उभरें और चाव से पढने की भावना को प्रोत्साहन मिले। और यदि सम्भव हो सके तो इसमें कडवापन आने से पहले ही रोक देना चाहिए। इसका नतीजा निश्चय ही चिंताजनक होगा अगर स्कूल को गणित या फुटबाल में हराकर कप जीतने के लिए प्रबल दुराग्रह की भावना से प्रेरित हो। मुझे याद है कि किसी फ्रेन्च कालेज से ऑक्सफोर्ड आने वाले किसी सज्जन ने मुझसे पूछा था कि परीक्षा के बाद आत्महत्या करने वालो की औसत सख्या क्या है? और मैं सोच नही सकता कि मैं उनके प्रश्न को सुनकर या उस प्रश्न के उत्तर को सुनकर दोनो मे से किस पर ज्यादा आश्चर्य चकित हुआ।

पश्चिमी देशो के सबसे सुलझे हुए शिक्षण के ढग (Techniques) जिसको जेसुइट्स (Jesuits) मतावलबियो ने सोलहवी और सत्रहवी सदियो मे चलाया था (Technique) मे भी प्रतियोगिता की भावना को बहुत ही प्रबल और विविध रूप से उपयोग मे लाया गया है। वे इसका प्रयोग बच्चो को पढने के लिए बाध्य करने की जगह उन विद्यार्थियो में ही छिपी हुई शक्ति को उभार कर उनकी पढाई मे सहायता करने के लिए करते थे। वे क्लास के सबसे तेज़ विद्यार्थियो को दिमागी काम मे एक दूसरे को ललकारने के लिए इस तरह प्रेरित करते जिसकी होड को देख कर आजकल हम ताज्जुब मे पड जायेंगे। कोई तेज़ विद्यार्थी (Top-notch) किसी कविता के एक पन्ने को ही एक बार पढकर ज़बानी सुनाने के लिए आगे आता तो कोई विद्यार्थी कविता के दो पन्ने ज़बानी सुनाने को प्रस्तुत होता। (ये जेसुइट अध्यापक स्मरण शक्ति के विकास पर सबसे ज्यादा बल देते थे। यहाँ तक कि विद्यार्थियो को वे जो सजा देते वे भी ऐसे ढग से निर्धारित की जाती जिससे सुस्त और देर से काम करने वाले विद्यार्थी को भी कविता की सौ लाइनें ज़बानी याद करनी पडती या ऐसे ही दूसरे काम करने पडते थे।) कुछ चुने हुए विलक्षण प्रतिभा के विद्यार्थियो का एक ग्रुप दूसरे ग्रुप को किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर आयोजित वाद-विवाद में ललकारता। भाग लेने वाले विद्यार्थी प्रतिपक्षियो को पराजित करने के लिए हफ्तो उस वाद-विवाद के लिए तर्क और कहावतो को एकत्र करने और अपने भाषण देने में गुज़ार देते थे। यह सब काम वे अपने जेसुइट अध्यापको की देख-रेख में करते थे, जो

सारी बाते जानता था और जो हमेशा मुसकराता रहता और विद्यार्थियो को प्रोत्साहित करता रहता था। लेकिन शायद उन्होंने इसका अत्यन्त कर दिया था। फिर भी हमने ऐसा कभी नहीं सुना कि उनके इस अत्यन्त मे किसी विद्यार्थी का नरवस ब्रेकडाउन (Nervous Breakdown) हो गया। पढाई के इसी ढग के कौनिल (Corneille), मौलिए (Molière), देरकार्टस (Descartes), वाल्टेयर (Voltaire), बोर्दोलो (Bourdalouc) और तासो (Tasso) जैसे प्रख्यात विद्वान् पैदा किए। बुरे ढग की शिक्षा मे कभी भी अपूर्व विद्वान् (Geniuses) नही बनते।

इसलिए यह अध्यापक का कर्त्तव्य है कि अपने विद्यार्थियो की क्षमता को उभारने के लिए जितनी तरह से सम्भव हो प्रतिरोध सम्बन्धी भावना जगाये। साधारण "करो नही तो मारूँगा" (Carrot-and-stick) के सिद्धान्त सिवा गप्पो के और कही नहीं चल सकता।

कभी-कभी तो उनका पता लगाना भी बडा कठिन कार्य होता है। लेकिन जब वह काम हो जाय तो वह बडा महत्त्वपूर्ण बन जाता है। कई बार ऐसा देखा जाता है कि एक विद्यार्थी, जिसमें जन्मजात विलक्षण प्रतिभा है, क्लास मे अपने टक्कर के किसी दूसरे विद्यार्थी के होने पर अपना काम भद्दे ढग से करता है, उदास वृत्ति और जिद्दी स्वभाव बन जाता है, अपना सारा समय और अपने विचार को छोटी-छोटी बातो मे बिता देता है। लेकिन जब ऐसा कोई विद्यार्थी उसकी क्लास मे किसी दूसरे स्कूल या और कही बाहर से दाखिल हो जाता है, जो उसका प्रतिरोध कर सके तो पहला विद्यार्थी पढाई मे आनन्द का अनुभव करेगा और वह यह भी अनुभव करेगा कि उसके जीवन का कोई उद्देश्य भी है। ऐसी अवस्था मे और उन सभी अवस्थाओ मे, जिसमे विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थियो से आगे निकलने की प्रबल भावना का अनुभव करे, अध्यापक को निश्चय ही इस बात की निगरानी रखनी चाहिए कि कही प्रतियोगिता और आगे निकलने की स्वस्थ भावना, आक्रामक न बन जाय और आत्मग्लानि और घृणा मे न परिवर्तित हो जाय। ऐसा होने से बहुत पहले ही ऐसी प्रतियोगिता को दयापूर्ण परस्पर सहयोग की भावना मे बदल देना चाहिये।

यहाँ पर हम एक दूसरे महत्त्वपूर्ण उद्बोधक शक्ति की चर्चा करेंगे जिसको कुछ ही अध्यापक काम मे ला सकते हैं। लेकिन दुर्भाग्य से वे ऐसा नही करते। अपने ढग से इसका न तो अनुकरण ही किया जा सकता है न इसकी जगह कोई दूसरी चीज लाई जा सकती है। निश्चय ही यह ऐसी चीज नही जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती हो जैसा कि [illegible] हुए समर्थकों का विचार है। यहाँ तक कि [illegible] मान भी पता नहीं लगाया जा सकता। इसको कार्यान्वित करने मे अप्रत्याशित और विचित्र परिणाम निकल सकते हैं।

वैसे शिक्षा शास्त्री, जो वैज्ञानिक विधियो पर [illegible] करते हैं वे शायद ही इस [illegible] की चर्चा करते हैं क्योंकि यह मूक (Surd) है। किसी [illegible] [illegible] [illegible] और नयी योजना से इसको समन्वित नहीं किया जा सकता या किसी [illegible] [illegible]

अपने को बनाने लगते हैं। आगे चलकर यह विभिन्नता गुणात्मक हो जायेगी लेकिन शुरू शुरू में केवल थोडा बहुत ही फर्क होता है। आप "क" से ज्यादा दौड सकते हैं। "ख" से ज्यादा ऊँचा फाँद सकते हैं। "ग" को आप गोता लगाने मे हरा सकते हैं यद्यपि वह आपसे तेज़ तैर लेता है। "प" नामक व्यक्ति दूसरे सबो से ज्यादा अच्छा व्यग-चित्र बना सकता है। "फ" भूत-प्रेतो की अच्छी-से-अच्छी कहानी सुना सकता है। "ब" कविवरो के बारे मे हास्यपूर्ण कविताएँ बनाता है। स्कूल के बाहर प्रतिद्वन्द्विता की भावना से अनेक अच्छे और बुरे गुणो के पनपने का मौका मिलता है जैसे उत्साह, प्रतिज्ञा, लगन, स्वार्थ, द्वेष और गुप्त रखने की भावना। इसलिए स्कूल के भीतर इसका उपयोग करना चाहिए और इसे नियन्त्रित रखना चाहिए। इसे सावधानी से और सबसे उपयुक्त अवसर पर प्रयोग करना चाहिए जिससे अच्छे गुण उभरे और चाव से पढने की भावना को प्रोत्साहन मिले। और यदि सम्भव हो सके तो इसमें कडवापन आने से पहले ही रोक देना चाहिए। इसका नतीजा निश्चय ही चिंताजनक होगा अगर स्कूल को गणित या फुटबाल में हराकर कप जीतने के लिए प्रबल दुराग्रह की भावना से प्रेरित हो। मुझे याद है कि किसी फ्रेन्च कालेज से ऑक्सफोर्ड आने वाले किसी सज्जन ने मुझसे पूछा था कि परीक्षा के बाद आत्महत्या करने वालो की औसत सख्या क्या है ? और मैं सोच नही सकता कि मैं उनके प्रश्न को सुनकर या उस प्रश्न के उत्तर को सुनकर दोनो मे से किस पर ज्यादा आश्चर्य चकित हुआ।

पश्चिमी देशो के सबसे सुलझे हुए शिक्षण के ढग (Techniques) जिसको जेसुइट्स (Jesuits) मतावलबियो ने सोलहवी और सत्रहवी सदियो मे चलाया था (Technique) मे भी प्रतियोगिता की भावना को बहुत ही प्रबल और विविध रूप से उपयोग में लाया गया है। वे इसका प्रयोग बच्चो को पढने के लिए बाध्य करने की जगह उन विद्यार्थियो में ही छिपी हुई शक्ति को उभार कर उनकी पढाई मे सहायता करने के लिए करते थे। वे क्लास के सबसे तेज़ विद्यार्थियो को दिमागी काम में एक दूसरे को ललकारने के लिए इस तरह प्रेरित करते जिसकी होड को देख कर आजकल हम ताज्जुब मे पड जायेगे। कोई तेज़ विद्यार्थी (Top-notch) किसी कविता के एक पन्ने को ही एक बार पढकर ज़बानी सुनाने के लिए आगे आता तो कोई विद्यार्थी कविता के दो पन्ने ज़बानी सुनाने को प्रस्तुत होता। (ये जेसुइट अध्यापक स्मरण शक्ति के विकास पर सबसे ज्यादा बल देते थे। यहाँ तक कि विद्यार्थियो को वे जो सजा देते वे भी ऐसे ढग से निर्धारित की जाती जिससे सुस्त और देर से काम करने वाले विद्यार्थी को भी कविता की सौ लाइनें ज़बानी याद करनी पडती या ऐसे ही दूसरे काम करने पडते थे।) कुछ चुने हुए विलक्षण प्रतिभा के विद्यार्थियो का एक ग्रुप दूसरे ग्रुप को किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर आयोजित वाद-विवाद मे ललकारता। भाग लेने वाले विद्यार्थी प्रतिपक्षियो को पराजित करने के लिए हफ्तो उस वाद-विवाद के लिए तर्क और कहावतो को एकत्र करने और अपने भाषण देने में गुज़ार देते थे। यह सब काम वे अपने जेसुइट अध्यापको की देख-रेख में करते थे, जो

सारी बातें जानता था और जो हमेशा मुसकराता रहता और विद्यार्थियो को प्रोत्साहित करता रहता था। लेकिन शायद उन्होने इसका अत्यन्त कर दिया था। फिर भी हमने ऐसा कभी नही सुना कि उनके इस अत्यन्त से किसी विद्यार्थी का नरवस ब्रेकडाउन (Nervous Breakdown) हो गया। पढाई के इसी ढग के कौर्निल (Corneille), मौलिए (Molière), देस्कार्टस (Descartes), वाल्टेयर (Voltaire), बोर्दोलो (Bourdaloue) और तासो (Tasso) जैसे प्रख्यात विद्वान् पैदा किए। बुरे ढग की शिक्षा से कभी भी अपूर्व विद्वान् (Geniuses) नही बनते।

इसलिए यह अध्यापक का कर्त्तव्य है कि अपने विद्यार्थियो की क्षमता को उभारने के लिए जितनी तरह से सम्भव हो प्रतिरोध सम्बन्धी भावना जगाये। साधारण "करो नही तो मारूँगा" (Carrot-and-stick) के सिद्धान्त सिवा गप्पो के और कही नही चल सकता।

कभी-कभी तो उनका पता लगाना भी बडा कठिन कार्य होता है। लेकिन जब वह काम हो जाय तो वह बडा महत्त्वपूर्ण बन जाता है। कई बार ऐसा देखा जाता है कि एक विद्यार्थी, जिसमें जन्मजात विलक्षण प्रतिभा है, क्लास मे अपने टक्कर के किसी दूसरे विद्यार्थी के होने पर अपना काम भद्दे ढग से करता है, उदास वृत्ति और जिद्दी स्वभाव बन जाता है, अपना सारा समय और अपने विचार को छोटी-छोटी बातो मे बिता देता है। लेकिन जब ऐसा कोई विद्यार्थी उसकी क्लास मे किसी दूसरे स्कूल या और कही बाहर से दाखिल हो जाता है, जो उसका प्रतिरोध कर सके तो पहला विद्यार्थी पढाई मे आनन्द का अनुभव करेगा और वह यह भी अनुभव करेगा कि उसके जीवन का कोई उद्देश्य भी है। ऐसी अवस्था मे और उन सभी अवस्थाओ मे, जिसमें विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थियो से आगे निकलने की प्रबल भावना का अनुभव करे, अध्यापक को निश्चय ही इस बात की निगरानी रखनी चाहिए कि कही प्रतियोगिता और आगे निकलने की स्वस्थ भावना, आक्रामक न बन जाय और आत्मग्लानि और घृणा मे न परिवर्तित हो जाय। वैसा होने से बहुत पहले ही ऐसी प्रतियोगिता को दयापूर्ण परस्पर सहयोग की भावना में बदल देना चाहिये।

यहाँ पर हम एक दूसरे महत्त्वपूर्ण उद्बोधक शक्ति की चर्चा करेंगे जिसको कुछ ही अध्यापक काम मे ला सकते हैं। लेकिन दुर्भाग्य से वे ऐसा नही करते। अपने ढग से उसका न तो अनुकरण ही किया जा सकता है न इसकी जगह कोई दूसरी चीज़ लाई जा सकती है। निश्चय ही यह ऐसी चीज़ नही जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती हो जैसा कि इसके कुछ समर्थकों का विचार है। यहाँ तक कि अक्सर इसका मान भी पता नही लगाया जा सकता। इसको कार्यान्वित करने से अप्रत्याशित और विचित्र परिणाम निकल सकते हैं।

वैसे शिक्षा शास्त्री, जो वैज्ञानिक विधियो पर काम करते हैं वे शायद ही इस बात की चर्चा करते हैं क्योकि यह मूक (Surd) है। किसी केन्द्रीय ऑफिस द्वारा तैयार की गयी योजना से इसको समन्वित नही किया जा सकता या किसी मत्रालय द्वारा इसे नियत्रित

भी नही किया जा सकता। विश्लेषक इसका अध्ययन कर सकते हैं यद्यपि सम्भव है विश्लेषण के दौरान इसको हानि हो और इसमे सन्देह नही कि अच्छी तरह समझाया जा सकता। यह सबसे बढिया तब रहता है जब उसकी चर्चा बहुत कम की जाती है। इसकी शक्ति को सबसे ज्यादा महसूस करने वाले लोगो मे से कुछ लोग इसकी चर्चा कभी नही करते। वे यह भी नही जानते कि यह उन पर असर डालता है या हो सकता है कि सारी जिन्दगी इसको गलत (Denying) बताएँ। वैसे लोग, जो इसकी महत्ता का ढिंढोरा पीटते फिरते हैं वे इसकी सबसे निम्न श्रेणी मे आते हैं। जो लोग कभी-कभी इसके दायरे से बाहर रहते हैं वे इसको बिल्कुल तुच्छ समझ बैठते हैं, कभी इससे घृणा करते हैं, उसकी निन्दा करते हैं लेकिन कभी-कभी वे उसका आदर भी करते हैं। एक अध्यापक, जिसका इससे लगाव है वह इसका प्रत्यक्ष या परोक्ष (Overt) उपयोग भरसक नही करते। लेकिन जब वे अपने विद्यार्थियो को उसकी अनुभूति होते देखते होगे तो उनको सतोष होता होगा और वे कभी-कभी इसके किसी-न-किसी पहलू पर जोर देते होगे। इतना होने पर भी वे शायद ही इस बारे मे निश्चित हो सकते हैं कि वह किस तरह काम करता है।

यह शक्ति किसी स्कूल या कालेज की परम्परा है। किसी पुराने स्कूल मे, जहाँ बहुत बडे-बडे लोग बचपन मे पढते थे, जहाँ उनके नाम को स्मरण किया जाता है और जहाँ उनके अवशेषो (Relics) को सुरक्षित रखा जाता है जैसे कोई पेड, जिसके नीचे वे पढा करते थे, वह पत्थर जिसमे उनका नाम खुदा है, या सदियो पुरानी कोई यूनिवर्सिटी, उसके पुस्तकालय जिसकी पुस्तको को विख्यात विद्यार्थियो ने प्रयोग किया और जिन्होने अपने विद्यार्थी-जीवन के अन्तिम दिनो की कोई स्मृति वहाँ छोडी, पुस्तकालय का कोई कमरा जो उस निर्धन, अप्रसन्न और अत्यन्त महत्त्वाकाक्षी या अपेक्षाकृत विद्वतापूर्ण युवक से सम्बद्ध था, जिसमे ससार की कायापलट करने के लिए जाने से पहले एक दो साल तक वहाँ अपने जीवन की रचनात्मक उलझनो को सुलझाने मे बिताया था। उस मकान की दीवारो पर आज भी उन महापुरुषो के चित्र स्मृति रूप मे विद्यमान हैं जो नई पीढियो के नवयुवको को वहाँ आमन्त्रित करते हैं, उनको ललकारते हैं और फिर भी उन्हे सफलता का आश्वासन देते हैं। ऐसे स्कूलो और कालेजो का अलग आध्यात्मिक महत्त्व होता है जो किसी स्कूल या कालेज के भवन, उसके अध्यापक या वहाँ के विद्यार्थियो की किसी स्मरणीय घटना से कही ज्यादा महत्त्व रखता है। इससे जो भी विद्यार्थी उस सस्था के सम्पर्क मे आता है उसके चरित्र और मस्तिष्क के विकास की सबसे जबर्दस्त ताकत वहाँ की परम्परा होती है। वैसे विद्यार्थी, जिन्होने एक साधारण स्कूल में पढा है, जहाँ कोई विशिष्ट परम्परा न रही हो जैसा कि हममे से ज्यादातर लोगो ने किया है। और हम मे से वे जो अगर कालेज मे पढे तो वैसे कालेजो मे जो हाल ही में स्थापित हुए थे और जिनमें रचनात्मक स्मृतियो का स्पन्दन न हो और जो स्नातक (Graduate) करने के केवल कारखाना मात्र हो (जैसा कि हम मे से ज्यादातर लोगो ने किया) तो हम नवयुवको के दिमाग में शिक्षा, जीवन और महान बनने की दो सौ, चार सौ या छ सौ सालो से चली आ रही परम्परा

से जो अपार शक्ति और स्फूर्ति का सचारण होता है उसे शायद ही समझ सकते हैं। यह शिक्षा की एक परम्परा है, एक रचनात्मक प्रवाह है जो उनको सम्पन्न और परिपक्व बनाने की ओर प्रवाहित करता है और जो उनके मस्तिष्क की गतिशीलता को कुठित नही करता ।

इस प्रवाह का सूत्रपात तो मध्ययुग के बाद ही शुरू हो गया था जो उसी समय से विकसित होता रहा है । उसी समय ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रीज, पेरिस, सालामन्का (Salamanca), बोलोगा, क्राकोव (Cracow), प्राग और अन्य यूनिवर्सिटियो की स्थापना हुई । तभी एटन (Eton) और विन्चेस्टर (Winchester) के महान स्कूल खुले । निश्चय ही उस श्रोत वा उद्गम स्थान रोम और यूनान था, लेकिन यह अँधेरे युग (Dark ages) के अवशेषो और जगलो मे लगभग ग्यारहवी सदी तक छिपा रहा । तब रेनेशो (Renaissance) के उदय के साथ-साथ इसका प्रवाह भी प्रबल होता गया और अधिक कालेज खोले गये, और अधिक यूनिवर्सिटियाँ विकसित हुई और जो पुरानी थी उनको भी बढाया गया । सत्रहवी और अठारहवी सदियो मे यह प्रवाह और फैलता गया और उन्नसवी सदी तक यह बढकर बाढ का रूप धारण कर चुका था क्योकि यूनिवर्सिटी शिक्षा एक स्वप्न न रहकर लगभग सुलभ महत्त्व की चीज (Nearly realised potentiality) बन गया और हर नगर मे स्कूल, हर प्रान्त मे कालेज खुल गये और यूनिवर्सिटियाँ बढती चली गयी जिनके काम आगे चलकर समन्वय की बजाय प्रतियोगिता मे बदल गये । बहुत पुरानी सस्थाओ का तो कहना ही क्या है, अब उन स्कूलो और यूनिवर्सिटियो की सख्या बहुत है जिनकी आयु हार्वर्ड (१६३६) या हाले "Halle" (१६८३), चार्टर-हाउस (१६११) या बोस्टन पब्लिक लैटिन स्कूल (१६३५) से बहुत कम है । उन सस्थाओ ने बहुत से महान् व्यक्ति पैदा किए हैं । लदन और बर्लिन जैसी यूनिवर्सिटियाँ, जो हाल ही मे बनी हैं उनमें से कई मे अध्यात्मिक शक्तियो का सूत्रपात हुआ है जो पहले नही हो पाया था । साधारण सस्थाओ, स्कूल, कालेज और यूनिवर्सिटियो मे हमे सैनिक शिक्षा के सैंट कार (St Cyr,) वेस्ट पाइन्ट और सैन्ढर्सट जैसी प्रशिक्षण सस्थाओ, इसटिट्यूट फार एड्वान्सड स्टडीज (Institute for advanced studies), रोम और एथेन्स के शोध-केन्द्र, जेसुइट, क्वेकर और इस्लाम की धार्मिक शिक्षा सस्थाएँ और दूसरी कई सस्थाओ को भी शामिल कर लेना चाहिए, यद्यपि इनमे से कुछ, जो सबसे पुराने हैं, उनकी ख्याति अधिक नही है। उनमे से कुछ सस्थाएँ, जो नवीनतम हैं और जिनमे महत्त्वाकाक्षा पायी जाती है वे केवल दिखावा मात्र हैं । उनमे नीव नही हैं । लेकिन अगर हम उन लाखो लोगो की सूची बनायें जिन्होने पिछली सदी मे सभ्यता के विकास और उसके विस्तार मे योग दिया है तो हमे विश्वास है कि हमे यह मालूम होगा कि उनमे से कुछ लोगो (उदाहरण के लिए लिंकन, टाल्सटाय और पिकासो) को अनियमित और असतोषजनक शिक्षा मिली थी और कुछ ने अपने माँ-बाप और ट्यूटरो से बडी अच्छी शिक्षा पायी थी (जिनकी चर्चा हम आगे करेगे) उनमे अधिकाश लोग जैसे पास्चर (Pasteur)

ग्रौर रूजवेल्ट, निजशे (Nietzsche) ग्रौर बायरन साधारण स्कूल ग्रौर यूनिवर्सिटियो मे पढे थे जिनकी परम्पराग्रो ने उनको वैसा बनने मे सहायता पहुँचाई थी जैसा वे बने।

लेकिन यह परम्परा कैसे काम करती है ? किस तरह यह धारणा साधारण लडको ही मे से ग्रसाधारण ग्रादमी पैदा करती है ?

इस सवाल का जवाब मोटा-मोटा ही दिया जा सकता है ग्रौर इसमे निहित शक्ति की विवेचना (Analysis) करना ठीक न होगा जिसे उस परम्परा मे निकटतर योग देने वाले शायद ही बताते हैं। लेकिन हम उन चार पाँच रास्तो का पता पा सकते हैं जिनसे यह मस्तिष्क को विकसित करता है। उनका सम्बद्ध महत्त्व ग्रलग-ग्रलग व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न होगा ग्रौर कभी-कभी एक व्यक्ति के जीवन (Career) मे ही ग्रलग-ग्रलग समय मे बदलता रहता है।

"प्रोत्साहन" इनमे पहला है। बहुत से होनहार युवक नरवस (Nervous) होते हैं ग्रौर ग्रपने ग्राप मे विश्वास नही करते। ग्रपने निर्भय बहिर्मुखी प्रवृत्ति वाले मित्रो से कही ज्यादा नज़दीक से वे जीवन की समस्याग्रो की विशालता को देखते हैं ग्रौर वे ऐसा ग्रनुभव करते हैं कि उनका सामना करने की उनमे योग्यता नही। ग्रगर वे ग्रपने घर में रहते हैं या किसी छोटे स्थानिक स्कूल में काम करते हैं तो हो सकता है कि वे निराश हो जायें ग्रौर ग्रपने दिमाग से कोई काम न करें या ज्यादा से ज्यादा वे ग्रपने को उसी छोटे क्षेत्र तक ही सीमित रक्खेगें जिसमे वे कुछ कर सकते हो ग्रौर फिर भी ग्रपने को उसमे सुरक्षित ग्रनुभव करे। लेकिन जब वे किसी ऐसे स्कूल या कालेज मे जाते हैं जहाँ बडे-बडे ग्रादमी पैदा हुए तो वे समझते हैं कि यदि वे भी ग्रपने दिमाग को विस्तृत बनाये ग्रौर ग्रपनी क्षमताग्रो का सदुपयोग करें तो वे भी उन्ही की तरह ख्याति पा सकते हैं। परिस्थिति नही बदलती है। साधारणत, उन्होने ही ग्रपने ग्रापको सुधारा है—किसी नये पुस्तकालय मे पुस्तक पढना ग्रासान हो जाता है क्योकि उस पुस्तकालय मे ज्यादा ग्रच्छी रोशनी की व्यवस्था होती है ग्रौर उसके कमरे ज्यादा बडे होते हैं। पुराने जमाने में जो महान् व्यक्ति हुए हैं वे बहुत धनी नही थे, न उनके पास ज्यादा ग्रच्छे रहने के मकान थे, न ही उनके कोई बहुत ग्रधिक मित्र ही थे। वे भी ग्रपनी युवावस्था मे उतने ही 'भद्दे' लगते थे जितने ग्राज-कल का कोई सबसे ज्यादा भद्दा ग्रौर स्वचेत युवक लगता है। फिर भी उन्होने ग्रपने को दृढ चरित्र बनाया, महान् योजनाएँ बनायी, ग्रौर उनको कार्यान्वित किया। उन्होने नयी-नयी दवाग्रो की खोज की, देश के मत्री बने, ग्रपने युग के सर्वश्रेष्ठ नाटक लिखे, जलवायु के नियमो का पता लगाया, लडाईयाँ जीती ग्रौर सधि भी की। "जो ग्रादमी ने पहले किया है वह उसे फिर कर सकता है" यह एक ग्रच्छी कहावत है। लेकिन युवक ग्रक्सर इसमे उस समय तक विश्वास नही करते जब तक वे भी उसी जगह पर नही पहुँच जाते जहाँ महान् काम किए गये ग्रौर जब तक उनको वैसा होने के सबूत वहाँ नही मिल जाते हैं। परम्पराग्रो से भी "सभावनाग्रो का क्षेत्र" (Range of possibilities) मिलती हैं। ससार मे बहुत सी क्षमताएँ (Talent) व्यर्थ चली जाती हैं। कुछ हद तक इस बर्बादी

का कारण निरी अज्ञानता है । लोग यह भी नही जानते कि अपनी क्षमताओ का किस तरह उपयोग करें । अक्सर युवक अनिश्चित स्वभाव के होते हैं । वे दुनिया को नही जानते । वे अपने आपको भी नही जानते । वे अक्सर इस बात का भेद भूल जाते हैं कि वे क्या बनना चाहते हैं और वे क्या बन सकते हैं । वे किसी धधे को सिर्फ इसलिए स्वीकार या अस्वीकार कर देते हैं क्योकि उसे उनके पिताजी या भाई ने उनके लिए चुना है । एक कार्यकारी जीवन (Life-Work) के निर्माण के लिए सावधानी से भविष्य की ओर देखने की योग्यता उनमें शायद नही होती । एक अच्छे आदर्श को चुनने की जगह वे ऐसा आदर्श चुनेंगे जो दोषपूर्ण या अपर्याप्त हो जैसे किसी फिल्म अभिनेता, ऐतिहासिक पुरुप या अपने ही पाठ्य-पुस्तक मे दिये गये किसी व्यक्ति को चुनेगे ।

लेकिन वह विद्यार्थी, जो किसी पुराने स्कूल मे नाम लिखाता है अनजाने मे ही यह जान जाता है कि नेतृत्व कैसे लोग कर सकते हैं । वह आदरणीय और प्रसिद्ध लोगो के चित्र वहाँ देखता है । धीरे-धीरे उसके मन मे ख्याति पाने के तरीको की एक रूपरेखा तैयार हो जाती है । यह जरूरी नही कि यह रूपरेखा सम्मानित परम्पराओ के अनुसार ही हो । वह समझने लगता है कि आदमी के लिए काम करने के क्षेत्र ऊपर से हवा मे ही बैठकर नियत किए गये हैं और किसी ने उनकी पूरी तरह खोज नही की । वह यह भी सीख लेता है कि उन क्षेत्रो मे क्या आसान और क्या मुश्किल है, किन कामो मे जल्दी सफलता मिलती है और किन कामो मे नये साहसिको को अफ्रीका के भागो को खोज निकालने वालो की तरह दुनिया से दूर रहना पडता है । वह यह समझने लगता है कि कौन-कौन से काम अलग-अलग होते हैं और कौन-कौन से एक दूसरे से सम्वधित होते हैं भूतपूर्व विद्यार्थियो के जीवन पर गौर करके, कभी उनके वारे मे कहानियाँ सुनकर या स्वय उन्हे देखकर वे ज्यादा ठीक ढग से यह निश्चित करते हैं कि वे उनका अनुकरण करना चाहते हैं या उनके आदर्शों को ठुकरा देना चाहते हैं । राजनीतिक सफलता या कला मे निपुणता प्राप्त करने, पैसा कमाने, या लोकहित का काम करने, वगैर आत्म-समर्पण किए समाज मे मेल-जोल वढाने, शोध करने आदि के तरीको और वहुत से रहने के दूसरे तरीको को सीखता है और मिसालो मे उनकी सार्थकता की जाँच करता है ।

महान् शिक्षा सस्थाओ की सदस्यता से मन मे **आत्म-व्यवस्था** (Sense of order) की भावना आती है । इसको समझाना कठिन है और आसानी से इसका गलत मतलव लगाया जा सकता है । कहना न होगा कि जिन विद्यार्थियो ने गणमान्य स्कूलो या कालेजो मे शिक्षा पाई है वे हमेशा पिट्ठ (Blimp) हो जाते हैं और स्थापित व्यवस्था के प्रति रक्षक वनकर उसके गुण-अवगुण दोनो का वहादुरी के साथ समर्थन करते हैं । (वे अक्सर ऐसा करते हैं लेकिन दुनिया के अधिकतर लोग भी ऐसा ही करते हैं । चीन मे लेकर अरव तक, स्वीडन से लेकर चिली तक औसत आदमी सकुचित विचार के होते हैं । वे अपनी मान्यताओ से वहुत कम वदलते हैं ।) मेरे कहने का मतलव यह है कि इन जगहो के विद्यार्थियो के मन में यह वात विल्कुल वैठ गई है कि मनुष्य का जीवन सगठन पर निर्भर

करता है। राज्य, परिवार, कलाएँ, धर्म, वाणिज्य, वित्त, शिक्षा, विधि, भैषज, कृपि विविध प्रकार के उत्पादन, विज्ञान, निर्माण, जल सचार (Navigation), युद्ध, शान्ति और कूटनीति हमारे कार्य-जीवन के ये सभी अग बहुत ही सगठित हैं। उनका अवश्य नियोजन होना चाहिए। लम्बी अवधि की योजना के जानने वालो को यह काम जारी रखना चाहिए। बिना किसी तरह की नियमित प्रणाली के ये काम बेकार हो जाते हैं और केवल व्यक्तिगत स्वेच्छाचार ही रह जाते हैं। एक बहुत पुराना स्कूल स्वय इसका एक सफल दृष्टान्त है। उसने कुछ ऐसे लोगो को बनाया है जिन्होने मानव समाज मे अन्तर्निहित सगठन को कायम रक्खा है। इसलिए इसके स्नातक सकुचित विचार वाले हो सकते हैं या विद्रोही विचार के हो सकते हैं। समाज-सुधारक हो सकते हैं या सनकी दिमाग हो सकते हैं। लेकिन हमेशा उनको यह बात याद रहती है कि वे चाहे या नही चाहे, स्वय उनका जीवन मानव-सगठन का एक अग होने जा रहा है। तब वे उस सगठन को बदलने, बर्बाद कर देने, नये ढाँचे मे ढालने, धीरे-धीरे उसमे सुधार करने, या ज्यो का त्यो उसे जारी रखने का निश्चय करते हैं। लेकिन शायद ही वे ऐसा वर्ताव करते हैं जिससे यह म.लूम हो कि वे समाज मे हैं ही नही। शायद ही वे यह चाहते हैं कि उसे बर्बाद कर दें या उसके अस्तित्व को सदा के लिए मिटा दें। उदाहरण के लिए शैले (Shelley) को लीजिये। वह विद्रोही था और एटन में उसे दड दिया गया (लोग उसे अक्सर प्रतिभा का पर्यायवाची समझते हैं।) और ऑक्सफोर्ड से उसे निकाल दिया गया। फिर भी एटन और ऑक्सफोर्ड में जो शिक्षा और ज्ञान के प्रति अनुराग मिलता था उसने उसे बनाये रक्खा था। वह घोर क्रान्तिकारी था, नास्तिकता और व्यभिचार तथा अराजकतावादी क्रान्ति से मिलती-जुलती विचार-धारा का प्रचार करता था। लेकिन उसके दिमाग में एक नये देव-लोक और एक नये ससार का आदर्श जगमगा रहा था।

फिर भी साधारण स्कूलो मे व्यवस्था की इस भावना को लाना बडा कठिन होता है। हरेक पीढी अपने लिए ही जीवन बिताती मालूम पडती है। समय मानव-जीवन का एक आवश्यक अग है लेकिन इन लोगो को इसके अस्तित्व का ज्ञान शायद ही होता है। स्कूल का सगठन या वैसी शिक्षा या राजनीतिक पद्धति, जो स्कूलो के पीछे होती है, उसके ज्ञान उसके विद्यार्थियो के लिये कोई मतलब नही रखता। उन्हे ऐसा लगता है कि स्कूल उनके जीवन के लिए तैयार करने का साधन न होकर एक ऐसी कष्ट-साध्य व्यवस्था है जो उन्हे अपनी इच्छानुसार रहने नही देता। स्कूल जाना अधिक से अधिक एक 'नौकरी पाने' का रास्ता होता है। बुरा से बुरा लगने पर भी यह एक बधन-सा जान पडता है।

इस स्थिति पर पहुँचने से काफी पहले और साधारण स्कूलो से भी नीचे के स्तर पर ही विद्यार्थियो मे यह भावना सर्वव्याप्त हो जाती है कि स्कूल या समाज बदीगृह हैं या वे ऐसी व्यवस्था हैं जिनका उद्देश्य केवल दमन करना ही है। जैसे स्कूलो और कालेजो की हम चर्चा कर रहे हैं यह भावना उनके बिल्कुल विपरीत है। इस स्तर पर उन रूसी

शिक्षा-शास्त्रियो ने दल बनाकर सडक पर मारे-मारे फिरने वाले युवको को (पुस्तक के पृष्ठ २६-२७) पाया था। इसी स्तर पर अक्सर स्वाभाविक अपराधी पाये जाते हैं और वही किसी देश के सबसे दोषी और अज्ञानी लोग रहते हैं। साथ-साथ उनकी अत्यन्त दयनीय अवस्था होती है और उन्हे सहायता की बेहद आवश्यकता होती है।

ससार मे सच्चे अराजकतावादी वे लोग होते हैं जिन्हे इतने दिनो तक स्कूलो मे पढाया नही गया होता कि वे व्यवस्था की अनिवार्यता को समझ सके या उनकी पढाई इतनी बुरी तरह हुई होती है कि किसी भी व्यवस्था को अपने जीवन के लिए घातक समझते हैं। ये वे लोग होते हैं जिनका अपना कोई घर नही और जो किसी भी काम को अच्छी तरह नही कर सकते। या वे स्त्रियाँ होती हैं जिनको मालूम नही होता कि प्यार करने का अर्थ सन्तान उत्पत्ति होता है, यदि उनके बाल-बच्चे होते हैं तो उन्हे यह नही मालूम होता कि उनकी परवरिश कैसे करनी चाहिये या वे किसी मर्द से शादी तो कर लेती हैं लेकिन उन्हे इतना भी मालूम नही होता कि किसी दो कमरे वाले मकान मे किस तरह व्यवस्था की जाती है। इसी तरह के लोग जो बडे-बडे शहरो में चक्कर खाते फिरते हैं या गाँवो के दूषित वातावरण में जमे रहते हैं जो प्राय उन गदे गाँवो मे सडते रहते हैं, जहाँ वे बुरी तरह असतुष्ट होते हैं, जिनके चेहरे (तीस साल की उम्र के बाद) रोग और अन्तर्द्वन्द्व के मारे फूल जाते हैं, जो केवल उसी अविश्वसनीय प्रबल शक्ति के बूते पर जीवित हैं जिसमे दुखो को सहने की भारी क्षमता होती है, फिर भी उनका जीवन व्यर्थ है। वे मृतप्राय हैं। अधेरे युग (Dark Age) मे नीचे गिरे हुए समाज, गदी बस्तियो और पिछडे हुए गाँवो मे ये लोग होते हैं और वही फूलते-फलते हैं (जैसे ढहे मकान में कीडे-मकोडे रहते हैं।) शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यो में ऐसे लोगो के बाल-बच्चो को व्यवस्थित जीवन बिताने की शिक्षा देने मे हर सभव योग देना भी एक है। कोई भी स्कूल उनकी आध्यात्मिक अराजकता को समूल नष्ट करने मे कुछ काम कर सकता है। स्कूल जितना ही अच्छा होगा उसका असर भी उतना ही अच्छा होगा। पुराने स्कूल या यूनिवर्सिटी अपनी विशेष परम्पराओ द्वारा बडे-बडे सुधारक और क्रान्तिकारी व्यक्ति पैदा करते हैं लेकिन वे भी अराजक व्यक्ति पैदा नही करते। उनकी कोशिश अधिक सुन्दर ससार बनाने की ओर होती है।

आत्म-व्यवस्था (Sense of order) को परिभाषित करने का एक दूसरा तरीका, जैसा कि किसी प्रसिद्ध स्कूल या यूनिवर्सिटी अपने विद्यार्थियो को पैदा करने की कोशिश करते हैं, वह है उनको **जिम्मेदार** बनने की शिक्षा देना। वास्तव मे यदि सभी अपनी-अपनी चिंता करने लगें तो दुनिया मे जीना दूभर हो जाय। यहाँ तक कि यदि हम सिर्फ इतना ही करें कि दूसरो के मामलो मे दखल न दें या उनकी रोटी न छीने तो भी मानव-समाज धीरे-धीरे और पीडित होने पर भी आगे बढता ही जायेगा और उसका बढाव कम या ज्यादा निरतर होगा। लेकिन हमे ऐसे स्त्री पुरुष की आवश्यकता है जिनका व्यवसाय ही अपने

सहयोग्या की सहायता करना या ऐसी सस्थाओंका निर्देशन करना है जिनसे हम सब सुखी रह सकें। जैसे अस्पताल चलाना, रेडक्रास के लिए चन्दा इकट्ठा करना या वे लोग जो बिना पारिश्रमिक के ही सामाजिक सलाहकार और गदी वस्तियो की सफाई के अगुआ बनेंगे और वे जो अपनी समझ मे सबसे उत्तम राजनीतिक पार्टी के कर्मचारी होगे और अपने राष्ट्र की प्रगति के लिए कार्य करेंगे। ऐसे लोगो को पाना कठिन काम है। यहाँ तक कि ऐसा मर्द या औरत बनना भी बडा कठिन है। लोगो के ऐसा बन जाने के तीन कारण हैं, पहला धार्मिक, दूसरा उस समाज की परम्परा और तीसरा उस स्कूल या यूनिवर्सिटी की परम्परा जहाँ वे शिक्षा पाते हैं। वैसे स्त्री-पुरुष, जो जन-सेवा अपना लक्ष्य बनाते है, वैसे ही स्कूल और कालेजो मे बनते हैं जिनकी परम्पराओ से उनको प्रेरणा मिलती है। वह लडका, जो घर पर अपने परिवार वालो के साथ रहता है, एक ऐसे नये स्कूल मे पढता है जो धीरे-धीरे पौधे उगाने वाले बाग की तरह न होकर एक कारखाने की तरह है जहाँ वह दिन के छ घटे बिताता है और अपने काम करने और मित्रो से मिलने तथा आमोद-प्रमोद के लिए किसी दूसरे ही वातावरण में जाता है, निश्चय ही बडे होने पर झगडालू आत्मभिवादी बनने के लक्षण दिखायेगा। इसी प्रवृत्ति को ठीक करने के लिए बालचर सेना का बनाया जाना आवश्यक है, खासकर शहरो में। इसी तरह खेलो मे उनमे दलगत जिम्मेदारी की भावना पैदा की जा सकती है। वैसे छोटे नगरो मे जहाँ स्कूल सारे समाज का एक अग (Organ) है, वहाँ यह स्थिति पैदा नही होती। इस तरह के स्कूलो की सदस्यता से उनमे जिम्मेदारी की भावना नही आ सकती सिवा इसके कि विद्यार्थी यह अनुभव करें कि वे एक ही स्कूल मे रोज आते-जाते हैं। नये कालेज और यूनिवर्सिटियो मे भी यही दोष होते हैं। जब तक उन सस्था के शुरू हो जाने पर कुछ कुशल गणमान्य और आकर्षक योग्यता के अध्यापक नही आ जाते और जब तक उन सस्थाओ ने कुछ ऐसे विद्यार्थी पैदा नही कर दिये होते जिनका अनुसरण करना आने वाले विद्यार्थी अपने लिए गौरव की बात समझें तब तक वैसी सस्थाएँ केवल मशीन मात्र (Mechanically Conceived) रह जायेंगी जिनको स्वच्छ और व्यस्त होटल की तरह चलाया जा रहा हो। टेक्नीकल सस्थाएँ इस ढग पर कभी-कभी चलाई जा सकती हैं लेकिन सच्ची शिक्षा के लिए कुछ और बातें भी आवश्यक होनी चाहिएँ। शिक्षा मे शिक्षार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास आ जाता है चाहे विद्यार्थी इस बात को जानता हो और चाहता हो या नही। तब एक स्कूल या कालेज विद्यार्थी के मस्तिष्क को जितना परिपक्व बना सके और उसकी कसरत कराये वह निश्चय ही उन स्कूलो और कालेजो की अपेक्षा अच्छा है जो पढाई की हर घटी मे विद्यार्थियो तक सूचना पहुँचाने का काम करते हैं और चूंकि प्रत्येक सपूर्ण चरित्र मे जन-सेवा की भावना और उसकी क्षमता का भी स्थान है इसलिए जो स्कूल उस भावना को आसानी से और अनजाने मे ही विद्यार्थियो में अपनी परम्पराओ से पैदा कर देते हैं उन सस्थाओ को निश्चय ही ज्यादा महत्त्व दिया जाना चाहिए न कि उन स्कूलो को जो विद्यार्थियो को समाज के प्रति उनकी जिम्मेदारियाँ नही सिखाते या जो

वैसी भावनाओं की शिक्षा केवल उनके निर्धारित पाठ्य-क्रम के अनुसार ही देते हैं।

ये सब बाते कहने के बाद अवश्य ही मैं यह स्वीकार करता हूँ कि अब तक जितने व्यर्थ समय गवाने वालो और दुर्जन प्रवृत्ति के लोगो से मेरी भेंट हुई है उनमे से अधिकतर उन्ही स्कूलो और यूनिवर्सिटियो के विद्यार्थी थे जिनकी परम्पराएँ बडी पुरानी थी। मैं वैसे लोगो को आज भी देखता हूँ जो पुनीत नेकटाई लगाते हैं, बडी नजाकत से खडे होते हैं, जो ऐसी बातें बोलते हैं मानो उनकी वाणी में कई पीढियो की सबसे अच्छी बातो का प्रतिबिम्बन हो, जिनकी हँसी मे घमड का लेशमात्र नही है, जो बडे मिलनसार सज्जन की तरह व्यवहार करते हैं और जो हमेशा झूठ बोलते हैं। वे मनमौजी नही होते क्योकि वे तो पूर्वजो की उपजाति होते हैं। परम्पराओ की वे ठीक उसी तरह अभिव्यक्ति करते हैं जैसे कोई सच्चा सरकारी कर्मचारी करता है। कभी-कभी उनको देखना बडा आनन्ददायी मालूम पडता है यदि आप उनको ऐसा करने को उत्साहित न कर रहे हो। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि किस तरह वे उसी परम्परा मे से पैदा होते हैं जिसने सुधारक, दानवीर और अधिष्ठाताओ को जन्म दिया ? यह कैसे सम्भव हुआ ? हम इस समस्या पर आगे विचार करेंगे।

स्कूलो और कालेजो की परम्पराओ से जो पाँचवी शक्ति मिलती है वह तो प्रत्यक्ष ही है और हमको वही ले जाती है जहाँ से इस विचार का सूत्रपात होता है। यह शक्ति है ललकारना'। अगर आपके स्कूल मे कोई वैज्ञानिक न रहा हो तो आप खुद एक भौतिकी बनना चाहेगे लेकिन हो सकता है कि आप से उतनी मेहनत पार न लगे और आपके मन मे सैकडो सशय और रुकावटें पैदा हो। यदि किसी एक ही प्रयोगशाला में रायल सोसायटी के फेलो (Fallows of Royal Society) ने काम किया हो और वह भी एक ही अध्यापक के अधीन तो आपके पास प्रयत्क्ष उद्देश्य होंगे जिनको आप अपना लक्ष्य बना सकते हैं। यहाँ तक कि अगर आपको अपने काम मे असफलता भी मिलती है तो उससे भी हतोत्साहन की जगह आपको प्रोत्साहन ही मिलेगा। वे भी असफल हो सकते हैं। लेकिन निश्चय ही आपको दुबारा असफल नही होना चाहिए। आप काम किए जायें। यह कोई जरूरी नही कि आप भी किसी दूसरे व्यक्ति के ढग का ही अनुसरण किए जायें। उन सब लोगो की अपेक्षा आप स्वय अपना आदर्श बन सकते हैं। आप पहले उनकी बराबरी करें और बाद मे उनसे भी आगे बढें। आप काम किए जायें। उन्होने जो कुछ भी किया आप भी उसे कर सकते हैं बल्कि उससे भी ज्यादा हासिल कर सकते हैं।

इस मामले मे परम्परा मे उसी प्रवृत्ति की अभिव्यजना होती है जैसे कि एक ही काम को करने के लिए चार-पाँच चतुर बालको को कोई अध्यापक यह समझ कर लगा देता है कि अलग-अलग करने की अपेक्षा प्रतियोगिता की भावना से वे उसको कही ज्यादा अच्छे ढग से कर सकेंगे। भूत के साथ सघर्ष को ही प्रगति कहते हैं। ज्यो ही परम्परा के प्रति हमारा आदर सकुचित हो जाता है और हम समझने लगते है कि उनका अनुकरण करना ही हमारा कर्त्तव्य है त्यो ही वह मतप्राय और हमारे ऊपर बोझ की तरह बन जाती

है। जब तक परम्पराएँ हमे प्रबल, नियमित और विस्तृत रचनात्मक कार्य की तरह प्रेरित करती हैं उस समय तक वे स्वस्थ उद्बोधक (Stimulus) और कुशल मार्गदर्शक होती हैं।

सबसे साधारण किस्म का दड तो डाँट फटकार होती है जो अपराध करने के तुरन्त बाद विद्यार्थियो को मिलता है। यह ठीक उसी तरह दुखद नही होता जिस तरह कि यदि कोई बच्चा अपने कप को पटक देता है तो उसे झट से फटकार पड जाती है। इससे बुरी आदतें पडने के साथ ही खत्म भी हो जाती हैं जिससे अच्छी आदतो को प्रोत्साहन मिलता है। जैसे यदि बच्चे को तेज पत्थर मे ठोकर मारते समय ही डाँट पड जाय तो उसे तुरन्त यह मालूम हो जाता है कि तेज पत्थर मे ठोकर नही मारनी चाहिए।

सबसे बढिया सजा वह होती है जिसमे किसी गदे किए गये काम को दुबारा करने का दड दिया जाता है। यदि कोई लडकी सिलाई करने मे धागा उलझा देती है तो उसके लिए दड यही है कि वह उसको सुलझाये और सिलाई दुबारा करे। यदि किसी बालक का हिसाब बनाते समय गलत उत्तर आता है तो उसको वह सवाल उस समय तक बनाते रहने की सजा मिलनी चाहिए जब तक उसका सही उत्तर न निकल जाये। (लेकिन उन दोनो को वैसा करने मे थोडी सी मदद, राय और प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।) यह दड बडा महत्त्वपूर्ण होता है क्योकि वास्तव मे यही सच्चे जीवन के लिए तैयार होती है। लडके और लडकियाँ, दोनो को जीवन मे वैसे काम हजारो बार करने पडेंगे इसलिए यह काम उन्हे ठीक ढग से सीखना चाहिए। अपनी जिन्दगी मे, लडको को इन्कम-टैक्स के फार्म भरने पडेंगे, अपने बैंक के हिसाब-किताब को देखना पडेगा। लडकियो को खाना बनाने में किस चीज को कितनी मात्रा मे डाला जाय याद रखना होगा, अपने घर के खर्च का हिसाब तैयार करना होगा और न जाने क्या-क्या करना पडेगा ? अगर वे इसको आज नही सीखते तो बाद मे और ज्यादा तकलीफ उठाकर उनको ये बातें सीखनी होगी कुछ वैसे वयस्क, जिनको बचपन मे इस तरह के अनुशासन से बचाया गया था वे अपना जीवन मानो स्वप्न-लोक मे ही बिताते हैं और जीवन की वास्तविकताओ की तुलना मे उनके विचार बिल्कुल ही भिन्न होने की वजह से वे निरन्तर यातना को सहन करते हैं। जैसा कि हाउसमैन महाशय कहते हैं—

To think that two and two are four
And neither five nor three
The heart of man has long been sore
And long 'tis life to be

अर्थात् जिस प्रकार दो और दो मिलकर चार बनते हैं, तीन या पाँच नही उसी प्रकार यह भी सच है कि मनुष्य का हृदय आदिकाल से यातनाओ से परितप्त रहा है और सुदूर भविष्य मे भी ऐसा ही रहेगा, ऐसी सभावना है। यदि विद्यार्थी बुरा व्यवहार करे तो

उसे जो सुविधाएँ दी गयी हो उन्हे छीन लेना अक्सर लाभकारी होता है। मेरे एक मित्र, जो लगभग पचास वर्ष के हैं, उन्हे आज भी यह याद है कि जब वे ग्यारह वर्ष के थे तो वे बडे ही वाचाल और शैतान थे। अब उनमे उस आदत की कल्पना करना भी कठिन है, क्योकि अब वे बडे शान्त और प्रसन्नचित्त वकील हैं और बहुत ही कम बोलते हैं। ऐसी दशा में प्रश्न यह उठता है कि उनमे यह परिवर्तन कैसे आया ? उनका कहना है कि उनमे यह परिवर्तन उस दिन हुआ जब उनकी सारी क्लास अपने किसी प्रिय अध्यापक के साथ, जो, थोडी ज्योतिष-विद्या भी जानते थे, किसी बडे मान-मन्दिर (Observatory) को देखने जा रही थी। वे मेटेयोर (Meteors) की वर्षा या सूर्य की रोशनी में पुच्छल-तारा के घूमने जैसी कई विशेष बातो को देखने जा रहे थे। वे इतने उत्तेजित हो गये कि सारा दिन खुशी के मारे चिल्लाते, हँसते और काम में बाधा डालते रहे। यद्यपि अध्यापक ने उनको दो बार चेतावनी दी लेकिन उन्होने उनकी चेतावनी की ओर ध्यान न दिया। जब वे न माने तो तीसरी बार उनको क्लास के साथ मान-मन्दिर (Observatory) देखने जाने की मनाही हो गयी, क्योकि उन्होने उस दिन का अपना और दूसरो सभी का काम शोर मचाकर खराब कर दिया था। वे अब कहते हैं, "यह मेरे जीवन की स्मरणीय घटना है।"

स्कूल मे इन सब तरह के दंडो को विद्यार्थियो के माँ बाप को बुलाये बिना ही दिया जा सकता है। लेकिन जब स्कूल के अधिकारी विद्यार्थियो के माँ बाप से उनकी शिकायत इसलिए करते हैं जिससे उनको अनुशासनबद्ध बनाया जाय या यदि वे किसी ऐसे अपराध के लिए जिसका कोई इलाज न हो, विद्यार्थियो को स्कूल से निकाल देते हैं उस समय वे सबसे बडी सज़ा, जो एक विद्यार्थी को दे सकते हैं, दे रहे हैं। यही हम इस बात को प्रत्यक्ष-तम रूप से देखते हैं कि स्कूलो का ससार बिल्कुल अलग न होकर परिवार या समाज का ही उभरा (Projection) रूप है। बुरे घरो मे, जहाँ अनुशासन (Order) और ज़िम्मेदारी बहुत कम होती है, वहाँ लोग शिकायत पाकर बच्चो को दड नही देते, उल्टे उन्हे अपने अध्यापको की आज्ञा की अवहेलता करना सिखाते हैं। कुछ अध्यापक जिनको बहुत कम वेतन मिलता है और जो मध्यम वर्ग के लोगो के बच्चो को पढाते हैं जिससे वे बच्चे अपनी जिन्दगी में किसी योग्य बन सकें और उन्ही बच्चो के कठोर पिता अपने दुलारे बच्चो की गलती निकालने के लिए अध्यापक को उसका जबडा पीस देने की धमकी देते हैं। दूसरी तरफ किसी दूसरे घर के बच्चे का अध्यापक अगर उसकी शिकायत उसके बाप से करता है तो उस बच्चे को इतनी मार पडती है जितनी स्कूल मे कभी नही पडती। ये दोनो बातें अत्यन्त बुरी होती हैं। इस तरह के अनुशासन, दूसरे अनुशासनो की तरह बच्चो के माँ बाप और उनके अध्यापको के बीच परस्पर समझ के लगाव पर निर्भर करता है।

पढाई मे गलती करने पर 'कभी भी' विद्यार्थी को तमाचे नही मारना चाहिए। पढाई करना काफी कठिन काम होता है और अगर इसमें भय का समागम कर दिया

जाय तो वह और भी ज्यादा कठिन हो जाता है। भय से प्रोत्साहन नही मिलता। यह तो अधे की तरह आदमी को बढाये जाता है। इससे मस्तिष्क की गति रुक जाती है। वास्तव मे सच्ची शिक्षा के ठीक उल्टा परिणाम होता है क्योकि इससे डरपोक बच्चे सुस्त और काल्पनिक बन जाते हैं जब कि उन्हे मौलिक और उत्सुक बनना चाहिए। ऐसा कहना बेकार है कि 'बच्चे मार से नही डरते, वे उसे हँसकर भुला देते हैं।' इसका कारण यह है कि एक कठोर शिक्षक उसे हमेशा इतना सख्त बना देता है कि बहुत से विद्यार्थी मन-ही-मन डर जाते हैं और कुछ भय से आक्रान्त हो जाते हैं।

इसकी एक और घातक प्रतिक्रिया होती है। इससे नफरत की भावना जागृत होती है। टॉम जोन्स (Tom Jones) नामक कृति में एक अफसर होमर का नाम सुनते ही चिल्ला उठता है—"मैं अपने हृदय से होमर को गालियाँ देता हूँ। अब तक मेरी पीठ पर उसकी रचनाओ को पढने में पडी मार के चिन्ह हैं। (Damn Homo with all my heart, I have the marks of him on my backside yet)" वह उन लाखो लोगो में से एक है जिन्होने उन पुस्तको को जला डाला जिसके कारण से उन्हे आँसू बहाने पडे और चोट खानी पडी। आप आसानी से भद्र पुरुषो की जीवनियो के ससमरणो से दर्द भरी वैसी कहानियाँ एकत्र कर सकते हैं जिसके कारण वे व्यथित हुए। नीचे श्री मर्डस्टोन नामक शिक्षक के आँखो के सामने डेविड कापरफिल्ड को हिसाब बताते हुए देखिए। यह शिक्षक "अभी-अभी अपनी लपलपाती हुई बेंत के नीचे कोई चीज़ बाँधते रहे थे जिसे उन्होने मेरे घर के अन्दर आने पर बद कर दिया और रुककर उसे हवा में डुलाने लगे।"

"डेविड आज तुम्हे और दिनो की अपेक्षा अधिक सावधान होकर रहना होगा।" उन्होने कहा और मैंने फिर उनकी आँखो मे वही त्योरी देखी। उन्होने अपनी छडी को फिर रुक कर लपलपाया और ऐसा उपक्रम करने के बाद उसे अपने बगल मे रख लिया। चेहरे से उनके हृदय के भाव टपक रहे थे और उन्होने पुस्तक उठा ली। शुरू के लिए मेरी हाज़िर दिमागी के लिए यह एक अच्छा स्फूर्तिदायक था। मैंने अनुभव किया कि मेरा पाठ एक-एक करके और एक लाइन के बाद दूसरी लाइन ही नही बल्कि पाठ के शब्द एक एक करके या लाइन के बाद दूसरी लाइन ही नही बल्कि पन्ने के बाद पन्ना भागा जा रहा था। मैंने उन्हे पकडने की कोशिश की किन्तु यदि मैं ऐसा कहूँ कि वे पाँवो मे 'स्केट' लगाकर अविराम गति से भागे जा रहे थे और उन पर कोई रुकावट न थी तो अतिशयता न होगी वे मेरे कमरे तक धीरे-धीरे आये। मुझे विश्वास है कि इस तरह न्याय करने के औपचारिक दिखावे से उन्हे एक खुशी होती थी। वहाँ पहुँचकर अचानक अपनी बाँह से उन्होने मेरा सिर मरोड दिया। मैं चिल्लाया, "मर्डस्टोन महोदय, मैं आपके पाँव पडता हूँ। मुझे न पीटें। मैंने पाठ याद करने की बहुत कोशिश की लेकिन सच मानिये आपकी और कुमारी मर्डस्टोन की उपस्थिति मे मुझसे याद नही किया जाता।" "डेविड, क्या तुम्हे सचमुच याद नही होता ?" अध्यापक ने कहा—"अच्छा, यह लो।" उन्होने मेरा सिर इस तरह पकडा मानो मैंने कोई बडा अपराध किया हो ।

पादरी डोलन (Dolan), जिनको 'शिक्षा मे निपुण' माना जाता है या जो सरकारी पिटाई करने वाले माने जाते हैं उनकी मार से चश्मे के टूट जाने से आधे अन्धे हो जाने वाले ये रहे स्टीफन डेडालस मास्टर ने कहा—"Lazy idle little loafer! Broke my glasses! An old schoolboy trick! Out with your hand this moment!"

स्टीफन ने अपनी आँखें बन्द कर ली और अपनी हथेली आकाश की ओर किए उसने थरथराते हाथ को ऊपर उठा लिया। तब उसको ऐसा महसूस हुआ कि 'शिक्षा मे निपुण' अध्यापक ने उसकी अँगुलियो को सीधा करने के लिए थोडी देर तक छुआ और फिर बुरी तरह पीटने के लिए अपनी बेंत उठाई। उससे उसे इतनी जोर से मारा कि वह बेंत टूट गयी और उसकी आवाज ऐसे हुई जैसे बिजली कडकी हो। उस छडी के पडते ही उसके काँपते हाथ छटपटा गये जैसे किसी हरी पत्ती को आग में डालने से पत्ती सिकुडने लगती है।

वैसी और भी बहुत सारी स्मृतियाँ हैं। शिक्षा के इस ढग की रचना करने वाले किसी भी अध्यापक ने शारीरिक दड की प्रशसा यह कहकर नही की होगी कि यद्यपि यह दुखदाई था परन्तु इससे उन्हे पढना आ गया। उनमें से कइयो का यह विचार है कि इससे निर्दयता, दुख, भय और घृणा जैसे घृणित गुणो को कला, शिक्षा और सौन्दर्य जैसे उत्तम गुणो के सम्पर्क में लाकर उनको जिन्दगी भर के लिए हतोत्साहित कर दिया।

स्कूलो में नियन्त्रित रखने के आधारस्वरूप इसको छोडकर दूसरे ढग के अनुशासन को ही स्वीकार किया जा सकता है। वह बच्चा, जो सीख नही सकता, उसे सहायता की आवश्यकता है। वैसे विद्यार्थी, जो जितना सीखने की क्षमता रखते हैं उससे आधा ही सीखते हैं। उनको यह दिखा दिया जाना चाहिए कि अगर वे अपना कर्त्तव्य पूरा नही करते तो वैसा करना उनके लिए दुखदायी होगा। जो बालक पढने से बिल्कुल ही इन्कार करता हो वह सचमुच अपने माँ-बाप ही क्या, सारे समाज के लिए एक समस्या है। मुझे इसमें सदेह नही कि वैसे स्कूलो मे बालक का बिना पूर्ण मानसिक सुधार किए शायद ही कोई लाभ होगा। कभी-कभी जब वह अव्यवस्था की स्थिति से गुज़र रहा होता है या वह घबराया या बुरी संगति मे फँसा होता है उसे उसके दोष की जानकारी करा देने और उसे कुछ गम्भीर प्रोत्साहन दे देने से ही वह रास्ते पर आ जायेगा। अगर आप बच्चे को इसका आभास दे दें कि आप उसके स्वभाव से सन्तुष्ट नही हैं और आप सचमुच उसको सुधारने में सहायता देना चाहते हैं तो दुष्ट से दुष्ट बच्चा आपसे प्रभावित हुए बिना न रहेगा और वह जरूर बदलेगा।

(ग) विचारो की छाप

विद्यार्थियो तक पर्याप्त ज्ञान के सचरण कर देने से ही अध्यापक का काम समाप्त नही हो जाता। उनके मस्तिष्क पत्थर जैसे नही होते जिन पर भावो की खुदाई करने की आवश्यकता पडे। उनका मस्तिष्क तो मोम जैसा नर्म होता है जिसको पहले भ।

कर फिर सख्त वनाने की आवश्यकता पडती है। अक्सर वे पहली छाप को धारण नही करते, या अगर वे ऐसा करते हैं तो फिर उसको जल्दी ही भुला भी देते हैं। अक्सर वे गलत विचार या सही विचारो को विकृत रूप मे ग्रहण करते हैं। अगर अध्यापक ने अपने विद्यार्थियो को किसी विषय पर अपर्याप्त वातें वताई हो तो उसने अपना काम अच्छी तरह पूरा नही किया है। वैसा अध्यापक उस डाक्टर की तरह होता है जो अपने मरीज़ को खतरे से वचाकर अपने आपको इस वात से सन्तुष्ट कर लेता है कि उसका ज्वर सामान्य स्थिति पर पहुँच गया है और उसके वाद रोगी को स्वस्थ वनाने के वारे मे राय देने, कोई टॉनिक बताने और उस रोग के दुवारा हो जाने की सम्भावना से सुरक्षा के लिए उसकी निगरानी करने की वजाय उसको देखना ही वन्द कर देता है।

किसी कोर्स की पढाई के अतिम तीन चार दिन ही सारे कोर्स की पढाई को वना या विगाड सकते हैं। साधारणत, उस समय तो क्लास द्वारा किए गए आखिरी दस परीक्षणो (Experiments) को दुहराने, इतिहास की उस सदी की साधारण रूपरेखा वताने में जिसको पढाना अभी वाकी है या महज़ दिखाने के लिए शपथ लेकर यह कहने में कि 'अमुक प्रसग को ध्यान मे रखकर उस पाठ को खुद ही पढ लेना' या इसी तरह की दूसरी बातो मे विता दिया जाता है। अपने आठ साल यूनिवर्सिटी मे पढाने के दौरान में मैं घोषित कार्यक्रम के अनुसार पाँच कोर्स पूरे कर पाया और इनमे सिर्फ दो ही ऐसे कोर्स थे जिन पर अन्त में दृष्टिपात करने और विचार व्यक्त करने का अवसर मैं पा सका। यह वही दोष है जिसकी चर्चा हमने पढाने की तैयारी मे की है। यह दोष कार्यक्रम के बुरे नियोजन की वजह से होता है। लेकिन यहाँ इसकी उत्पत्ति का स्रोत दूसरा है। वह अध्यापक जो अपने पाठ्यक्रम की रूपरेखा बुरे ढग से तैयार करता है और क्लास को यह नही बताता कि वह किस ओर जा रहा है, न ही उनको यह बताता है कि उस पढाई से उनको क्या आशा करनी चाहिए। अपने विषय पर अच्छी तरह से अधिकार न होने के कारण अक्सर असफल होता है। एक अध्यापक जो अपने कोर्स का शेष चौथाई भाग कम समय होने की वजह से बडी तेजी से विद्यार्थियो को पढा देता है और आखिरी पैराग्राफ के खत्म होते ही उनसे विदाई ले लेता है, उसने अपने विद्यार्थियो को अच्छी तरह समझा नही है। वह यह नही समझता कि वह पाठ उनके लिए कितना नया और अस्पष्ट है। वह यह नही जानता कि वे तथ्य, जो उसके अपने मस्तिष्क मे बिल्कुल स्पष्ट हैं और वे नाम जिनको वह वर्षों से जानता है उन विद्यार्थियो ने नही समझे हैं और उनकी नोटवुको में केवल रिक्त स्थान और प्रश्नसूचक चिन्ह के अलावा और कुछ नही। वे अध्यापक इस बात को नही समझते कि उस पाठ की मोटी-मोटी वातें भी उनके मस्तिष्क से निकली जा रही हैं।

अच्छे और बुरे ढग की पढाई का यह एक भेद है जिसको साधारण जनता आसानी से समझती है। आप इनसे उनके अपने स्कूल-जीवन के बारे मे पूछें। उनसे पूछें कि कौन-कौन से अध्यापक और कैसे विषय उन्हे याद हैं। वे हमेशा बदमिज़ाज़ और सनकी स्वभाव

के अध्यापको की बाते बतायेंगे— अमुक अध्यापिका, जो उनको पोइन्टर (Pointer) से मारा करती थी या अमुक अध्यापक, जो उनको बडी सजाएँ देते थे। वैसे शिक्षको के बाद वे अधिक प्रसन्नता से उन अध्यापको के नाम बतायेंगे जो उन्हे पाठ याद करवाते थे। वे कहते हैं "अमुक अध्यापिका हम लोगो को भूगोल पढाती थी। यद्यपि अब मैं अधिकतर बाते भूल चुका हूँ जिनको हमने स्कूल मे पढा था लेकिन अभी भी मैं ससार का नक्शा खीच सकता हूँ और उसमें मुख्य-मुख्य नदियाँ भर सकता हूँ।" वे उस अध्यापिका के बारे मे आदर के साथ बोलते हैं क्योकि उन्होने विद्यार्थियो का जितना समय लिया उसके अनुसार उनको शिक्षा भी दी।

जेसुइट अध्यापक भी यह जानते थे कि विद्यार्थियो पर विचारो की छाप बहुत जरूरी होती है। यह याद करने के काम पर उनके अधिक बल देने की नीति से मेल खाती है। यह स्वत स्मरण करना नही है बल्कि यह तो पाठ को अच्छी तरह समझने से सम्भव था। उनकी शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकें कभी भी यह कहते नही थकती कि "दुहराओ, दुहराओ और दुहराओ।" वे लगभग हमेशा यही बताते हैं कि अध्यापक को सदा अपने प्रश्नो पर सावधानी से निगरानी रखनी चाहिए कि उसकी पुनरावृत्ति मे मशीनी (Mechanical) भावना नही है लेकिन फिर भी वे एक बार यही अनुरोध करते हैं कि "दुहराओ" और एक बार फिर "दुहराओ"।

उन विद्यार्थियो पर विचार के अकन के तीन ढग हैं, जिनको आपने पढाना अभी-अभी खत्म किया है। उनमें से सबसे पहला पाठ को "दुहराना" है, जो शायद सबसे ज्यादा महत्त्व रखता है।

इसके महत्त्व की ओर हमने वही सकेत दे दिया है जहाँ हमने इस बात की चर्चा की है कि कोर्स को शुरू करने से पहले उसको नियोजित किया जाना चाहिए। प्रारम्भिक नियोजन और अन्तिम समीक्षा (Review) मे दोनो साथ-साथ चलते हैं और उनमे से एक दूसरे का पूरक है। अगर क्लास को कोर्स की यात्रा शुरू करने से पहले ही यह बता दिया गया होता कि उसे किधर जाना है और उसे क्या-क्या देखना है तो निश्चय ही विद्यार्थी उस अवसर का स्वागत करते जब यात्रा खत्म होने पर वह रुकता और पीछे यह देखता कि कितनी दूरी तय हुई। वह दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न होगा। निश्चय ही आप उसका लाभ उठायेंगे। भूत दर्शन मे जो दो तीन घटे आप बितायेंगे उसमे आप इस बात से सावधान रहेंगे कि मूल कार्यक्रम मे जिस बात पर बल दिया गया है उसे छोडकर उसमे दूसरे कौन-कौन से नये भाव हैं उनको जानें। विन्सटन चर्चिल पहले महायुद्ध के इतिहास मे लिखते हैं कि युद्धकालीन सरकार मे सबसे अच्छे सामरिक सलाह-कारो में सर हेनरी विल्सन एक थे। मित्रराष्ट्रो के दृष्टिकोण से या युद्धभूमि में एक निष्पक्ष प्रेक्षक के दृष्टिकोण से शक्ति के एक दिन यह कहकर कि "प्रधानमत्री महोदय, मैं आज बोश (Boche) हूँ", उसने जर्मन जनरल स्टाफ के दृष्टिकोण से युद्ध की स्थिति पर एक विद्वत्तापूर्ण रिपोर्ट पढकर सुनायी।

किसी सचेत अध्यापक की सबसे प्रबल चिंता उसकी अपने विषय की अपर्याप्त जानकारी होती है। उसने इस महत्त्वपूर्ण बात को स्पष्ट नही किया है। क्या विद्यार्थी सचमुच जिस सिद्धान्त की रूपरेखा बनाता है उसको समझते हैं या वह उन सिद्धान्तो का जो निराकरण करता है उसको वे समझते हैं ? क्या अध्यापक को अपने कोर्स के आधे हिस्से को ही पढाने के लिए ज्यादा समय देना चाहिए था ? ये सब चिन्ताएँ दूर की जा सकती हैं या कम से कम कुछ कम हो सकती हैं सिर्फ अगर अध्यापक टर्म के खत्म होने के तीन चार दिन कोर्स के दुहारने, जहाँ-जहाँ विद्यार्थी नही समझ पाये हो उनको समझाने और उन पाठो के महत्त्वपूर्ण तथ्यो को एक बार फिर से दुहराने के लिए रख छोडे। अक्सर अध्यापको की यह लालसा होती है कि अपने कोर्स के अन्तिम प्रसग को ओजपूर्ण भाषण से खत्म करें । लेकिन ऐसा करने से विद्यार्थी जो कुछ ग्रहण करता है उसे शीघ्र ही भूल जाता है। दूसरी तरफ अगर अध्यापक नियमित, शान्त, स्पष्ट और अपेक्षाकृत कम परिश्रम से जो पाठ पढाते हैं उसका विद्यार्थियो की परिवर्तनशील बुद्धि पर ज्यादा गहरा और स्थायी प्रभाव रहता है।

जब क्लास कोर्स को दुहरा रही हो वह 'सवाल' पूछने का अच्छा मौका होता है। आप उन्हे प्रोत्साहित कर सकते हैं और उन प्रश्नो के उत्तर भी उनको बतला सकते हैं। वैसे प्रश्नो का महत्त्व कभी कम न समझें जिनके पूछे जाने से किसी ऐसी बात पर रोशनी पडती हो जो स्पष्ट न हो। जब धडाधड प्रश्नो की बौछार होने लगेगी तो वे विद्यार्थी जो बडी जल्दी तथ्यो को ग्रहण करते हैं और जो शायद उतनी ही जल्दी उनको अपने मस्तिष्क से निकाल भी देते हैं वे अपने काम मे ज्यादा रुचि दिखाने लगेंगे। लेकिन कोर्स के आखिर में जो सवाल जवाब होते हैं उनका वास्तविक लाभ मेहनती लडको को ही हो सकता है। जो विद्यार्थी परिश्रमी और बुद्धिमान होते हैं उनके नोट-बुक पढने लायक होते हैं। उन विद्यार्थियो के नोट-बुक मे आपको जो गलतियाँ और कमियाँ मिलेंगी उनको देखकर आपको हैरानी होगी। अक्सर इन युवा विद्यार्थियो को आपसे यह कहने मे डर लगता है कि आप उनकी कमी को पूरा कर दें क्योकि वे अपनी कमियो को आपसे जाहिर करना नही चाहते। वे सोचते हैं कि हो सकता है आपसे सवाल पूछने से आप उनको डाँट दें या नही तो उनका जवाब लापरवाही से देंगे। अगर आप सचमुच ऐसा करते हैं तो आप एक अपराध करते हैं। ऐसा करने की बजाय, आपको चाहिए कि आप उनके लिए गलतियाँ को सुधरवाना, पूरा नाम जानना, सही अको को जानना और किसी बात के पूरे प्रसग को जानना और भी आसान बना दें। आपको इस बात की प्रतीक्षा नही करनी चाहिए कि जब वे आपसे सहायता माँगे तभी आप उनकी मदद करें। आप खुद मदद का प्रस्ताव करें। आपने हमेशा तो उनसे स्पष्ट रूप से बात की नही है। विदेशी नाम और कठिन नियमो (Formulas) को जल्दी से लिख लेना कठिन होता है। अगर पढाते समय किसी ने खाँस दिया तो भी आधा वाक्य सुनाई नही पडेगा। आजकल शहरो में मकान की छतो के ऊपर से घण्टे में पाँच मिनट तो हवाई जहाजो के उडने से ही जोर का

शोर होता है। क्लास से मिलने के आखिरी तीन-चार मौके तो सिर्फ विद्यार्थियो के दिमाग मे जो कुछ कुडा-करकट हो उसे हटाकर उसमे छिपे मोतियो को कचन करना होता है।

मेरे पास अभी भी उस समय की कुछ नोट-बुकें हैं जब मैं खुद एक स्नातक स्तर का (Undergraduate) विद्यार्थी था। इस पुस्तक को लिखने से पहले मैंने उनको देखा था। उनमे सवाल भरे (Queries) पडे थे। एकाध सवाल हर पन्ने पर था। किसी-किसी कोर्स में तो मैंने खुद उन प्रश्नो का हल सम्बद्ध प्रसगो को देखकर और नामो को फिर से जाँच कर, करने की कोशिश की। कई प्रश्नो के मार्जिन मे मैंने बडे-बडे प्रश्नसूचक चिन्ह लगा रखे थे इसी उम्मीद मे कि किसी दैवी हस्तक्षेप (Divine intervention) से इनका हल निकलेगा। मैंने कभी किसी दूसरे लेक्चरर से यह नही पूछा कि उनका हल क्या है। यह भी ताज्जुब की वात है, उनमें से कुछ कोर्स जिनको मैं आज खुद पढाता हूँ उनसे सम्बद्ध प्रश्नो का हल मैंने खुद ही निकाल लिया है। लेकिन वैसे विषयो से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्न जो हमारे विषय क्षेत्र से बाहर हैं उनमे आज भी कई रिक्त स्थान हैं और वे रहेगे अगर हमेशा के लिए नही तो कम-से-कम उस समय तक तो जरूर ही जब तक मुझे स्वर्ग मे कोई प्रकाण्ड विद्वान और विश्लेषक उनके समाधान के लिए न मिल जाय।

पुरानी शिक्षा प्रणालियो की अक्सर इतनी आलोचना की जाती है कि कभी-कभी उनके गुणो का स्मरण दिलाना खुशी की वात मालूम होती है। खास कर इस सदर्भ मे तो कुछ पुरानी यूनिवर्सिटियो की शिक्षा प्रणाली ध्यान देने योग्य है क्योकि वे सवाल-जवाब के ढग के महत्त्व को समझती थी। तेरहवी और चौदहवी सदियो मे पेरिस यूनिवर्सिटी मे मुख्य अध्यापक विशेष अवसरो पर (Quodlibets) के उत्तर देने के लिए अपने को प्रस्तुत करते थे। (Quodlibets) शब्द का अर्थ है "आप जो चाहे" और सिद्धान्त रूप मे विद्यार्थी उनसे किसी भी विपय पर प्रश्न कर सकते थे। व्यवहार रूप मे पूछे जाने वाले प्रश्नो का क्षेत्र वहुत ही विस्तृत था लेकिन ज्यादा ज़ोर फिलासफी पर दिया जाता था। कभी-कभी जब हम उन्हे पढते हैं तो हमे यही विचार आता है कि विद्यार्थी अपने अध्यापको को वैसे प्रश्न पूछकर चकरा (Puzzle) देने की कोशिश कर रहे हैं जिनसे सम्वद्ध समस्याओ को पढाते समय उन्होने एकदम फाँद कर खत्म कर दिया था जिससे अध्यापक को अनियमित ढग से पढाने का अपराधी साबित कर सकें। लेकिन वैसा करना अध्यापक और विद्यार्थी दोनो के लिए अच्छा होता है। वैसी सभाओ का सक्षिप्त विवरण (Minutes) रक्खे गये थे जो आज भी हैं। आज, जव हम उन्हे पढते हैं तो हमे उन औपचारिक विधि के जरिये युवा और स्पष्टवादी विद्यार्थियो और परिपक्व तथा अनुभवी शिक्षको की पारपरिक ज्ञान कुश्ती को सुनने का मौका मिलता है जिससे कितनी ही वुद्धियाँ तीक्ष्ण वनी और जो शिक्षा की परिपाटी का एक आवश्यक अग है।

जहाँ तक पढाई हो चुकी है उस पर दृष्टिपात कर और विद्यार्थियो को उनको अच्छी तरह परिचित करा चुकने के वाद तथा उनसे उस विपय पर प्रश्न पूछने और उनका यथा सम्भव सतोपजनक उत्तर दे चुकने के वाद एक कुशल अध्यापक अपने काम को खत्म

करने से पहले एक काम और करेगा। उस खास विषय पर वह जितना जानता है और उस विषय के बारे में विद्यार्थी जितनी जानकारी पा सकते हैं उतना तो उसने उनको पढाया नही है। चाहे अध्यापक इस बात को स्वीकार करे या न करे, विद्यार्थी इसका अनुभव करते हैं। अगर अध्यापक ने विद्यार्थियो से यह बात छिपाने की कोशिश की तो वे उस बात को समझ जायेंगे और अध्यापक को मूढ कहने लगेंगे। इसलिए अध्यापक को चाहिए कि वह इस बात से उनको अवगत कराये और समझाये और उससे उनकी अभिरुचि को प्रोत्साहन दे। "बाकी समस्याओ" (Outstanding Problems) जिनका समाधान होना अगली क्लास मे बाकी है उनसे विद्यार्थियो को परिचित कराकर वह ऐसा कर सकता है।

अक्सर इससे अच्छे विद्यार्थियो को चुनौती मिलती है और कभी-कभी कुछ तेज लेकिन आलसी विद्यार्थियो को भी इससे प्रेरणा मिलती है जिन्हे क्लास के काम मे उनकी अदम्य शक्ति और हृदय की भावनाओ की अभिव्यजना नही होती। स्कूल की पढाई का एक कुप्रभाव यह होता है कि विद्यार्थी यह समझने लगते हैं कि जो कुछ भी पढाया जा रहा है उसे वे पहले ही पढ चुके हैं या जानते हैं और वे यह भी समझने लगते हैं कि ज्ञान का ससार एक ऐसी सूखी लकडी है जिसे हरेक पीढी को फिर से चीरकर उसका चूरा बनाने जैसा होता है। बच्चे बडो को अपनी स्कूल की पुस्तको को पढाने के लिए इस खयाल से मेहनत करना पसन्द नही करते जिससे वे अपने माता या पिता अथवा स्कूल के अध्यापक या अध्यापिका की प्रतिलिपि बनें। अक्सर उन्हे इस बात का अनुभव करके लाभ होता है कि अधिक मेहनत करने से वे आगे बढेंगे। इस भावना को पैदा करने के लिए उन्हे ऐसी समस्याओ से अवगत कराना है जो बडे-बडे बुद्धिमान नही सुलझा पाये हैं। हो सकता है वे इन्हे कभी भी नही सुलझा सकें। हो सकता है कि वे कभी उन्हे सुलझाने का यत्न भी नही करें और उनके बदले रसायन-विशेषज्ञ या शोर्टहैण्ड टाइपिस्ट (Shorthand Typist) बनें। लेकिन उनको यह जानकर हमेशा लाभ होगा कि मानव-ज्ञान निरन्तर बढ रहा है और इस वृद्धि से हमारी इच्छाशक्ति, बुद्धि और सहचर्य-भावना को प्रेरणा मिल रही है।

भावी विचारको के लिए कितनी और किस तरह की समस्याएँ चुनौती का काम करेंगी इसका विवरण विद्यार्थियो के स्तर के अनुसार ही अलग-अलग निर्धारित होगा। बहुत छोटे बच्चो के लिए तो इस तरह की चुनौती देना बिल्कुल अनुपयुक्त होगा। कैट (Cat) शब्द का हिज्जे बताते हुए यह बता देना भी जरूरी होगा कि कुछ लोग चाहते हैं कि इसका हिज्जे (KAET) हो। बढते हुए बालक-बालिकाओ को उनका दृष्टिकोण विकसित करने के लिए बहुत विशाल समस्याओ को भी बताना चाहिए और उनके ज्ञान की परीक्षा के लिए बहुत ही छोटी समस्याओ को पूछना चाहिए। बारह या तेरह साल की उम्र में ही हम ज्योतिषियो (Astrophysicist) और अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्रियो जैसे कल्पना-सम्पन्न व्यक्तियो के जीवन की नीव डालते हैं। (एक बार किसी ने उनसे पूछा कि सूर्य जलकर राख क्यो नही हो जाता या अर्थ सकटकाल (Inflation) मे नोटो

की भरमार का क्या मतलब है ?) साथ ही शल्य-चिकित्सा और अक सकलन जैसे निश्चित व्यवसाय (Precise Professions) के लिए भी इसी अवधि मे नीव डाली जाती है। (मैं एक ऐसे तेरह वर्षीय विद्यार्थी को जानता हूँ जिसने दिनभर दशमलव के वाद साठ अक तक π=3 14159 का मान निकालने मे बिता दिया।) नवयुवको को ऐसी विकट समस्याओ से अवगत कराना चाहिए जिनमे जीवन की वास्तविकता के नाम से पुकारे जाने वाले कठिन स्थानो और पेचीदा मोडो से उनका सामना कराया जा सके। उन्हे ऐसा भयहीन बना देना चाहिए जिससे वे किसी समस्या का कार्यकारी हल निकाल सकें और जिसमे सभी हितकर और अहितकर बातो के लिए समाधान हो। यही समय होता है जब उन्हे जीवन मे निरन्तर सामने आने वाली व्यवहारिक कठिनाइयो से अवगत कराना चाहिए अर्थात् रुपया (तुम रुपये की कैसे व्यवस्था करोगे ?), जन-शक्ति (काम कौन करेगा और उसके लिए उसे क्या पारितोषिक मिलेगा ?), अधिकार (अधिकारी कौन होगा और अधिकार के दुरुपयोग से उसे कैसे वचाया जा सकता है ?) लेकिन चूंकि यही समय है जब उसे कलाओ के बारे मे भी आलोचनात्मक ज्ञान होना चाहिए इसलिए उससे पूछना चाहिए कि सगति का उद्देश्य क्या है ? (क्या वह केवल मनोरजन के लिए है ? अगर नही तो किसलिए है ?) एक अच्छे चित्र के लिए कौन-कौन सी बातें जरूरी हैं और किसी अच्छे और बुरे फिल्म मे क्या अन्तर है। (आजकल अधिकतर लोगो के लिए नाटक का अर्थ फिल्म से होता है, इसलिए नाटकीय गुणो पर चित्रपट के सन्दर्भ मे विचार किया जाना चाहिए न कि रगमच के।) अन्त मे, ऊँची श्रेणी के विद्यार्थियो को उनके अपने विषय की सभी मुख्य समस्याओ का स्पष्ट विवरण देना चाहिए। इन समस्याओ का उनके जीवन से गहरा सम्बन्ध होता है और ये ही उनके भविष्य की रूप-रेखा का निर्माण करेगी। चिकित्सा-शास्त्र का विद्यार्थी अगर ऐसा सुने कि इस शास्त्र के अमुक क्षेत्र में शोध की काफी गुजायश है तो वह भी एक सामान्य चिकित्सक या एक जन स्वास्थ्य अफसर बनने का यत्न करेगा। लेकिन अपने काम मे उन कठिन विपयो पर विशेप रूप से विचार करेगा जिनमे अमुक विषय की समस्याओ का विशेप उल्लेख होगा। अगर वह अपनी प्रेरणा से कोई शोध-कार्य करेगा तो इसकी भी प्रेरणा उसे किसी कठिन समय मे सुझाये गये किसी सकेत से ही मिलेगी। इन महत्त्वपूर्ण समस्याओ की रूपरेखा, उस विषय पर उपलब्ध ज्ञान का सक्षिप्त विवरण होना चाहिए। इस विवरण मे यह वताया जाना चाहिए कि कौन से क्षेत्र ऐसे हैं जो कुछ समय के लिए स्थायी रहेंगे, कौन क्षेत्र अभी विवादग्रस्त हैं, हाल मे कौनसी महान् प्रगतियां हुई हैं, कौनसी समस्याएँ अभी तक सुलझाई नही जा सकी हैं, किन समस्याओ का अशत समाधान हो सका है और किन क्षेत्रो मे अभी भी शोध-कार्य सवसे सक्रिय रूप मे जारी है। विद्यार्थियो की दिलचस्पी तव तो और भी वनी रहती है यदि उनके विषय के महान् कार्यकर्त्ताओ के वारे मे कुछ वताया जाये, ओपेनहाईमर (Oppenheimer) का चरित्र-चित्रण, कार्कोपीनो (Carcopino) का अव तक का जीवन के वृत्तान्त, अपनी पुस्तक "स्टडी ऑफ हिस्ट्री"

(A Study of History) को पूरा करने के विषय मे "टायनवी" (Toyanbee) के विचार आदि वातें विद्यार्थियो को वताई जायें। नवयुवक हमेशा अकेलापन और खोये होने का अनुभव करते हैं। अच्छी शिक्षा उन्हे इस वात का ज्ञान कराती है कि वे भी इस विस्तृत ससार के एक अग हैं।

विचारो का अकन करने के लिए हमने जिन तीन तरीको पर, शायद मोटे तौर पर ही विचार किया है, उनके जरिये एक अच्छे अध्यापक को जिसकी क्लास भी अच्छी हो, शायद ही पढाई पूरी करने के लिए कोई योजना वनाने की जरूरत पडेगी। उसे सिर्फ इस वात के महत्त्व से भली भाँति परिचित होने की आवश्यकता है कि यह नियमन कैसे हो। तव यदि वह इस वात को सक्षेप मे वताये कि वह क्या कर रहा है तो उसके विद्यार्थी उसके साथ-साथ चलते जायेंगे, उन्हे विषय की खास वातो का ज्ञान होता जायेगा, साथ चलते समय वे एक दूसरे से प्रश्नोत्तर करेंगे और उन्हे मालूम होगा कि रास्ते की कितनी मजिलें हैं और कौन-सा प्रदेश अभी तक अज्ञात है। शिक्षा का यह सवसे अच्छा तरीका है। इस स्तर पर शिक्षा, केवल ज्ञान का सचरण नही करती वल्कि वह एक ऐसे मैत्रिपूर्ण लोगो का सहकार्य होता है जो अपने दिमाग को व्यस्त रखना पसन्द करते हैं।

४

महान् अध्यापक और उनके शिष्य

इतिहास के कुछ महान् व्यक्ति अध्यापक रहे हैं। सभ्यता के विकास मे महानतम अनुदान न तो राजनीतिज्ञो या आविष्कारो का रहा है और न महान् कलाकारो का ही, वल्कि अध्यापको का। आधुनिक दैनिक जीवन मे जिस तरह पत्र के सम्पादक, चिकित्सक, फोरमैन, और अन्य लोग शिक्षा देने का कार्य करते हैं उन पर विचार करने से पूर्व हम इस बात पर गौर करें कि विश्व के कौन-कौन-से महान् अध्यापक हुए हैं और उन्होने अपना कार्य कैसे सम्पादित किया था।

पाश्चात्य सभ्यता मे अध्यापको की दा पाँत हैं जिनसे समस्त आधुनिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ है। उनमे से पहली शाखा यूनानी दार्शनिको की है और दूसरी हब्रू धर्मोपदेशको की। यहूदी सप्रदाय को छोडकर यूनानी प्रभाव ज्यादा विस्तृत, सवल और विविध है—स्वय महात्मा ईसा के उपदेशो को छोडकर। इस पुस्तक मे हमारा उद्देश्य इस वात पर विचार करना नही है कि कौन-सी वातें पढाई जानी चाहिएँ बल्कि यह कि शिक्षा कैसे दी जानी चाहिए। फिर भी काम मे लाये जाने वाले तरीको को देखते हुए भी हमारे स्कूल और यूनिवर्सिटी का ढग हेब्रू की अपेक्षा यूनानी अधिक है। यूनानी शिक्षक इस वात का दावा करते थे कि वे विवेक के आन्दोलन (Movement of Reason) का अनुसरण करते थे। दूसरी तरफ हेब्रू उपदेशक यह जानते थे कि वे दिव्य वाणी ही वोल रहे हैं। हम उन दोनो की सराहना करते हैं लेकिन हमें यह सोचना पडता है कि जहाँ लोगो का एक समूह भगवान् से सम्पर्क रखता है और एक दुष्प्राप्य और अनोखी विधि से दुनिया को वदल सकता है वहाँ ससार को चलाने और युवको को प्रशिक्षित करने के लिए निरन्तर विवेकशील कार्य करना पडता है।

वैसे अगर प्रारम्भिक कक्षाओ मे पढाने में, पढाने वाले स्कूल के मास्टर, लेखन कला की शिक्षा देने वालो आदि की गणना नही की जाय तो पश्चिमी जगत के सबसे पहले उच्च शिक्षा देने का पेशा उन यूनानी अध्यापको का कहा जा सकता है जो प्रकाण्ड वक्ता और विचारक थे और जो ईसा से ५०० वर्ष पूर्व हुए थे। उनको "सोफिस्टस" कहा जाता था (इस शब्द का अर्थ "व्यवसायिक विद्वान्" (Professional wise men) जैसा ही कुछ होता है और चूंकि उन्होने अपनी वुद्धि को धन के लिए वेच डाला, इसलिए वे लोग वदनाम हो गये थे। सुकरात के वाद ऐसे विद्वान् अपने को "दार्शनिक" कहने लगे जिसका अर्थ "ज्ञानोपार्जन के लिए ज्ञान का प्रयोग" होता है।) हम अभी भी उनमे से

बहुत से विचारो पर दृष्टिपात कर रहे हैं जिनका प्रतिपादन सोफिस्टस ने किया। जैसे वे पहले लोग थे जिन्होने इस बात की चर्चा की कि क्या नैतिकता की कोई उच्चतम सीमा होती है या वह केवल कुछ बनावटी सिद्धान्तो तक ही सीमित है, क्या न्याय कोई स्थाई वस्तु है या वह सत्तारूढ दल की इच्छा मात्र है, आदि। विचारक की तरह, खासकर अरचनात्मक आलोचको की तरह वे बडे ही चकाचौंध कर देने वाले लोग थे, लेकिन अध्यापक की हैसियत से वे नाम मात्र के ही शिक्षक थे।

वे तो सिर्फ लेक्चरर ही थे। हम उनके बारे मे जो कुछ भी सुनते हैं उनसे यह मालूम होता है कि वे स्वभाव से सुमधुर और कुशल वक्ता थे और साधारणत बडी सभाओ मे श्रोताओ के सामने बोलते थे। उस दृष्टिकोण से वे आधुनिक 'विद्वान्' (Authority) की तरह हैं जो बडे-बडे शहरो का दौरा करते हैं और सावधानी से तैयार किए गये भाषण देते फिरते हैं जिनमे उनके व्यक्तिगत अविकार या विशेषताओ के साथ-साथ बीच-बीच में चुने हुए मजाक और स्मरणीय मुहावरे भरे होते हैं। इस तरह सारे भाषण मे एक बार दुहराने या बार-बार दुहराते रहने मे विशेष अतर नही मालूम पडता। उन्ही अधिकारियो की तरह उन्हे भी मोटा वेतन दिया जाता था, उनका प्रचार होता था, समितियाँ उनका अभिवादन करती थी और बडे-बडे आकाक्षी लोग उनको अपना अतिथि बनाते थे। लेकिन अधिकारी की अपेक्षा उन मे से कुछ इस बात का ज्ञापन करते थे कि वे 'हर विषय' के माहिर हैं। उनका कहना था कि वे दुनिया के किसी भी विषय पर आख्यान दे सकते हैं। अक्सर उनको बेढगे और कठिन विषयो पर बोलने की चुनौती दी जाती और वे उस चुनौती को स्वीकार करते थे। फिर भी वे साधारणतया दूसरो से अधिक जानते हैं ऐसा ढोग नही करते थे और वे उस विषय पर अधिक सोचते और अच्छे ढग से बोलने की कोशिश करते थे। इस दृष्टि-कोण से शायद वे आधुनिक पत्रकारो के पूर्वज मालूम पडते हैं जिन्हे किसी भी नये विषय पर बिना विशेष या विशेषज्ञो से सामग्री प्राप्त किए ही रोचक और सुन्दर निबध तैयार कर लेने की क्षमता होती है। आधुनिक सोफिस्ट का सबसे सुन्दर उदाहरण स्वर्गीय बर्नार्ड शा होते, यदि उन्होने अपनी अनुकरणीय भूमिकाओ को छपवाने की अपेक्षा अपनी अनुकरणीय प्रतिभा से सिर्फ उसे बोल दिया होता। उन्ही की तरह सोफिस्टस भी हर आदमी को बिना किसी ठोस नतीजे पर पहुँचाये उनको अपने वाक्यो से चकाचौंध कर देते थे। उन्ही की तरह अनियमित और गैरमुनासिब तरीके से बहस करते थे बल्कि अपनी विचारधारा में जो त्रुटियाँ रह जाती उनको शब्दजाल से ढकने का यत्न करते थे। उन्ही की तरह उनके मस्तिष्क में कुछ रचनात्मक विचार थे और भाषण मे खूब तालियाँ इसलिए बजती थी क्योकि वे पारपरिक धारणाओ को चर्चा का विषय बनाते और यह दिखाते कि वे धारणाएँ तर्क पर नही अधिकतर परम्परागत होती हैं। उन्ही की तरह वे दिखाते थे कि किसी भी बात को कुशल वक्ता सिद्ध कर सकते हैं, कभी-कभी वे उसे एक चाल बता कर ओजपूर्ण भाषण सुबह को किसी एक पक्ष के समर्थन मे देते तो दोपहर को उसी विषय के दूसरे पक्ष के समर्थन मे उतना ही जोरदार भाषण देते थे।

सोफिस्टस (प्राचीन यूनान का एक प्रबुद्ध वर्ग, जिसे अपने ज्ञान का अत्यधिक ढोंग करने के कारण मिथ्यावादी अर्थात् सोफिस्ट कहा जाता है ।) के पढाने के ढंग के अच्छे और बुरे दोनो परिणाम निकले । वे मानव सभ्यता की राह मे एक प्रबल रोडा थे क्योकि उन्होने अनेक सुसगठित परम्पराओ को नष्ट करने में योग दिया और अक्सर अपने विद्यार्थियो को वाक्यो की बौछार द्वारा अस्थायी रूप से अन्धा बना दिया जिससे उनको अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के पुर्नानिर्माण मे कोई योग न मिल सका । फिर भी उन्होने यूनानियो को वैसी शिक्षा दी जो मेडिटरेनियम के किसी अन्य देश को कभी नही मिली और वह शिक्षा यह है कि विचार ही अकेला मानव-जीवन का सर्वशक्तिशाली बल है । विचारो के प्रति जिस आदर भाव को उन्होने पैदा किया और मान्यता दी जो कि किसी न किसी तरह आज तक चली आ रही है ।

अपने समकालीनो की दृष्टि मे सुकरात एक 'सोफिस्ट' ही थे । लेकिन जहाँ सम्भव हो सका उन्होने सोफिस्टो पर अविश्वास और विश्वास किया । 'सोफिस्ट' लोग सारे यूनान की यात्रा करते थे । सुकरात एथेन्स मे ही रहकर अपने सहयोगी नागरिको से वातचीत करते थे । सोफिस्ट लोग सावधानी से लम्वे भाषण तैयार करते थे जव कि सुकरात तो केवल प्रश्न पूछते रहते थे । सोफिस्ट विद्यार्थियो से, पढाने के लिए मोटी रकम फीस के रूप में लेते थे जव कि सुकरात ने फीस लेने से इन्कार कर दिया था और वे सारी ज़िन्दगी यहाँ तक कि मरने तक दरिद्र ही वने रहे । 'सोफिस्ट' लोग वडे ठाट-वाट से और भडकीले परिधान मे सुसज्जित रहते थे मानो वे किसी सिनेमा के अभिनेता हो और आत्म-प्रचार के लिए यात्रा पर निकले हो । उनके साथ उनके सचिव और नौकर होते थे और उनकी यात्रा का काफी प्रचार होता था । लेकिन सुकरात तो केवल मज़दूर जैसे वस्त्र पहनते थे । उनके पाँव नगे होते और वे चोगा पहना करते थे । वास्तव मे पेशे से वे पत्थर का काम करने वाले कारीगर थे और एक मज़दूर परिवार के थे । 'सोफिस्ट' लोग खास ढग से तैयार किये गये लेक्चर-हॉल मे भापण देते थे लेकिन सुकरात सडक के किनारे या अखाडे (जिनको आजकल पब्लिक वाथ या पार्क कहा जाता है) मे लोगो से वातें करते जहाँ प्रतिदिन दोपहर मे युवक कसरत करते और बूढे वातें किया करते थे । ये सव काम वे तव करते जव वे लोग वहाँ धूप खा रहे होते थे । उस जगह पर सुकरात इतने जँचते थे कि हम उनकी तुलना उस व्यायाम शिक्षक से कर सकते हैं जो खुद तो नही दौड या लड सकता लेकिन दूसरो को दौडना या कुश्ती लडना सिखा सकता है । सुकरात कहते थे कि वे लोगो को सोचना सिखाते हैं । सोफिस्ट तो यह कहा करते थे कि वे सर्वज्ञ हैं और सव वातो पर वे व्याख्यान दे सकते हैं । लेकिन सुकरात ऐसा नही कहते थे । मुकरात का तो यह कहना था कि उन्हे कुछ भी मालूम नही और वे केवल सत्य को ढूंढने का यत्न कर रहे हैं ।

सोफिस्ट ही पहले लेक्चरर थे । सुकरात पहला अध्यापक था । उनका आविष्कार उनकी अपेक्षा अधिक मौलिक था । वे जैसा भापण देते वैसे भापण दूमरी जगहो पर भी

सुने जा सकते थे जैसे जनतन्त्री न्यायालयो मे, जहाँ चतुर वक्ता अपनी विकसित वाक्यपटुता से न्यायाधीशो को अपने विचार के बहाव के साथ बहा ले जाते थे, उन थियेटरो मे जहाँ दुखी राजा-रानियाँ, देवादि और नेता अपने लम्बे-लम्बे चिरस्मरणीय भाषणो द्वारा आक्षेप और एक दूसरे पर दोपारोपण करते थे और जनता की विधान सभाओ मे जहाँ कोई भी नागरिक एथेन्स के भाग्य के बारे मे जो चाहे बोल सकता था। दूसरे क्षेत्रो मे सोफिस्टो का भ्रमण करके ज्ञान प्रसार करने का ढग समाज मे काफी प्रचलित था जैसे गवैयो, चित्रकारो, मूर्तिकार और सिमौनाइड्स जैसे प्रमुख कवियो आदि का यूनान के नगरो में घूमना और टाइरेन्टडस कहलाने वाले राजाओ के समृद्ध दरबारो मे स्वागत किया जाता। उस समय सोफिस्टो के लिए किसी वाद्ययत्र के बजाने वाले की तरह अपने सभाषण से मत्रमुग्ध कर लेना और कभी-कभी उसकी तरह अस्थायी प्रभाव पैदा करा देना अधिक कठिन कार्य नही था। सुकरात ने जो परिवर्तन लाये उनका उद्देश्य यह था कि साधारण बोलचाल को शिक्षा देने का एक ढग बनाया जाय और शिक्षा जैसे उनका कार्य क्षेत्र एक ही समाज अर्थात् उनका अपना नगर एथेन्स बने और अपने को समाज से पृथक् रखकर या यात्रा करके यह काम न हो। उन्हे वाइल्ड या मैदान दूफॉ को नजरे अदाज़ रख कर कोई 'वाकपटु' भी नही कहा जा सकता। उन्होने अपनी कोई अमर वाणी नही छोडी और न कॉलरिज की तरह सारगर्भित गद्यकाव्य ही लिखे। उनकी वाणी मे 'सितारो और फूलो की भरमार' नही होती थी। उनके साथ बातचीत करते हुए दूसरे व्यक्ति को ही अधिक बोलना पडता था क्योकि वे केवल प्रश्न ही पूछा करते थे।

लेकिन कोई भी व्यक्ति, जिसने न्यायालय मे जिरह होते देखा है जानता है कि ऐसा करना एक तैयार किए गये भाषण देने से कितना अधिक कठिन होता है। सुकरात के प्रश्नो का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत होता था और वे स्कूल जाने वाले बच्चो से लेकर वृद्ध पूँजीपतियो, रूढिवादी मध्यगामी नागरिको से लेकर अतिशयवादियो तक, मित्रो से लेकर दुश्मनो तक, ख्यातिप्राप्त लोगो से लेकर सबसे अज्ञात व्यक्तियो तक और साधारण एथेन्स निवासी से लेकर विख्यात आगतुको तक से तरह-तरह के प्रश्न किया करते थे। यह बात समझ नही आती कि उन्होने किस तरह इतने सारे भिन्न-भिन्न चरित्र और विचार धाराओ के लोगो के सम्पर्क में आने पर अपने को उनके अनुरूप बनाया तथापि हम सभी जानते हैं कि उन्होने ऐसा किया। इस दृष्टि से उनके सच्चे उत्तराधिकारी, जेसुइस्ट मत के सस्थापक सत इनासियस लोएला थे। उनकी विशेषता यह थी कि वे मिलने वाले व्यक्ति के अनुसार ही अपने को बना लेते थे और यदि वह वाचाल या कठोर, प्रसन्न चित्त या गभीर, हो तो वे भी अपना आचरण वैसा ही बना लेते थे। सुकरात शक्ल-सूरत मे बुरे थे। उनमे व्यवहार-कुशलता तो थी लेकिन उनमे रईसी की बू तक नही थी। फिर भी वे अपने समय के चतुरतम और सबसे सख्त दिमाग लोगो से बात कर सकते थे और उनको मनवा सकते थे कि वे उन सब से अधिक जानते हैं। उनके ऐसा करने का सबसे पहला ढग यह था कि वे उस विषय पर अपनी अज्ञानता की विनम्र घोषणा करते

थे। इससे दूसरा व्यक्ति धौंस मे आ जाता और उनको अपने चालाक परन्तु दब्बू प्रश्न-कर्त्ता को समझने के लिए बेचैन करता था। दूसरा गुण परिस्थितिनुसार अपने को बना देने का गुण था। इससे उन्हे यह मालूम हो जाता था कि किसी व्यक्ति तक पहुँचने का सबसे अच्छा तरीका कौन सा है। तीसरा गुण उनकी हँसमुख प्रवृत्ति थी। इससे उन्हे किसी बात को सकट के समय मे भी जारी रखने में बडी मदद मिलती और जब दूसरा व्यक्ति गर्म हो जाता और खीस में आ जाता उस समय वे उस पर अपना प्रभुत्व जमा लेते थे। साहित्य के कुछ सर्वोत्तम और उल्लासित कर देने वाले नाटकीय दृश्य तब आते हैं जब परिसवाद में हम देखते है कि सुकरात के सामने एक बडा ही विद्वान् और कट्टर विचारो वाला व्यक्ति उन पर ऐसे शब्दो की बौछार करता है जिनका जवाब कोई दूसरा नही दे सकता था और जिन प्रश्नो ने किसी भी व्यक्ति की ज़बान बन्द कर दी होती। लेकिन सुकरात अपने को एक नगण्य व्यक्ति की तरह बताते हुए उस कट्टर विचारवादी को झकझोरने लगते और अपने सहज भाव से लगातार प्रश्न द्वारा सत्य को तब तक उभारते जाते जब तक उनका विरोधी इस बात को स्वीकार नही कर लेता कि उसकी अपनी धारणा गलत है। अन्त मे वह प्रतिद्वन्द्वी असहाय होकर चुप हो जाता।

हमे मालूम है कि वे एक अच्छे अध्यापक थे क्योकि उनके विद्यार्थी अच्छे थे। उन शिष्यो में प्लेटो सबसे महान् थे जिन्होने एकेडेमी नामक कालेज की स्थापना उसी विषय के विकास के हेतु की थी जिसको पढने के लिए सुकरात ने उन्हे प्रेरित किया था। पढते-पढाते प्लेटो ने दार्शनिक समस्याओ पर पुस्तको को लिखने मे बिता दिया। इनमे से लगभग सभी पुस्तकें परिसवाद की शक्ल में हैं और उनमे से लगभग सभी में सुकरात का प्रमुख स्थान है। अपने गुरु का इससे अच्छा आदर शायद ही किसी दूसरे शिष्य ने किया होगा। प्लेटो का अपना चरित्र और उसके अपने दर्शन सम्बन्धी निर्दिष्ट विचार थे। लेकिन अपनी आखिरी पुस्तक को छोडकर शेप सभी पुस्तको में उसने अपने को सुकरात के व्यक्तित्व और उनके ढग के अधीन कर दिया है। वे अपने को किसी भी परिसवाद मे अपना नाम देकर प्रत्यक्ष रूप से नही लाते और अपनी चर्चा उन्होने केवल दो ही स्थलो पर की है। प्रत्यक्षत, इन परिसवादो को लिखने का उद्देश्य यह था कि सुकरात द्वारा प्रतिपादित उनके ढग को बातचीत की भाषा और उन्ही के उच्चारण (Accent) मे व्यक्त किया जाय। उनके द्वारा हमारे सामने उनका चित्र एक ऐसे युवा व्यक्ति के रूप मे प्रस्तुत होता है, जो उस समय के सुविख्यात सुफिस्टो की मान्यताओ के विरुद्ध लड रहे थे, तब उन्हे जीवन की एक ऊँची चोटी पर, जहाँ समकालीन विद्वानो, उदीयमान कवियो, वैज्ञानिको और राजनीतिज्ञो का बढिया जमघट हो, जिसमें वे अपनी प्रतिभा का अत्युत्तम प्रमाण प्रस्तुत करने को प्रोत्साहित कर रहे हो और वहाँ कल्पना और प्रतिभा की उस क्रीडास्थली का नेतृत्व कर रहे हो, में दिखाया गया है। उन्हे युवा खिलाडियो और उनके पिताओ के साथ खेल के मैदानमे बातचीत करते दिखाया गया है। वे कभी किसी भ्रमण करने वाले प्रसिद्ध यात्री से बातचीत करते, कभी किसी छोटे और अशिक्षित दास के बच्चे

को ज्यामिति के पाठ को घोलकर पिलाने का प्रयत्न करते और सत्तर साल की उम्र मे मुकद्दमे में अपनी ओर से दलीलें पेश करते और इसके बावजूद एथेन्स निवासियो को उतनी ही दृढता से पढाते जितनी दृढ उनकी अपनी धारणाएँ थी। मृत्यु दड से पूर्व के अन्तिम घटो मे वे आत्मा की अमरता के बारे में आख्यान देते रहे। इन सब परिस्थितियो मे निरन्तर और अडिग उद्देश्य और तरह-तरह के लोगो से बिल्कुल हिल-मिलकर सत्य की खोज करते रहे।

लेकिन उनकी शिक्षा की सबसे अजीब बात यह है कि हमे यह नही मालूम होता कि उन्होने वास्तव मे क्या पढाया ? हमे इस बात की जानकारी मिलती है कि वे "कैसे" पढाते थे। यह बात हमे अच्छी तरह मालूम है। लेकिन हमे यह सही-सही मालूम नही कि वे जो प्रश्न करते थे उनसे उनके विद्यार्थियो को क्या शिक्षा मिलती थी। उनके विभिन्न विद्यार्थी यह कहते हैं कि वे अलग-अलग चीजो की शिक्षा दिया करते थे। पूर्वी देशो की यात्रा पर निकलने से पूर्व उनका युवा विद्यार्थी, एक्सेनोफोन उन्हे जानता था, जिसने आगे चलकर उनके जो सस्मरण लिखे उसमे उसने यह दिखाया कि सुकरात एक अन्वेषक, चुस्त, हँसमुख लेकिन उकता देने वाले सनकी मिजाज़ व्यक्ति थे जो हर बात के बारे मे पूछताछ करते थे और जो सभी बातो की कमजोरी की, उनके भेदभाव बरते बिना ही आलोचना किया करते थे। उनके दूसरे शिष्य, अरिस्टिपस का यह विचार था कि उन्होने सभी नैतिक परम्पराओ और सभी स्थायी मान्यताओ (Values) को अपनी आलोचना से नष्ट कर दिया और लोगो को परम्परागत मान्यताओ की अवहेलना करके केवल अपनी इच्छाओ और लिप्सा की पूर्ति के लिए जीवन बिताने के लिए प्रोत्साहित क़िय। स्वय प्लेटो ने उन बातो को लिखकर ही अपना लेखन शुरू किया जिनमें सुकरात ने यह सिद्ध किया था कि कोई भी किसी विषय की जानकारी नही रखता, या अधिक से अधिक यह कि ज्ञान प्राप्ति ही सच्चा गुण माना जाना चाहिए। इन बातो के उल्लेख के बाद प्लेटो ने उन परिसवादो की चर्चा की जहाँ से उन्होने पारम्परिक सिद्धान्तो का खण्डन करके अपने नियमित सिद्धान्त पेश किए—जो प्रश्न करने और उत्तर देने के सिद्धान्त पर आधारित थे। लेकिन जिसमे दूसरे व्यक्ति का अस्तित्व बिलकुल पिछलग्गू जैसा हो जाता, जिसको कभी 'हाँ' कभी 'नही' या 'चलते जाओ' तक ही कहकर सन्तोष करना पडता था। ऐसे सिद्धान्तो मे से कुछ को, बाद के लेखक स्वय प्लेटो का ही सिद्धान्त बताते हैं। क्या वे सचमुच प्लेटो के सिद्धान्त थे ? क्या सुकरात ने उन सिद्धान्तो की शिक्षा दी ?

प्रत्यक्षत, इसका उत्तर है—"दोनो ने।" सुकरात ने उनकी शिक्षा स्पष्ट रूप मे नही दी, नही तो उनके शिष्य भी उन सिद्धान्तो को याद रखते। लेकिन प्लेटो ने खुद ही सम्पूर्ण सिद्धान्त नही रचा था। उनकी रचना प्लेटो के मस्तिष्क पर पडी सुकरात की शिक्षा के प्रभावस्वरूप ही और हमे यह अवश्य याद रखना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति, जो सुकरात जैसी कुशलता से पढाता और जो विषय की गहराई तक छानबीन करना अपना

सिद्धान्त बनाता, वह कभी भी अकस्मात् ही प्रश्न नही पूछता। अवश्य उनके कुछ निर्दिष्ट सिद्धान्त होगे जिनसे उन प्रश्नो की उत्पत्ति होती होगी और यद्यपि उन्होने उनकी विवेचना नही की तो भी उन विचारो को नव-निर्मित करना उनके प्रतिभाशाली विद्यार्थियो का काम था। इसलिए उनकी शिक्षा प्रतीति (Implication) पैदा करने की शक्ति के महान् दृष्टान्तो मे से एक है। एक अध्यापक, जो बात झटपट कह देता है वह बात अक्सर अनसुनी रह जाती है। लेकिन अध्यापक, जिस बात पर विचार करने के लिए अपने विद्यार्थियो को प्रेरित करता है उसका अक्सर उन पर गहरा प्रभाव पडता है।

स्वय प्लेटो को जैसी नियमित शिक्षा मिली थी उससे भी अधिक सयोजित और अनोखे ढँग से वह अपने विद्यार्थियो को पढाते थे। यह शिक्षा अधिक सयोजित इसलिए थी कि दर-दर भटकने की बजाय उसने एक कालेज खोला। इस कालेज मे प्रवेश (Entrance) पाने के लिए परीक्षा पास करनी पडती थी और यहाँ अनुशासन के नियम लागू किये जाते थे। जैसा कि प्रकट है, यह कालेज किसी मठ (Monastery) या शोध-कार्य के लिए एक क्लब की तरह चलाया जाता था। यह अधिक अनोखा इसलिए था क्योकि हर एक विद्यार्थी से बोलने की बजाय वह कुछ खास चुने हुए विद्यार्थियो को पसन्द करते थे और एक ही साथ सब किसी से लगातार बातचीत में जुट जाने के बदले वे लेक्चर दिया करते थे, जो कभी-कभी समझने मे कठिन होते थे। लेकिन वे सुकरात की तरह एक काम-गर व्यक्ति नही थे। वे तो एक भद्र, धनाढ्य और प्रतिभावान व्यक्ति थे, उनमे बचपन से ही काव्यात्मक प्रवृत्तियाँ थी और वे जीवन भर एक ऐसे साधू बने रहे जिसने यह अनुभव किया कि दुनिया मे "हर एक आदमी" को पढाना असम्भव है। इसलिए उन्होने अपनी मेहनत केवल कुछ बहुत ही प्रशिक्षित और सावधानी मे चुने हुए श्रोताओ तक सीमित रक्खा। वे परीक्षा प्रणाली के सस्थापक थे। इसलिए उनकी शिक्षा का बहुत ही सीमित प्रभाव था। उनके सबसे बुरे विद्यार्थियो मे सिराक्यूज (Syracuse) का युवा राज-कुमार डॉयनिसियस (Dionysius) था, जिसे वह दार्शनिको का सम्राट् बनाना चाहता था लेकिन जो आक्रामक (Tyrant) बना। उनका सर्वोत्तम विद्यार्थी अरस्तु थे जिनकी विद्वता का आदमी आज तक नही हुआ है। लेकिन उनके अलावा उसने अपनी पुस्तको के द्वारा न जाने कितने लोगो को अपना शिष्य बना लिया है जो पुस्तके अध्यापक की कला की सर्वोत्कृष्ट कृतियाँ हैं।

उनमे उन्होने सुकरात को अपने मित्र या विद्यार्थी को किसी समस्या से अवगत कराते हुए दिखाया है। वे प्रश्न बडी विनम्रता मे पेश किए जाते थे और ऐसा लगता था मानो बडे सहज भाव मे प्रश्न किये गये हो। जब उनका उत्तर मिलता तो सुकरात उन्हे एकत्र करते और उन उत्तरो की प्रत्यक्ष त्रुटियो पर और आगे सवाल करते। उनके धीरज के साथ पूछे गये प्रश्नो से विद्यार्थियो के मस्तिष्को से गलत बातें निकल जाती। वैसे विचार, जो विषय की गहराई तक नही पहुँचते हो, मस्तिष्क मे बाहर निकल जाते हैं, उन पर आपत्तियाँ उठाई जाती हैं और उनका समाधान होता जाता है और धीरे-धीरे तर्क की

सहायता से शिक्षा के सूक्ष्म मार्गो से होते हुए हम एक ठोस परिणाम पर पहुँच जाते हैं जिसकी परिकल्पना हमने शुरू मे नही कर पाई होती और शायद अगर शान्त भाव से युक्तिसगत वातचीत के विना पहुँचना मम्भव नही हो पाता। कम-से-कम प्लेटो ही अमर पैदा करना चाहता है। तर्क के सभी पहलू प्रत्यक्ष हो जाते है। इस तर्क मे और ऊपर पैरवी (Appeal) करने की आवश्यकता नही रहती। वातचीत के दौरान मे उलट-फेर की वातें वनाकर या भावात्मक वातो की आड लेकर बचा नही जा सकता। पढते समय, अगर आप समझे कि लेखक या वक्ता आपको धोखा दे रहे है तो आपको कोई ऐसा करने के लिए न तो फटकारता है या वैसा न करने को कहता है। आप एक ऐसे अजनवी जैसे हैं जो किसी ऐसे छोटे दल के पास गया हो जिसमे सुकरात भी शामिल हो और वे वातचीत मे विना स्वय भाग लिये ही सब वातें सुन रहे हो। किसी भी क्षण या किसी बात पर अगर आपकी इच्छा हुई तो आप वहाँ से आकर यह निश्चय कर सकते हैं कि सुकरात एक मिथ्यावादी हैं और उनके शिष्य उनके पिछलग्गू हैं जिन पर सुकरात ने जादू कर रक्खा हैं। कुछ लोग ऐसा समझते हैं। सुकरात के वाद प्लेटो और उनकी पुस्तक (The Laws) को पढने के वाद सभी लोगो की वही राय हो जाती है। (The Laws) एक दुष्टतापूर्ण कृति है जिसे जॉर्ज आर्वेल लिखित (Nineteen Eighty-Four) के साथ रक्खी जानी चाहिए। यह पुस्तक एक वुरे राज्य के प्रति सराहना प्रकट करती है उसी तरह जिस तरह आर्वेल उसकी वुराई करता है।

प्रत्यक्षत, जहाँ तक राजनीति का सवाल है प्लेटो ने जो कुछ भी पढाया वह जनतन्त्र विरोधी और सकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक है और अन्त मे दुखान्त और वुरा दोनो हैं। लेकिन प्लेटो ने अपने इन विचारो को "किस तरह" से पढाया यही यहाँ हमारी चर्चा का विषय है। इन बातो को उन्होने ओजपूर्ण और प्रभावशाली वार्तालाप के द्वारा पढ़ाया जिसमे पढने वाला सुकरात से अपनी समता न कर सकने के कारण आप-से-आप प्रश्न-कर्त्ता से घुल-मिल जाता है। इस तरह वह ऐसी वातो मे हामी भरने लगता है जिनको यदि उसे स्वय सोचना होता तो उनकी बात भी मस्तिष्क मे नही लाता। राजनीति मे ऐसा करना बहुत ही भयानक है। अध्यात्म में, तर्क और नीतिशास्त्र में भी पढाने का यह ढग बहुत ही स्वस्थ और व्यायामपूर्ण है और इसमे सन्देह नही कि यह अब तक चलाये गये ढँगो मे सबसे शक्तिशाली तरीको मे से एक है। जब आप प्लेटो लिखित कोई सुकरात का परिसम्वाद पढने लगते हैं तो आपको उसके वातावरण की मादकता मुग्ध कर लेती है और विचारो के प्रारम्भिक आदान-प्रदान की विनम्रता वशीभूत कर लेती है और तब भी अपनी अवस्था का ज्ञान होने से पहले आपका विचार गतिमान रहता है। यह काम आप उसी ढँग से करते हैं जैसे आज से दो हजार तीन सौ वर्ष पूर्व एक शिक्षक ने सुझाव दिया था न कि उसे अनिवार्य बताया था।

पाठ्य-विषय और शिक्षा देने के ढँग के अन्तर का इससे सुन्दर उदाहरण नही हो सकता। हम मे से थोडे ही ऐसे लोग होगे जो प्लेटो द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की प्रशसा

करते या उसमे विश्वास करते हैं। हम मे से सबो को अवश्य ही उनके शिक्षा देने
की प्रशसा करनी चाहिए। उन्होने अपने गुरु सुकरात से यह सीखा था कि सिवाय
और ठडे मस्तिष्क से तर्क करने के, लोगो को शिक्षा देने, उनको परिवर्तित कर
उनको मनवाने (Convince) का और कोई दूसरा रास्ता नही होता। प्रश्न कीि
उनके उत्तर जाँचिये। उस समय तक तर्क करते जाये जब तक प्राप्त उत्तर से
(Reason) का समाधान नही हो जाता। जैसे-जैसे आप अकेले स्वय विचार क
वैसे-वैसे आपको अपने विवेक के साथ ठीक उसी तरह जिरह करना चाहिए जैसे
कोई पुरुष हो, जो आपके बराबरी का स्थान रखता है। जब आप किसी से जिरह क
हो, उस समय उस जिरह का अर्थ कदापि एक कुश्ती नही होनी चाहिए, बल्कि उ
तात्पर्य विवेक पर आधारित यथार्थ की खोज होनी चाहिए, जिसमे आप दोनो मिल
एक दूसरे की सहायता से सत्य को खोज निकालने की कोशिश कर रहे हो। किसी
परिसम्वाद का अध्ययन करने में, जिसमे प्लेटो ने अपने अध्यापक के काम का नि
किया हो, उसके लिए यह अनिवार्य नही कि हम उसके निष्कर्षो को स्वीकार क
उनमे निहित हैं। बल्कि इससे तो वैसे लोगो को प्रशसित करने की प्रेरणा मिलती
विवेकपूर्ण तर्क को मानव व्यवहार की सर्वशक्तिशाली और स्थायी शक्ति समझते है

सुकरात, प्लेटो और अरस्तु— महान् व्यक्तियो का यह कैसा सुन्दर ताँता है ? इ
अरस्तु एक धनाढ्य चिकित्सक के पुत्र थे और हमेशा विचार की वैज्ञानिक पद्धति
अच्छा समझते थे। वे सत्रह वर्ष की उम्र मे प्लेटो के एकेडेमी मे आये और ल
चालीस वर्ष की आयु तक वहाँ रहे। प्लेटो की मृत्यु के वाद उन्होने वह स्थान
दिया, इधर-उधर भ्रमण करने लगे और कुछ वर्षों तक स्वतत्र रूप से शोध कार्य कर
वाद लाइसियम नामक एक सस्था खोली (एकेडेमी और लाइसियम, ये दोनो कालेज
धर्म स्थानो के नाम पर स्थापित किये गये थे जो उन कालेजो के नजदीक स्थित थे लेकि
दोनो नाम आजकल सभी पश्चिमी देशो मे पूज्य स्थान वन गये हैं। यह प्रचार इतना व्य
है कि स्वय एकेडेमस नामक प्राचीन काल के झूठे देवताओ के पुजारी अगर आज आस
से धरती पर झाँके तो रायल एकेडेमी (Royal Academy), एकादमी फ्रासे (Ac
mie Française), अमेरिकन एकेडेमी (American Academy), अकादेमि
इटालिया (Accademia d'Italia) इत्यादि और तरह-तरह की दूसरी सस्था
अपने नाम के अमर प्रचार से उन्हे वडा आश्चर्य होगा।) जाहिर है कि शोध-कार्य
शिक्षा कार्य इन दोनो को वे एक ही विषय के दो पहलू समझते थे। सुकरात के शिक्ष
का ढग वैसा ही था, जो अपने मित्रो को समझा कर और उनको सत्य के अनावरण के
खोज करने के लिए प्रेरणा देकर पढाया करते थे। कुछ वदले रूप मे प्लेटो ने भी
किया। अरस्तु अपने पढाने के ढग को वडे पक्के तौर पर नियत करता था। उ
लिसियम (Lyceum) आधुनिक शोध सस्था मे मिलता है, जहाँ परीक्षण के सैकडो म
को लेकर विद्यार्थी काम मे लगे हो। और राजनीति पर उसको निवध (Treatises)

सभी विभिन्न सविधानो के निचोड थे, जो उस समय थे, और जिनको उनके नेतृत्व में सहयोगियो ने तैयार किया था।

अरस्तु उस समय जिस ढग से पढाते वह ढग एक उच्चस्तरीय विचार-विमर्श की परिपाटी थी और आज भी ऐसी सस्थाओ मे इस परिपाटी का काफी प्रचलन है। ऐसी सस्थाएँ साधारण नही होती। वैसी सस्थाओ को चलाने के लिए बहुत धन और पूर्ण राजनैतिक स्वतत्रता की जरूरत होती है। साथ ही उनमे सारा वर्तमान ज्ञान और भविष्य के लिए नयी खोजो की भी पर्याप्त व्यवस्था की जरूरत पडती है। स्वय अरस्तु को राजनीतिक कारणो से एथेन्स से बाहर भगा दिया गया था क्योकि उन्होने सिकदर जैसे साम्राज्यवादी सम्राट् का पक्ष लिया था। उनकी अधिकतर शिक्षा कुछ कम शिक्षित लोगो के लिए होती थी लेकिन ये विद्यार्थी भी औसत नागरिक से बहुत ज्यादा पढे लिखे होते थे। बहुत सी कृतियाँ, जिन्हे उनके ज़रिये लिखा गया, बताया जाता है वे वास्तव मे उनकी लिखित पुस्तके नही हैं बल्कि लेक्चर नोटो के सग्रह हैं जिन्हे उनके विद्यार्थियो ने लिखा था और शायद बाद मे अरस्तु के नोटो से उन्हे सही बनाया था। उनमे हम देखते हैं कि अरस्तु लेक्चर और क्लास के अन्दर विचार-विनिमय, दोनो को मिलाकर पढाने का काम करते थे यद्यपि लेक्चर पर ही अधिक जोर दिया जाता था। कहने का मतलब यह है कि वे पहले कुछ विषय निर्धारित कर लेते थे जिनके द्वारा सारे विषय पर एक सम्मिलित रूप मे विचार किया जा सके। वे हर एक पाठ को एक-एक करके पढाते थे और उसमे भी उनके अलग-अलग टुकडे करके हर एक समस्या पर विचार करते और समझाते थे। यह वे किस तरह करते थे, हमे पता नही। उनके नोटो से ऐसा पता चलता है कि वे लगातार बोलते जाते और एक के बाद दूसरे सुझाव की जाँच करते और इस पर विचार करते कि उनमे कहाँ-कहाँ और कैसी-कैसी अशुद्धियाँ हैं। इसके बाद वे उनका समाधान बताते थे। हम यह नही जानते कि सुझाव विद्यार्थियो से माँगे जाते थे और तब अरस्तु उन पर विचार करते थे या वे स्वय बोलते हुए स्वय इन सुझावो पर विचार करते थे। फिर भी हमे मालूम है कि वे दूसरे अनुभवी लेक्चररो की तरह कुछ विशिष्ट उदाहरणो का प्रयोग करते थे जो इनके नोटो मे खास ढग से लिखे मिलते हैं और वे क्लास-रूम (Classroom) की चीजो और विद्यार्थियो को अपने तर्क समझाने के लिए प्रयोग करते थे। कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि अपने कालेज के बाग मे घूमते हुए भी वे पढाते रहते थे। यह इस बात से पता चलता है कि उनके दर्शन को "पेरीपेटेटिक" (Paripatetic) अर्थात "घूमता हुआ" कहा जाता है। इसका मतलब यह भी होता है कि वे इस बात की सावधानी रखते थे कि शिक्षा जहाँ तक हो सके अनऔपचारिक होनी चाहिये। अरस्तु के बाद भी बहुत से विचारको ने यह अनुभव किया था कि वे सोचने या बोलने का काम घूमते हुए बहुत अच्छी तरह कर सकते हैं। यह शरीर घूमता रहे तो मस्तिष्क भी चैतन्य रहता है। लेकिन किसी अध्यापक के मस्तिष्क मे पहले सुनिश्चित विचार भरे हुए हो और वह उन्हे बदले, विस्तृत करने या बताने का इरादा नही रखता, तो उसका घूम कर पढाना

विडम्बना मात्र होगा। अरस्तु को अभी इस विडम्बना का दोषी नही कहा गया और उनकी उपलब्ध रचनाओ से हमे ज्ञात होता है कि वे अपने सिद्धान्तो की परिधि को बराबर विस्तृत बनाते रहते थे। फिर भी यह उपहासजनक बात मालूम पडती है कि मध्य युगो (Middle Ages) और प्राचीन साहित्य के पुनरावर्तन काल (Baroque-period) उन्हे ऐसे पडित की उपाधि दी गई जिनके वाक्य अडिग सत्य का प्रतिपादन करते थे जब कि वास्तव मे अरस्तु यह दिखाना चाहते थे कि यह वास्तविक ज्ञान निरन्तर खोज के कारण हमेशा बदलता रहता है।

जन-नेतृत्व के लिए प्रशिक्षित करना शिक्षा के क्षेत्र का सबसे मुश्किल काम है। सुक-रात ने इस प्रश्न पर बहुत विचार किया था लेकिन वह उनको कार्यान्वित करने मे बुरी तरह असफल रहे। यदि कुल मिलाकर देखा जाय तो प्लेटो भी इसमे असफल ही रहे। उनका प्रतिद्वन्द्वी आइसोक्रेट्स जो "राजकुमारो का स्कूल" चलाता था ज्यादा सफल रहा था। तब अरस्तु ने राजकुमार सिकदर को भी इसी ढग से पढाने की कोशिश की, जिसका बाप धोखा देकर और आक्रामक हमलो से अपने को यूनान का सम्राट् बना रहा था। यह वही सिकदर था जो लडाई लड कर विजय करता हुआ भारत तक पहुँच गया था और यूनान के महानतम सम्राटो मे एक बना।

यह अपेक्षाकृत कठिन काम था। सिकदर और उसका परिवार विशुद्ध यूनानी नही थे। वे मेसिडोनिया के पहाडी प्रदेश के रहने वाले थे जिनमे वर्वरता का काफी अश था। उनमे असीम उत्साह, आक्रामक शक्ति, परिस्थितिनुसार बदलने लायक और जिज्ञासु मस्तिष्क और चट्टान की तरह दृढ निश्चय जैसे गुण थे, किसी भी शिष्य के लिये सभी बडे अच्छे गुण हैं और सिकदर मे ये सब विद्यमान थे लेकिन उसमे अपने परिवार के परपरा-गत जगलियो जैसी क्रूरता हिंसात्मक आनन्द लेने की प्रवृत्ति और असभ्य रूखापन था। सम्यता से पहले के युग के ऑग्ल सेक्सन और जर्मनो की तरह मेसिडोनिया के रहने वाले भी रातो—खूब शराव पीते थे। एक बार रात के समय अपने ऑफिसरो के निवास मे उसने एक ऐसी ही दावत मे अपने एक परम मित्र को दिलग्गी मे ही आपने भाले से दीवार के साथ जड दिया। आइसलैण्ड और वाइकिंग्स की कथाओ मे हमे ऐसी ही निर्दयी वर्वरता का परिचय मिलता है। यद्यपि ऐसा युद्ध स्वस्थ-युद्ध की भावना से किया जाता था लेकिन अरस्तु के विचार में वैसी प्रवृत्ति समय से ५-६ सौ वर्ष पिछडी हुई थी। उसे वैसा ही मह-सूस हुआ होगा जैसा एरिक ब्लडी एक्स (Eric Bloody-Axe)को सर फ्रासिस वेकन द्वारा या महान् पीटर (Peter the great) को न्यूटन द्वारा महसूस होता। अगर वह स्वय विशुद्ध एथेनियन होता तो वह ऐसा कभी नही करता। लेकिन वह एक मेसिडोनियन था, उसके पिता सम्राट् फिलिप्स के डाक्टर थे, उत्तर मे रहने वालो को वे जानते थे और उसमे किसी काम को करने की अतिम सीमा क्या है इसको वडी चालाकी से परखने की योग्यता थी।

इस बात के बारे में हमे शायद ही कुछ पता है कि युवक सिकदर को वे किस तरह पढाते थे लेकिन उन्होने इस पढाई से जो परिणाम निकाला उनको देख कर हम खुद ही

नतीजे निकाल सकते हैं। सभवत, वे उसमे जिन बातो को बदल न सके उनको छोड ही दिया। सिकदर ने दूसरो की अपेक्षा अपने माता-पिता से कही ज्यादा शिक्षा पाई। उसकी यह शिक्षा उसमे विद्यमान मेसिडोनिया वासियो जैसा आचरण और स्वभाव अपरिवर्तनीय था यह अच्छा भी था और बुरा भी। इसी उत्तराधिकार को वापस पाने के लिए जब थेब्स वासियो ने एक छोटा सा विद्रोह किया तो सिकदर ने सम्पूर्ण थेब्स नगर को बर्बाद कर दिया और वहाँ के लगभग सभी नगरवासियो को दास की तरह बेच डाला। उसी गुण ने उसे एक घुडसवार सेना का आला अफसर, ऐसा नायक, जो ससार मे अद्वितीय है और एक योग्य और दूरदर्शी सम्राट् बनाया। अरस्तु ने सिकदर के स्वभाव और पैत्रिक विशेषताओ को ज्यो का त्यो छोड दिया और उसमे ऐसे विरोधक प्रभाव पैदा कर दिये जिनसे उनकी आदतो का कुप्रभाव कम हो जाय और उसकी अच्छाइयाँ बढ जाये।

सबसे पहले तो अरस्तु ने उसे यूनानी सस्कृति का आदर और उससे प्रेम करना सिखाया। उसने यह काम होमर से शुरू किया। यह चुनाव उत्तम था क्योकि शुरू मे होमर के सभी वीर बहुत कुछ मेसिडोनियन जैसे ही थे और होमर ने उनको इतनी कुशलता से चित्रित किया कि वे युवको के लिए अनुकरणीय आदर्श बन गये। इसी से सिकन्दर ऐशिलेस (Achilles) के उत्तर मे रहने वालो का बडा प्रशसक था जिन्हे उसका पूर्वज बताया जाता है। उसने ट्रोय (Troy) के बाहर उस पुराने टीलो का भ्रमण किया था जिसके बारे मे ऐसी धारणा थी कि वह ऐशिलेस की समाधि और वहाँ उसने उसकी याद मे प्रार्थना भी की थी। वह जहाँ जाता अपने साथ अपने अध्यापक द्वारा अनूदित होमर की कृति की एक प्रति ले जाता था और एक बार तो उसने यहाँ तक कह दिया था कि उसे ऐशिलेस से एक बार इस वजह से ईर्ष्या हो गयी थी क्योकि उनके यहाँ भी सिकन्दर के आखेटो का होमर की तरह सुन्दर ढग से उल्लेख करने वाला कवि आ गया था। बहुत दिनो के बाद उत्तरी प्रदेश के एक दूसरे युवक राजकुमार, स्वीडेन के बारहवे चार्ल्स को भी क्विनटस क्युर्टियस (Quintus Curtius) द्वारा लिखित सिकन्दर की जीवनी के ढग पर ही पाला-पोसा गया था। वह जहाँ जाता उस रचना को हमेशा अपने साथ ले जाता मानो वह नूतन सिकन्दर ही हो।

होमर के बाद अरस्तु ने सिकन्दर मे अन्य यूनानी कवियो और यूनानी सस्कृति के दूसरे पहलुओ की प्रशसा करना सिखाया। यहाँ तक कि जब सिकन्दर ने थेब्स (Thebes) को लिडिस (Lidice) में बदल दिया तो भी उसने वहाँ के सम्राट् के कवि का मकान यादगार के लिए छोड दिया। बाद में जैसे-जैसे उसे और ज्यादा राजनीतिक अनुभव हुए उसने यह महसूस किया कि मध्यपूर्वी इलाके के लोगो को पराजित करना बेकार हुआ और अगर उनको एकता के एक स्थायी सूत्र मे राजनीति और कानून को त्याग कर नही पिरोया गया तो वे सभी राज्य उसी समय हाथ से निकल जायेंगे। उसको यूनानी सभ्यता मे ही ऐसा सूत्र मिला। जहाँ कही भी वह गया, उसने यूनानी ढाँचे पर नगर बनवाये, और यूनानी कला, विज्ञान, भाषा, साहित्य, आचार-विचार और व्यापार का प्रसार किया। इसका उद्देश्य

कदापि यूनानी राष्ट्र का विस्तार नही था बल्कि उससे एक विश्व सभ्यता की स्थापना करना था। उसकी प्यारी नगरी सिकन्द्रिया एक मिश्री नगर नही था बल्कि वह लगभग चार सौ साल बाद यूनान में यूनानी भाषा मे ही ईसाई मत का प्रचार किया गया जो यूनानी भाषा मे ही लिखा गया था और रोमन साम्राज्य मे इसका सबसे प्रबल और लम्बे अर्से तक प्रचलन मध्यपूर्व के यूनानी अधिकृत क्षेत्रो में रहा क्योकि अरस्तु ने महान् सिकन्दर को सास्कृतिक उपदेशो की शिक्षा दी थी।

व्यक्तिगत रूप से अरस्तु सिकन्दर के लिए ज्यादा कुछ नही कर सका। वह युवक अपना अधिकतर समय शिकार करने या लडाई लडने मे बिताता था और उसके बाद वह एक सैनिक बन गया। अगर अरस्तु को यह विश्वास हो जाता कि प्रजातत्री प्रणाली के लोग ही उत्तम होते हैं तो वह सिकन्दर को यह नही सिखा पाता कि प्रजातत्र की अच्छाइयो को कैसे कार्यरूप दिया जाता है। अगर उसे यह काम दिया गया होता तो शायद उसको करने मे वह बुरी तरह असफल होता और अपना पद भी शायद वह खो बैठता। इन बातो की शिक्षा देने की बजाय अरस्तु ने उसको कुछ उन गुणो की शिक्षा दी जिनकी सम्राट् मे होना सबसे ज्यादा जरूरी होता है। जैसे दया की भावना। इसको अरस्तु ने आत्मा की महानता बताया है। यही वह गुण है जिसकी वजह से अपने मित्र क्लेटस को मारने के बाद उसने बडा प्रायश्चित किया। बाद मे जब उसे यह पता चला कि उसके निजी डाक्टर को जहर दे देने के लिए घूस दिया गया था तो उसने उसको बुलवाया और उससे वही दवा माँगी और दवा को पीते हुए उसने उस पत्र को पढने को कहा जिसमे दोषारोपण किया गया था। उसके पिता, फिलिप को अगर जरा भी सदेह होता तो शायद उसने डाक्टर को कठिन दड दिया होता। उसने इसी दयालु स्वभाव की वजह से जब फारस के शाह को पराजित किया तो उसके महल मे रहने वाली औरतो के साथ (Harem) दुष्टतापूर्ण सद्भाव के साथ व्यवहार करने को प्रेरित किया यद्यपि विजय की वेला मे अपने को वश मे करना एक दुखदायी काम था। अरस्तु द्वारा शिक्षित महानता का आभास सिकन्दर के सिक्को और उसकी मूर्तियो मे मिलते हैं जिनके कारण वीरता के उस युग का वह आदर्श नेता बन गया है।

पाश्चात्य देशो के सबसे अच्छे अध्यापक ईसा मसीह थे। वे यहूदी सन्तो की परम्परा के अनुसार पढाया करते थे। 'ओल्ड टेस्टामेट' बाइबल के दो भाग, ओल्ड और न्यू टेस्टामेट के नाम से पुकारे जाते हैं। 'ओल्ड टेस्टामेट' महान् यहूदी न्यायद्रष्टा मोजेज कृत बताया जाता है और न्यू टेस्टामेट ईसाइयो का माना जाता है।) के कुछ खडो मे हम "धर्मोपदेशको के पुत्रो" का उल्लेख पाते हैं। ये ऐसे लोग थे जिनमे एलिशा जैसे महान् अन्तरद्रष्टा थे और ये लोग अलग किसी जगह पर रहते थे। वे लोग उनके प्रवचनो का सग्रह करते उनकी दिनचर्या का अनुसरण करते और उनसे प्रेरणा ग्रहण करते। पूर्वी देशो मे महात्मा गाधी जैसे विचारको को हम जानते हैं जिनका आश्रम गुरु के साथ सम्मिलित जीवन बिताने का एक अग है। महात्मा ईसा के साथ अनुयायियो की निरन्तर ऐसी ही

टोली रहती थी। उनसे पहले बहुत से लोगो ने अपना घर-वार छोड कर जॉन नामक महात्मा का अनुसरण किया था। महात्मा जॉन को "प्यूरिफायर" या "वैप्टीस्ट" अर्थात् धर्मशोधक कहा जाता था। स्वतत्र धर्म प्रवर्त्तक बनने से पहले स्वय ईसा जॉन से प्रभावित हुए थे। और यहूदियो के लिए वे एक और भी अर्थ मे अध्यापक थे अर्थात् वे यहूदी साहित्य और विधि के प्रामाणिक अर्थ बताने मे पारगत थे। वे घर मे हेब्रू भापा नही बोलते थे क्योकि उनके जन्म से कुछ ही सदी पहले यह केवल एक साहित्यिक भापा बनी थी और वर्तमान सदी तक ज्यो ी त्यो बनी रही। लेकिन अन्य प्रतिभावान यहूदी बच्चो की तरह उन्हे भी केवल धर्म ग्रथो को हेब्रू भापा मे पढाया गया था। इसके बाद उन्हे यहूदी विद्वानो की ऐसी कठिन टीका टिप्पणियो से अवगत कराया जाता था जो पुराने कबायली नियमो और भविष्यवाणियो पर आधारित होते थे। जन्म के बाद पहली बार हम उन्हे यहूदियो के सास्कृतिक जीवन का केन्द्र यरूशलम के मदिर (Temple) के निकट पाते हैं। यहाँ वे बारह साल की आयु से हेब्रू विधि और रीति-रिवाज के चतुर प्रोफेसरो के साथ तरह तरह की टीका टिप्पणियो पर विचार करने लगते हैं और जैसा कि उन्होने स्वय कहा है, उन्होने वहाँ ऐसा अनुभव किया कि उनके लिए परिवार के साथ घर जाने की अपेक्षा वह काम करना ज्यादा महत्त्वपूर्ण था और यही उनका अपना कर्त्तव्य भी था। बाद मे वे इस कठिन विज्ञान से भी ऊपर उठ गये। लेकिन शुरु मे तो उन्हे उसके बारे मे सीखना और गभीरतापूर्वक सोचना पडा। उस तरह के 'अद्भुत बच्चो' को यहूदी लोगो की गहरी शिक्षा परपरा से प्रोत्साहन मिलता है। इन मे से बहुत से बच्चो ने चमत्कारपूर्ण जीवन बिताया है लेकिन उनमे से कोई भी अध्यापक के रूप मे ईसा को पसद नही करता।

उनकी शिक्षा के दो पहलू थे। ये दोनो एक दूसरे से अभिन्न और महत्त्वपूर्ण होते थे। वे अपने विद्यार्थियो को, जिन के नाम से हम परिचित हैं, पढाते थे। इस के अलावा वे यहूदी जनता को पढाते थे। इन मे जितने लोग उन्हे सुन सकते थे, वे सुनते थे। उनके शिष्य हमेशा उनके साथ रहते थे। वे उन्हे सुनते थे, उनको देखते उन्हे समझने की कोशिश करते और उनका अनुकरण करते थे। आँधी तूफान मे वे उनके साथ चलते थे। वे उनके साथ यरूशलम भी गये और कट्टर यहूदियो की तरह पासोवर (Passover) त्यौहार मनाया। उन लोगो को ईसा के साथ गिरफ्तार नही किया गया और न उन्हे मृत्यु दड मिला। स्पष्टत, इसकी वजह यह थी यहूदी अधिकारियो ने यह सोचा कि ईसा को हटा लेने के बाद यह स्कूल आप से आप तितर-बितर हो जायेगा। इन लोगो ने उनके जीवन दड का दृश्य देखा और उस परपम्रा को भविष्य मे भी चलाते रहे। इन्ही लोगो ने यरूशलम में ईसाई चर्च स्थापित किए और उनके जीवन की कथा को सचित रक्खा। ये सब लोग गरीब, साधारण सीधे सादे और नेक आदमी थे। अगर ईसा ने चाहा होता तो उनके ऐसे अमीर और सुशिक्षित विद्यार्थी शिष्य होते जो हेब्रू भाषा में पारगत होते, ग्रीक में निपुण और पारपरिक और ऐतिहासिक रस्मो-रिवाज मे कुशल होते। निकोडेमस और उसी जैसे लोग उनके अनुयायी बने। लेकिन ईसा सीधे सादे विद्यार्थियो को चुनते थे

क्योकि उनकी शिक्षा साधारण लोगो के लिए होती थी और खास कर गरीब और विभ्रान्त लोगो के लिए होती थी क्योकि इन्ही लोगो की सख्या सब से ज्यादा थी।

वे जनसाधारण को भी पढाया करते थे। सुनने मे आता है कि वे यहूदियो की धर्म मडली मे ऐसा किया करते थे। किसी पारपरिक धर्म पडित की तरह वे किसी धर्म ग्रन्थ के किसी अश को पढ कर सुनाते और तब उसका मतलब दूसरो को बताते थे। आजकल भी कोई ईसाई पादरी बाइबल का कोई अश पढाता है और उसका अर्थ समझते हुए धर्मोपदेश देता है तो वह भी उसी हेब्रू परम्परा का पालन करता है जो ईसाई मत के साथ यूरोप और अमेरिका मे आई। लेकिन अधिकतर, ईसा, छोटे-छोटे आख्यान खुली जगहो मे दिया करते थे। अपार भीड उन्हे सुनने के लिए एकत्र होती थी। वे लोग काफी समय तक उनका अनुसरण करते थे और इस दौरान मे वे कभी-कभी अपना खाना-पीना भी भूल जाते थे और केवल इस उम्मीद से उनके साथ चलते थे कि वे कुछ कहे या करे। जाहिर है कि वे हमेशा बोलते ही नही रहते थे। उनका कोई निश्चित कार्यक्रम नही होता था और न उपदेश देने की कोई सावधानी से तैयारी या इन्तजाम ही होता था। जैसा कि पाँच सौ साल पहले यूनानी सोफिस्टो ने किया था या आजकल के पादरी करते हैं। एक बार उन्होने एक नाव के जरिये किनारे पर खडी हुई जनता के सामने भाषण दिया था। उन्होने अपना सबसे विख्यात भाषण एक छोटी पहाडी पर बैठ कर दिया था जहाँ उनके शिष्य उनके इर्द-गिर्द बैठे थे और जनता इधर-उधर बैठी थी। पारपरिक ढग मे धर्म मडलियो मे दिये गये उनके उपदेश सावधानी से एकत्र नही किए गये हैं प्रत्यक्षत यह अनुभव किया गया कि इनमे उन्होने जुदाइज्म (Judaism) के पुराने सिद्धान्तो पर बुरी तरह आक्रमण किया था। नजरेथ (Nazareth) मे एक बार उनके उपदेश के खत्म होते ही सभा उनको मार डालने पर उतारू हो गयी थी। लेकिन खुले मैदान मे वे जो आख्यान दिया करते थे वे अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुए। गिरफ्तार होने के समय तक उनका प्रभाव बडी तेजी से बढता गया क्योकि जब वे पासोवर (Passover) त्यौहार मनाने के लिए यरुशलम मे घुसे तो लोगो की भीड ने उन्हे भगवान का प्रतिनिधि समझ कर अभिनन्दन किया। गॉस्पेल (Gospels) मे उनकी बढती हुई लोकप्रियता का कारण बताया गया है लोग उन्हे सुनने के लिए इसलिए आए क्योकि वे एक मौलिक विचारक की तरह बोलते थे न कि व्यावसायिक विद्वान् की तरह इसका मतलब यह है कि वे कठिन पाठो की बहुत टीका-टिप्पणी नही करते थे और न विवेक के जबर्दस्ती उलझाये गये बनावटी सवालो का ही फल बताते थे। (एक बार सेड्युसिज (Sadducees) ने ऐसा ही प्रश्न एक स्त्री के बारे मे पूछा था जिसके सात पति, एक के बाद दूसरा रहे और स्वर्ग मे वह सातो से मिली थी।) बल्कि वे लोगो को ठोस राय दिया करते थे जिनके आधार पर वे अपने जीवन को सुधार सकें। वे धर्मोपदेश वाली पुस्तकों को ठीक तरह से जानते थे। अक्सर उनके उद्धरण प्रस्तुत किया करते और कभी भी उन्हे न जानने या गलतफहमी की वजह से उन्हे मात खानी पडी हो। फिर भी यह स्पष्ट है कि वे उन सब सिद्धान्तो मे बहुत

आगे निकल गये और उन्होने एक ऐसे सिद्धान्त का निर्माण किया जिसे उन्होने उन सिद्धान्तो का पूरक समझा जो अब तक उनके राष्ट्र का मार्ग निर्देशन कर रहे थे।

उनके इस शिक्षा के प्रसारण का ढँग, जिसके बारे मे हमे उनके धर्मोपदेशको को पढने से ज्ञान होता है, वे मुख्यत चार हैं।

सबसे पहले उनके भाषणो का नम्बर आता है। उनके बहुत से भाषण रेकार्ड नही किए जाते बल्कि फिलस्तीन के यत्र-तत्र स्थानो पर भाषण देते समय सुने जाते हैं। उनके जो भाषण सकलित होते हैं उनकी सबसे उल्लेखनीय बात यह होती है कि वे ठीक ढग से इकट्ठे नही किये गये होते हैं। उनके सग्रह मे शायद ही किसी आयोजन का आभास मिलता है। उनमे कोई नियमित तर्क शैली भी नही होती। उनके विचारो का तारतम्य ऐसा नही होता जिसमे एक निश्चित विचारधारा सयोजित हो सके। "The Sermon on the mount" का आरम्भ किसी रहस्यमय भावना के प्रतिपादन के साथ अनायास होता है। ऐसा करने के लिए एक और भी रहस्यमय कारण बताया जाता है। यही परिपाटी सात-आठ बार दुहराई जाती है और अन्त मे उसे छोड दिया जाता है। भाषण का शेष भाग उतना ही रहस्यमय और अधिक बिखरे वाक्यो से भरा हुआ होता है जिसमे कुछ विचार छोटे-छोटे पैराग्राफो मे एकत्र होते हैं। भाषण का अन्त भी अनायास ही होता है।

अगर हम इसे ध्यान मे पढें तो हमे सही माने मे उसको एक भाषण समझना असम्भव सा लगेगा क्योकि भाषण मे योजना होती है और कोई भाषण देते हुए, वक्ता भावो का एक ऐसा सामजस्य पैदा करने का यत्न करता है जिससे उनका सम्पूर्ण प्रभाव हो सके। साधारण अनुवादो मे उसे कई पृथक एकको मे बाँट दिया जाता है जिसे 'वाक्य" कहते हैं। ज्यो-ज्यो हम उसका परीक्षण करते हैं त्यो-त्यो हमे यह विश्वास होता जाता है कि किस तरह उनकी अभिव्यजना की गयी। महात्मा ईसा जब बैठे तो उनके इर्द-गिर्द उनके अनुयायी एकत्र हो गये क्योकि वे जानते थे कि वे कोई स्मरणीय बात करने जा रहे हैं। भीड उन्हे निहारती रही, वे खडे नही हुए और न उनकी आँखो से आँखें मिला कर किसी चतुराई से तैयार किया गया प्रचार भाषण ही देना आरम्भ किया। चारो ओर घोर मौन का वातावरण था। तब उन्होने बोलना शुरू किया और छोटे-छोटे बच्चो के बीच बैठे हुए अध्यापक की तरह उन्हे 'पढाना' शुरू किया। वे बोले "वे व्यक्ति भाग्यवान हैं जिनका हृदय विनम्र है क्योकि स्वर्ग का ससार उन्ही का होगा" ("Blessed are the humble in heart for theirs is the kingdom of heaven") इसके बाद यह विश्वास करना कठिन है कि वे लगातार बोलते ही गये। अधिक सभावना इस बात की है कि वे पुन चुप हो गये और उनका पहला वाक्य लोगो मे डूब गया और लिखे जाने से पहले कई साल तक लोगो ने इसे याद रक्खा। तब उन्होने एक बार फिर लोगो को शिक्षा दी "वे व्यक्ति भाग्यवान हैं जो शोक मनाते हैं, क्योकि उन्हे सुख मिलेगा" ("Blessed are those who mourn for they will be comforted") इसके बाद

फिर शान्ति छा जाती है और इसी प्रकार धीरे-धीरे और सोच विचार कर महात्मा ईसा ने अपने दूसरे वाक्य पूरा करते जिन्हे एक शिक्षक के कार्य का सम्पादन करते समय उन्हे कई वर्ष से अपने दिमाग में तैयार किया।

पढाई की यह शैली हमारे लिए अजनबी है। कभी-कभी इसको "हितोपदेश" (Gnomic) कहा जाता है क्योकि यूनानी भाषा मे (Gnome) का अर्थ "हितोपदेश" होता है। यूरोपीय परपरा मे यत्र-तत्र यह तरीका मौजूद है लेकिन पूर्वी परम्परा मे इसका अधिक प्राधान्य पाया जाता। बाइबल के अन्य भागो मे हम ऐसा पाते हैं। जैसे जब जौब के मित्र उसको शोकमग्नावस्था में देखने के लिए आते हैं तो सबसे पहले वे एक सप्ताह तक चुप रहते हैं। तब वे बारी-बारी से उससे बातचीत करते हैं और इस बात पर विचार करते हैं कि इस दुर्घटना मे उनका व्यक्तिगत उत्तरदायित्व क्या है ? यद्यपि जौब और उसके तीन मित्र बारी-बारी से उससे काफी देर तक वार्त्तालाप करते हैं लेकिन उनके कथोपकथन को किसी निश्चित विचार रचना के अन्दर शामिल नही किया जा सकता। बहस करने के बदले उनमें मे हर एक किसी बात को ही अनेकानेक काल्पनिक भावनाओ और पटु-शब्दो का प्रयोग करके समझाने का यत्न करता है। उनकी कल्पना करते हुए हम यह नही समझते कि वे क्रोध मे बडबडा रहे है बल्कि हरेक वाक्य को धीरे-धीरे और प्रभावोत्पादक ढग से बीच-बीच मे ठहरते हुए व्यक्त कर रहे हैं। यहूदी धर्मात्माओ के बहुत से उपदेश भाषणो के बारे मे भी यही बात कही जा सकती है। (Ezekiel) के प्रतिरोध, जेरेमियाँ के शोकालाप ईसाइयो के नैसर्गिक विचार सबमे अधिक प्रभावोत्पादक तब मालूम पडते हैं जब उन्हे वैसी ही धीमी गति से पढा जाय जिस तरह सम्राट् बेल्शाजार के महल की दीवारो पर निम्न शब्द लिखे गये थे—

MENE
MENE
TEKEL
UPHARSIN

बाइबल वेत्ता यह बताते है कि चूंकि ईसा के उपदेशो को उनकी मृत्यु के कई वर्ष बाद तक भी लिखित रूप मे सकलन न किया जाना असम्भव-सा जान पडता है इसलिये अब हमारे लिये यह निश्चित रूप से बताना कठिन है कि बाइबल के अलग-अलग टुकडो का कोई सगठित रूप भी था या नही। सम्भव है, ऐसा हो भी। लेकिन सारे देशो मे भी (दूसरे देशो में साहित्य आदि के मौखिक प्रसारण सम्बन्धी अध्ययनो मे) यह पता चल गया है कि बडी और लम्बी काव्य कृतियो का मूल रूप कई पीढियो तक बगैर परिवर्तन के सुरक्षित रह सकता है। हमें ज्ञान है, वे कुछ हद तक टुकडो मे विच्छिन्न है (उनके पृथक् उपदेशो का उल्लेख पृष्ठ १५६-१५७ पर दिया गया है।) और कुछ हद तक वर्गो मे सगठित हैं जैसे "The Sermon on The mount" इसलिए ऐसा मालूम होगा कि सर्मन (Sermon) और इसी

प्रकार के क्रमबद्ध उपदेश उनकी क्रमबद्ध शिक्षा के निकटतम रूपान्तर हैं जिनको उनके विद्यार्थियो की स्मरण शक्ति के द्वारा प्राप्त किया जा सकता था। उनके श्रोता उनके हितोपदेशो की रचना को भली भाँति जानते थे। अगर उनके लम्बे आख्यान सचमुच किसी विस्तृत ढाँचे के होते तो यह असम्भव ही है कि उन्हे पूर्णत भुला दिया गया होता जब कि दूसरी चीजे लोगो को काफी याद थी।

ऑक्सफोर्ड के प्रोफेसर वर्ने और येल के प्रोफेसर टोरे जैसे विद्वानो की नवीनतम रचनाओ से महात्मा ईसा की सम्भाषण शैली के सम्बन्ध मे इस प्रकार के विचारो की पुष्टि होती है। ये दोनो विद्वान् इस बात पर बल देते हैं कि महात्मा ईसा ने आरामेक भाषा का उपयोग किया करते थे। प्रोफेसर वर्ने ने भी उनकी प्रसिद्ध उक्तियो को आरामेक भाषा मे पुन अनुवाद करके ऐसा पाया कि उनमे एक तरह की काव्यात्मक शैली थी जो अक्सर हमारी छन्दबद्ध लोकोक्तियो से जैसे—

Red sky at morning
the sailor's warning—

और हेब्रू उपदेशको और शिक्षको की काव्यात्मक उक्तियो मे मिलता-जुलता होता था। उनका कहना था कि उनमे से कुछ कहावते केवल छन्दबद्ध ही नही होती थी बल्कि उनमें एक लय का आभास भी मिलता था। यदि यह कहना ठीक है तो कहना न होगा कि महात्मा ईसा ने अपनी उक्तियो को इस तरह रचा कि वे सबसे अधिक स्मरणीय बन सकें। उन उक्तियो के महत्त्व को पूर्णतया हृदयागम करने के लिए और श्रोताओ द्वारा याद कर लिए जाने के लिए उन्हे अवश्य ही धीरे-धीरे और लय के साथ बीच-बीच मे काफी ठहर ठहर कर बोला गया होगा। इसलिए महात्मा ईसा ने कोई भाषण या धर्मोपदेश नही दिया जैसा कि हम समझते हैं। अपने वर्षो के आक्लान्त परिश्रम के बाद अपने ज्ञान को जिस सुसगठित और स्मरणीय रूप मे उन्होने सम्भाषण और गीत के माध्यम से व्यक्त किया वही उनका अपनी जनता और ससार को पढाने का तरीका था।

उनके पढाने का दूसरा तरीका पहले तरीके से मिला हुआ था। यह तरीका था किसी महत्त्वपूर्ण उपदेश को कह कर फिर चुप हो जाना। इस तरह की उक्ति, शिष्यो को महत्त्वपूर्ण जान पडती क्योकि स्पष्टत वे काफी समय तक उन पर विचार करते या उनसे उनके चरित्र का सम्पूर्ण परिचय मिलता था। वे समझते थे कि शायद ही कोई दूसरा व्यक्ति ऐसी बात कह सकता था। इसलिए वे उन बातो को याद कर लेते थे। इस तरह की तीन-चार परिस्थितियाँ हमे स्पष्टत दिखाई पडेगी जिनमे ऐसी बातें कही गयी। कभी-कभी ये बातें कठिन प्रश्नो के जवाब देने के लिए कहते जिसका समाधान वे उनसे प्राप्त ज्ञान के आधार पर नही ढूंढ पाते थे या वे आगन्तुक जो, बिल्कुल भौचक्के थे, उनके सामने अपनी कठिनाइयाँ पेश करते और तब वे उनका जवाब देते थे। हम बहुत से ऐसे पूर्वी ऋषियो के बारे मे भी सुनते हैं जो करीब-करीब बिल्कुल उसी ढग से पढाया करते थे कुंग, जिन्हे हम कनफ्युनियस कहते हैं, उन्हे किसी निश्चित वक्तव्य देने की अपेक्षा प्रश्नोत्तर का तरीका

अधिक प्रिय था। कभी-कभी महात्मा ईसा के आलोचक यहूदी विद्वानो के प्रतिद्वन्द्वात्मक तरीके का प्रयोग करके उन्हे नीचा दिखाना चाहते थे। अर्थात् वे उनसे ऐसे टेढे और चातुर्यपूर्ण प्रश्न करते जिससे यह साबित हो जाय कि महात्मा ईसा या तो यहूदी विधि को नही समझते या उसके उल्लघन करने के अपराधी हैं। ऐसे प्रश्नो के बहुत से जवाब लिपिवद्ध हैं। जैसे विधि विशेषज्ञ उनके सामने एक ऐसी स्त्री को पकड कर लायें जिसको व्यभिचार करते समय पकडा गया था। तब वे बोले, "मोजेज के कानूनानुसार इस स्त्री को पत्थर से मार कर प्राणान्त कर देना चाहिए। आपकी इस विषय मे क्या राय है ?" शुरू मे उन्होने इसका कोई उत्तर नही दिया। बाद मे बहुत हठ करने पर उन्होने कहा, "उस स्त्री पर पहला पत्थर आप में से वह आदमी फेंके जिसने अपने जीवन मे आज तक कोई नैतिक अपराध न किया हो।" कभी-कभी महात्मा ईसा किसी मानव स्थिति पर टिप्पणी करते और उसका सही अर्थ अपने श्रोताओ को दरसाते थे, अक्सर ये टिप्पणियाँ बिल्कुल स्कूली (Teacherish) जान पडती क्योंकि वे लोगो की गलतियो का दृढता और स्पष्ट शब्दो मे खडन किया करते थे जैसे उनके शिष्य माता-पिताओ को अपने बच्चो को ईसा के पास लाकर और उनसे आशीष देने को कहने के लिए कोसते थे। तब ईसा अपने शिष्यो को कोसते, उन्हे उनकी गलतियाँ बताते और उनसे कहते कि बगैर एक बच्चे की तरह बने या बच्चो को गोद लेकर आशीर्वाद दिए स्वर्ग पाना सम्भव नही है।

कभी-कभी तो ईसा कोई कहानी सुना कर उपदेश देते थे। अक्सर वह कहानी स्वय ही बहुत रोचक होती थी और प्राय किसी धार्मिक या नैतिक भावना का प्रतिपादन करती थी। लेकिन हमेशा वह उस उपदेश का ठीक-ठीक व्यवहार नही समझते थे। कभी-कभी वह सिर्फ अपने शिष्यो को ही समझाते और कभी-कभी ये सारी बाते उन्ही पर छोड देते थे और अक्सर वह उपदेश या तो बहुत गूढ होता या उसके कई भ्रामक अर्थ निकलते थें या वह बहुत ही कठिन और अप्रत्याशित होता था। ऐसे उपदेशो की शिक्षा देने के केवल दो ही तरीके हैं। एक तो काफी विचार-विमर्श से, जिसमे काफी वाद-विवाद, स्पष्टीकरण और अपवादो की भरमार हो जिससे उस उपदेश का प्रभाव कम हो जाय। दूसरा तरीका वह है, जैसा कि ईसा स्वय शिक्षा देते थे। इसमे उनको निर्मल और स्मरणीय एकरूपता देकर प्रस्तुत किया जाता है (ऐसा करते हुए ईसा प्लेटो से मिलती-जुलती विधि का प्रयोग करते थे जिसमे प्लेटो ने किसी अग्राह्य और अस्पष्ट बात को समझाने के लिए काव्यात्मक रचनाओ का प्रयोग शुरू किया था।)

इसके साथ हम महात्मा ईसा की शिक्षा देने की तीसरी विधि पर आते हैं। सभी महान् अध्यापको की तरह ईसा भी जानते थे कि एक चित्र का महत्त्व हजारो शब्दो के बराबर होता है और लोग किसी काम को अपने हाथो करके या दूसरो को करते हुए देखकर बडी आसानी से सीख लेते हैं। इसलिए उन्होने अपने सभी उपदेशो के साथ-साथ कुछ ऐसे आचरणो का समावेश किया जिनका कुछ अर्थ था। वे प्रतीक या धार्मिक संस्कार थे। जैसे उन्होने विवाह या मद्यपान के विषय मे बहुत ही कम चर्चा की। लेकिन उनके बारे मे ज्ञान

के धर्मोपदेशो मे वर्णित पहली अद्भुत वात किसी विवाहोत्सव मे मदद करने के लिए शराब बनाने का उल्लेख है। इससे और दूसरे अधिक स्पष्ट तरीके से उनके विवाह और मद्यपान को निषिद्ध बताने का सकेत और क्या हो सकता है और बन्दी बनाये जाने से पहले अन्तिम उपदेश, जो उन्होने अपने शिष्यो को दिया था वह सस्कार से सबद्ध है जिसमे रोटी और शराब को मिलाकर खाने का उल्लेख है और उस सस्कार को उन्होने एक गूढ और अमर अर्थ से रजित किया। इस तरह के बहुत से सकेत उनके जीवन मे मिलते हैं। यह बात याद रखने लायक है कि किसी तरह वे सूदखोरो को चाबुक से मार कर गिरजाघर से बाहर निकालते हैं और जब व्यभिचारिणी उनके पास लायी जाती है और उस पर दोषारोपण किया जाता है। तो वे अपने नाखूनो से धूल पर कुछ लिखने लगते हैं। इनमे से बहुत सस्कार इतने स्पष्ट हैं मानो हमने अपनी आँखो से देखा हो और ईसा द्वारा बनाये गये, अतिम रात्रि को भोज का सस्कार तो दुनिया मे कही न कही प्रतिपल मनाया जाता है।

प्रचार उनके अध्यापन का चौथा तरीका था। जब उनके शिष्य यथाशक्ति उनके उपदेशो को सीख गये तो उन्होने उन्हे फिलस्तीन मे चारो ओर घूम-घूम कर प्रचार करने के लिए भेजा। ऐसा बहुत ही कम अध्यापक करते हैं भले ही उनका सवाद धार्मिक भावनाओ से ओत-प्रोत ही क्यो न हो। इसके विपरीत वे हर एक क्लास की शिक्षा तक सीमित रखने लगते हैं और हर एक क्लास के साथ एक छोटे, मुहरबद समाज का सा व्यवहार करने लग जाते हैं। सुकरात अपने उपदेश उन सभी व्यक्तियो को देते फिरते थे जो उनके प्रश्नो का जवाब देने की इच्छा व्यक्त करता था। उनके ऐसे शिष्य थे जिन्होने उनके सिद्धान्तो और विधियो का उपयोग किया। लेकिन हमे यह बात कभी सुनने मे नही आती कि उन्होने अपने मत और सिद्धान्तो का प्रचार करने के लिए दूत भेजे हो। प्लेटो का एक कालेज था। उसमे विद्यार्थी शिक्षा के लिए आया करते थे और उसके बाद उसे छोड देते थे। कभी-कभी तो वे जाकर अपने अलग कालेज स्थापित करते। अरस्तु का भी एक कालेज था। प्लेटो की तरह, वे शिक्षा को दो प्रकार का समझते थे। एक वह "गौण" शिक्षा जो केवल उनके विशिष्ट सुशिक्षित विद्यार्थियो तक सीमित हो और दूसरी "सर्वोपयोगी" जो आम जनता के लिए होती थी। लेकिन दोनो मे से कोई भी अपने विचारो के प्रसार के लिए शिक्षको को उत्साहित नही करता था। लेकिन हम सुकरात, प्लेटो या अरस्तु के बारे मे मुख्यत इस वजह से जानते हैं क्योकि उनकी कृतियो के अलावा उनके परिसवाद और लेक्चर नोट (Lecture Note), उनके विद्यार्थियो के पास मिले। महात्मा ईसा की शिक्षाओ के विलक्षण प्रभाव का मुख्यत कारण यह है कि उन्होने ऐसे शिक्षक प्रशिक्षित किए जो उनकी शिक्षाओ का प्रसार कर सके और दूसरे अध्यापको का पढा सके। चाहे वह कोई पादरी हो जो अगले सप्ताह मे क्या उपदेश देना है उसकी तैयारी कर रहा हो या फिलिपाइन मे कोई साध्वी स्त्री सिलाई सिखा रही हो, स्वीट्जर अपने जगल वाले अस्पताल मे बैठे कुछ लिख रहे हो या कोई माँ अपने शिशु को प्रार्थना करना सिखा रही हो—ये सभी लोग ईसा मसीह द्वारा चलाया हुआ अपने कुछ खास भक्तो को शिक्षा देने की परम्परा का वही स्पष्ट और

अटूट रूप है जो आज से सत्तर पीढियो पहले शुरू हुई थी ।

ईसा के बारह चुने हुए शिष्यो मे जुडास इस्कारियट नामक एक व्यक्ति भी था जिसने ईसा को बदी बनाने में यहूदी अधिकारियो की सहायता की थी। "पासोवर" (Passover) पर आयोजित भोज के समय ईसा ने इस बात का उल्लेख किया था यद्यपि उन्होने उस विश्वासघाती का नाम नही बताया। हमे इस बात का पता नही लगता कि ईसा को बन्दी बनाये जाने से कुछ ही घटे पहले, उनको इस बात का ज्ञान हुआ।

शिक्षा कार्य के सदर्भ मे यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और कठिन प्रश्न तथा एक स्मरणीय घटना है। किसी अच्छे अध्यापक के बुरे शिष्य क्यो होते हैं ? ईस स्वय अत्युत्म अध्यापको मे से थे, फिर भी उनका शिष्य सबसे बुरा कैसे हुआ ?

इसका कारण यह नही था कि जुडास मे ईसा के सद्गुणो को परखने की क्षमता नही थी। सच तो यह था कि उसने ईसा के उपदेशो को समझने का कष्ट नही किया और तब सारी सद्भावनाओ को भुलाकर दूसरो की तरह व्यवहार करने लगा। पीटर की तरह उसका विवेक सकट ग्रस्त नही हुआ। उसने विमुख होकर एक प्रतिकूल मार्ग अपनाया और उसका दृढता और प्रभावपूर्ण ढग से अनुसरण किया। इस बात को सिद्ध करने के लिए आप उसके उस ढग पर गौर करें जो उसने पुलिस को ईसा को बन्दी बनाने मे मदद पहुँचाने के लिए अपनाया। उसके गुरु का एक मुख्य उपदेश यह था कि सभी लोगो को एक दूसरे से प्रम और परस्पर विश्वास करना चाहिए। इसी लिए जुडास ईसा की ओर हाथ उठाने या उनके बगल मे जाकर खडा होने के बजाय ऊपर बढा और जाकर उन्हे चूम लिया।

जुडास (Judas) की यह कथा अद्भूत् है और यह सैकडो मे एक है। सुकरात के पास भी कुछ अपेक्षाकृत बुरे विद्यार्थी थे। उसके सबसे प्रतिभाशाली विद्यार्थियो मे सबसे विद्वान एल्सिबियाडिस (Alcibiades) था। वह सुकरात का बडा जिगरी था, जो मुक्तकठ से उनका प्रशसक था। उसने अपने देश के साथ दगाबाजी की, अपने शत्रु, स्पार्टनो से जा मिला, उन्हे भी धोखा दिया, एथेन्स वापस आया और एक बार फिर वहाँ से चला गया स्पार्टा की रानी को भ्रष्ट (Seduction) करने और अपने देश के राज्य धर्म के विरोध करने जैसे निकृष्ट जीवन बिताने के बाद मार डाला गया। लेकिन उनके दूसरे विद्यार्थी भी थे जैसे क्राइटियस (Critias), जो "तीस आक्रमको" (Thirty Tyrants) मे एक था जिनको एथेन्स की पराजय के बाद स्पार्ट (Sprta) की तरफ से रखा गया था, जिसने वहाँ के लोकतत्री राज्य को दबाने की कठोर कोशिश मे सैकडो नागरिको को सता-सता कर उनकी हत्या की। सुकरात की निदा मे वास्तविक वैसी जनता से मिला जिनको सुकरात ने लोकतत्र मे घृणा करना सिखाया था और जिसमे वे नफरत करते थे। निश्चय ही उनके दूसरे विद्यार्थी भी थे लेकिन उनमें से जो शान्तिकारी बने वे उनके सबसे प्रतिभा-शाली थे। हम इस बारे मे कोई निश्चित धारणा नहीं बना सकते कि सुकरात की उन विद्यार्थियो के बारे मे क्या धारणा थी। प्लेटो से हमें मालूम होता है कि वे विद्यार्थी

युवा और स्वभाव से भले थे, जो दूसरे प्रभावो के सम्पर्क मे आकर बिगड गये थे और एक समय तो ऐसा आया जब वे बुरे जीवन मे पूर्णतया पदार्पण कर चुके थे और सुकरात का उन विद्यार्थियो से कम लगाव था। लेकिन ऐसा लगता है कि बहुत लम्बे अर्से तक उनमे परस्पर नजदीकी लगाव था। वे (विद्यार्थी) उस हद तक गलती क्यो करते रहे ? क्या वह वे यूनान के सबसे अच्छे अध्यापक थे जैसा कि प्लेटो और दूसरो की धारणा थी या क्या सचमुच एक ऐसा व्यक्ति था जो आरोपानुसार युवको को पथभ्रष्ट करता था ?

शिक्षा का इतिहास बडी-बडी असफलताओ से उसी तरह भरा पडा है जैसे किसी कठिन जलमार्ग के नकशे मे घटना स्थलो का उल्लेख होता है। अगर आप रोमन साम्राज्य पर दृष्टिपात करें तो आपको और भी दूसरे दृष्टान्त मिल सकते हैं। उनमे से नीरो (Nero) का भी एक है। वह एक ऐसी राजकुमारी का बेटा था जिसको उसके दूसरे पति, सत्तारूढ सम्राट् क्लाउडियस, ने गोद लिया था। गद्दी का उत्तराधिकारी होने की हैसियत से उसकी शिक्षा बडी सावधानी से की गयी थी। उसकी देखरेख विद्वान, चतुर वक्ता, लेखक और अनुभवी दरबारी सेनेका करता था जो स्टेइसिज्म अर्थात् आत्म सयमवाद हिमायती और दार्शनिक भी था। कहने का मतलब यह कि वह कर्तव्यपरायणता के सिद्धान्त पर आधारित कठोर नैतिक नियमो का हिमायती था। फिर भी वह यथार्थवाद से विमुख न होने के कारण उन सिद्धान्तो के बारे मे ज्यादा सकुचित दृष्टिकोण नही रखता था। एक अनुभवी सैनिक और प्रशासक की सहायता से सेनेका वर्षो तक उस युवक राजकुमार की शिक्षा दीक्षा बहुत ही सावधानी और कुशलता से करता रहा। उसने उस राजकुमार को नैतिक बातो के मौलिक ज्ञान से पारगत कराया और साथ ही साहित्य और कला के बारे मे भी काफी ज्ञान हासिल कराया। जब बूढा सम्राट् मर गया तब सेनेका ने एक बहुत ही उत्तेजक उपहास लिखा। उसने अपने स्वर्ग में जाने के प्रयत्न और वहाँ से धकेल कर निकाल दिये जाने का वृतान्त लिखा था। इस उपहास का मकसद स्पष्टत नीरो के राज्याभिषेक समारोह के अवसर पर पढने का था और उसने नौ खूनी और सनसनीखेज दुखान्त लिखे जिसका, कुछ लोग कहते हैं, खास मकसद यह था कि वे नाटक नये सम्राट् के व्यक्तिगत नाटचशाला मे खेले जायें और वह नाटक प्रिय राजा स्वय उनमे एक पात्र बने। शुरू में तो इन सब बातो से सावधानी बरतने के परिणाम तो बहुत ही अच्छे थे। नीरो के शासन-काल के पहले पाँच वर्ष की सर्वत्र प्रशसा हुई। सामाजिक न्याय, उचित वित्त व्यवस्था, बडे-बडे जनहितकारी कार्य तथा और बहुत सी बाते नीरो की अपनी दिलचस्पी और उसके सलाहकारो के निर्देशन के परिणामस्वरूप हुईं। इसके बाद उसकी अधोगित शुरू हो गयी। करीब बाइस साल की उम्र के बाद वह हर साल क्रमश बिगडता गया। उसने अपने शिक्षक सेनेका को अवकाश दे दिया। अपनी पत्नी को तलाक देकर बाद मे उसे मरवा डाला। उसने अपनी माँ की भी हत्या करवा दी। उसने एक बेहूदा और भ्रान्तिपूर्ण जीवन अख्तियार किया। उसने सभी अच्छे प्रभावो की अवहेलना की, कर्तव्यविमुख हो गया, अपने साम्राज्य का सत्यानाश किया, अपने विरुद्ध विद्रोह को भडकाया और यह सब करने

के बावजूद उसे इतनी हिम्मत न हुई कि वह आत्महत्या करे। और उसके शिक्षक, सेनेका का क्या हाल हुआ, यह सुनिये। कई साल पहले ही उसने उसे फाँसी की सजा दे दी थी उसी तरह जिस तरह उसने अपने और हितैषियो से किया।

वह पथभ्रष्ट क्यो हुआ ? क्या इसका केवल यह कारण था कि एक सम्राट की अपार शक्ति ने उसे अधा बना दिया था ? नही, ऐसा कदापि नही हुआ क्योकि दूसरो ने बुद्धिमत्ता से इसका उपयोग किया था। तब इसका कारण यह है कि ये सब चीजें अकस्मात् ही मिल गयी। नही, ऐसा भी नही हुआ क्योकि वर्षो से विशेष ज्ञान से उसे प्रशिक्षित किया था। तब क्या यह कारण हो सकता है कि उसे गलत शिक्षा मिली थी ? या शायद सेनेका ने उसे स्वच्छद जीवन व्यतीत करने को उत्तेजित किया था जिससे उससे निबटने मे सुविधा हो ? नही, ऐसा सुनने मे नही आता कि बात इस तरह की थी। बल्कि इसके विपरीत सभी परिणाम यह सिद्ध करते हैं कि नेरो को एक उच्च स्तर की नैतिक और कुशल शिक्षा मिल थी।

एक छोटे पैमाने पर इतिहास में बहुत-से और भी व्यक्ति सैकडो, हज़ारो या उस से भी अधिक सख्या मे युवक युवतियो के रूप मे मिलेंगे जिनमे प्रतिभा थी, स्वास्थ्य था, सुरक्षा थी और उन्हे ऐसे अध्यापको से शिक्षा मिली थी जो उन्हे समझते थे और उनके सम्पर्क के व्यक्ति ऐसे थे जो उन्हे प्यार करते थे और इन सब बातो के बावजूद उन लोगो ने सारी चीज़ें तहस-नहस कर दी। मदबुद्धि होना ही केवल महत्त्वपूर्ण नही होता। बहुत ही रुपये-पैसे खर्च करके पढाई गयी लडकियाँ, जो आगे चलकर थोथी और खेलकूद (Bridge fiends) मे खराब हो गयी और ऐसे घर पर अध्यापक रखकर पढाये गये और खूब चाव से सिखाये गये नवयुवको का दृष्टान्त भी इस बात को सिद्ध करता है जो किसी अच्छी से अच्छी यात्रा पूरी करने पर भी कुछ नही सीख सके। इस तरह की महत्त्वहीन असफलताओ का अच्छा उदाहरण, चेस्टर फील्ड का बेटा था। ऐसे व्यक्ति की तुलना बजर ज़मीन, पतले और रेतीले बगीचे या पिछडे इलाको मे की जा सकती है। नही, महत्त्वपूर्ण समस्या तो यह है कि क्योकर सचमुच ही प्रतिभाशाली व्यक्ति नेरो और जुडास (Judas) की तरह अच्छी से अच्छी शिक्षा पाने के बाद भी पूर्णतया असफल हो जाय।

अध्यापको और माता-पिताओ के लिए एक बडी कठिन समस्या है। इतनी विषम समस्या को सुलझाने के हमारे पास दो साधन हैं। पहला तरीका इस बात का पता लगाना है कि कौन-कौन से प्रश्न अब तक सुझाये गये हैं और तब उन पर विचार करना, एक दूसरे से तुलना करना और एक कमी को दूसरे के जरिये पूरा करना ठीक होगा। दूसरा तरीका यह है कि यह पूछा जाय कि क्या वही समस्या किसी दूसरी शक्ल मे सामने आती है या नही और उसके उस समय सुझाये गये हल अब लागू होते हैं या नही।

इन प्रश्नो के जो उत्तर मिलते हैं वे अधिक उपयोगी नही होते। जुडास ने ईसा मसीह से विश्वासघात क्यो किया ? नेरो (Nero) ने अपने अध्यापक की हत्या क्यो की ? आल्सीबायडेस (Alcibiades) ने सुकरात के सम्मानित गुणो अर्थात् चरित्र, सदाचार,

देशप्रेम आदि गुणो को क्यो ठुकराया ? स्वय जुडास को भी इसका ज्ञान नही था। अपना काम पूरा करने के बाद ही उसे मालूम हुआ कि उसने गलती की थी। वह जानता था कि अब बात बन नही सकती और वह यह भी जानता था कि इस बात का उसने जो घूस दिया था, उससे उसका कोई सम्वध नही था। फिर भी, वह यह नही वता सका कि ऐसा काम उसने क्यो किया।

जहाँ तक नेरो का प्रश्न है, उसका कहना था कि मेनेका का उसके विरुद्ध पडयन्त्र मे हाथ था। लेकिन क्या वह हृदय से इस बात में विश्वास करता था ? जव उसने सेनेका को कार्यभार से मुक्त कर दिया और उसका अपमान किया तव क्या वह अपने आप को केवल किसी प्राणघातक कुचक्र से ही वचा रहा था—ऐसा कुचक्र जो एक ऐसे वृद्ध व्यक्ति ने रचा था जो कई वर्ष तक कभी भी अपनी स्वेच्छा से जव चाहे उसकी हत्या कर सकता था ?

आल्सीवायडस (Alcibiades) के वारे मे उसके करतूतो के सिवा और किसी वात का व्यौरा नही मिलता। लेकिन उसके सहपाठी,प्लेटो के ज़रिये उस समस्या की महत्त्वपूर्ण व्याख्या मिलती है जो प्रत्यक्षत उनके मानसपटल पर अकित थी। व्यवहार रूप में उनके कहने का मतलव यह था कि सभी तरह के विद्यार्थी, जिनमे वहुत से दव्वू (Mediocrities) शामिल हैं, गलतियाँ कर वैठते हैं। लेकिन वाद मे वे कहते हैं कि दर्शन शास्त्र अन्य शिक्षा से कही अधिक कठिन होता है। सुकरात के एक अच्छे शिष्य वनने के लिए असाधारण प्रतिभा की आवश्यकता होती है। इसलिए जव, उस तरह का कोई शिप्य अपने मार्ग से भटक जाये तो उसका भटकना एक खास तरह का भटकना होता है क्योकि वह अपनी असाधारण प्रतिभा को वुरे कामो मे लगाता है। याद रक्खे कि प्लेटो न केवल मानसिक शक्ति के बारे मे ही सोचता था वल्कि दूसरी योग्यताओ का भी विचार रखता था जिनके जरिये एक असाधारण व्यक्तित्व निर्मित होता है—जैसे शारीरिक और आध्यात्मिक शक्ति, प्रखर और प्रशस्त आत्मशक्ति, सामाजिक साहचर्य और शरीरिक तेज गठन और सुन्दरता। जव कोई नवयुवक या युवती जिसमे इन महान् गुणो का प्राचुर्य हो, भटक जाये तो उसका रास्ता भूलना टेढी खीर होती है।

प्लेटो ने एक दूसरा समाधान बताया है, जो कुछ अश तक विल्कुल सही है। उनका कहना है कि ऐसे प्रतिभासम्पन्न विद्यार्थी को योग्यतापूर्वक पढाना एक भयानक कठिनाई है क्योकि बुरे प्रभाव उनका ध्यान आर्कषित करने को अधिक आतुर होते हैं। जहाँ तक लागू हो वहाँ तक यह बात बिल्कुल बावन तोले पाव रत्ती ठीक है। प्रत्यक्षत, यदि सेनेका प्रयोगशाला की सी परिस्थितियो मे नेरो को प्रशिक्षित कर सके होते तो उन्हे अधिक सफलता मिली होती लेकिन वे उस राजकुमार पर दिन रात थोडे ही निगरानी कर सकते थे ? मान लीजिये, कि ऐसा करना उनके लिए सभव भी होता फिर भी, वैसा करने के लिए उन्हे कहना न्यायसगत ही होता आप कहाँ तक नियन्त्रण की शिक्षा दे सकते हैं जब राजमहल की हरेक सुन्दर दासी महाराज की निगाहो के लिए और उनके हाथो के स्पर्श के लिए तरसती रहती हो ? कहाँ तक आप उनकी फज़ूलखर्ची को रोक सकते हैं जब

महल के कमरे ऐसे दरबारियो से भरे हो जो अपनी सारी सम्पत्ति को बेचकर महाराज की इच्छाओ की पूर्ति के लिए कोई भी चीज ले आने को तत्पर हो।

कोई सौहार्द कैसे सीखे चाहे सेनेका से ही क्यो न हो जब कि राज्य मे हरेक भद्र व्यक्ति के बारे में कानाफूसी की जाती है, बड़ी जायदाद को खसोट लेने के सुझाव दिए जाते हैं और दूसरो को कष्ट पहुँचाकर मिलने वाले सुख का वर्णन किया जाता है ?

यह केवल अशत ही ठीक है लेकिन क्या यही एक मात्र उसकी व्याख्या है ? क्या यही सारी सच्चाई है ? क्या हम समझते हैं कि इससे सारी बाते मालूम हो जाती हैं ?

नही, सारी बातें मालूम नही होती। हम समझते हैं कि जुडास और नेरो जैसे व्यक्ति, जो अपने अध्यापको का विरोध करने लग जाते हैं वे केवल दूसरे प्रभावो से ही एक मात्र पथभ्रष्ट नही होते। वे केवल अपने रास्ते से भटक नही जाते बल्कि वे अपने अध्यापको की बातो से बिल्कुल विमुख होकर दूसरी दिशा मे चलने लग जाते हैं। वे केवल अपने अध्यापको से छुटकारा ही नही पाते और अपने पाठो और सम्मानित व्यक्तियो को भुला ही नही देते बल्कि वे जानबूझ कर अपने अध्यापको पर आघात करते हैं और यह चाहते हैं कि उन पर और उनकी बातो पर विजय पा जायें। अब हमे जिस समस्या को सुलझाना है वह है अपूर्व प्रतिभा और भलमनसाहत वाले अध्यापको के साथ अक्सर ऐसा क्यो होता है ?

सभवत, हम यह बात पूछकर इस समस्या को सुलझा सकते हैं कि क्या दूसरे किसी रूप मे यह समस्या हमारे सामने आती है ? ज्योही हम इस बात पर विचार करते हैं हमें यह ज्ञात होता है कि सचमुच यह समस्या दूसरे रूप मे हमारे सामने उपस्थित होती है।

हमने देखा है कि बहुत से सबसे अच्छे स्कूलो से जिनकी परम्पराएँ बहुत अच्छी और ऊँची हैं, दुष्ट और बेहूदे विद्यार्थी निकलते हैं, यह वही ढाँचा है। वे बिल्कुल भोंदू ही नही निकालते बल्कि वे ऐसे विद्यार्थी पैदा करते हैं जो तेज होने पर भी बुरे होते हैं। प्राय उनमे ऐसे गुण रह जाते हैं जो उनको स्कूल मे सिखाये गये होते हैं। ये गुण एक सामाजिक ढग, हजामत की बनावट या वस्त्र पहनने का फैशन हो सकते हैं, यह इतना उलझा हुआ सम्पूर्ण बौद्धिक दृष्टिकोण हो सकता है जैसा जेसुइट्स ने अपने शिष्य वाल्टेयर को दिया था। लेकिन शेष सभी बातो मे वे विद्रोही जैसे हैं। स्कूल मे उनको शिक्षित करने की जो भी कोशिश की जाती है वे उन का विरोध और उनकी अवहेलना करते हैं। कभी-कभी वे स्कूल के रीति-रिवाजो, नियमो और वहाँ के लोगो का मुँह चिढाकर इतना विस्तार सहित मजाक उडाते हैं कि बाहर वालो को यह बिल्कुल भद्दा लगता है यद्यपि उनको यह आवश्यक जान पडता है। कभी-कभी जब वे किसी बात को लिखने मे असमर्थ होते हैं, उस समय वे स्कूल का दूसरे ढग से अपमान करना चाहते हैं। उनके सम्पूर्ण व्यवहार मे अनिवार्य रूप से स्कूल की ही चर्चा होती है। मालूम होता है कि

वे स्कूल से प्रेम और घृणा दोनो करते हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह जजीर मे बधा हुआ कुत्ता, जजीर को तोडने मे असमर्थ होने के कारण उसको खीच-खीचकर खेलता भी है और तोडने का प्रयास भी करता है।

इससे ऐसा जान पडता है कि इस समस्या की जड सामान्य वुद्धिसगत व्यवहार से कही अधिक गहराई तक जाती है। वहुत से लोग अपने पुराने स्कूल और पुराने अध्यापको से घृणा करते हैं। शायद साल दो साल मे जव वे अपने स्कूल की स्मृतियाँ याद करते हैं तो वे यह सोचते हैं कि "भगवान का वहुत-वहुत शुक्र है कि यह सव खत्म हुआ।" लेकिन स्कूल की घटनाएँ हमेशा उनका पीछा नही करती और सपनो मे उन्हे तग भी नही करती। जीवन मे भी वे घटनाएँ इतनी प्रवल नही होती कि उन्हे ऐसे काम करने पर वाध्य करें जिससे उसका घोर तिरस्कार हो, प्रचार किया जाये या ऐसी समाज व्यवस्था को तहस-नहस कर देने की भावना जगाये जिससे ऐसे स्कूलो का नाम-निशान मिट जाये। वे इन सभी वातो को भूल जाते हैं। लेकिन कुछ स्कूल और कालेजो के वुरे या विद्रोही विद्यार्थी ऐसी प्रवल और गहरी भावनाओ से ग्रस्त मालूम पडते हैं कि उनका यह रोग एक आध्यात्मिक रोग मालूम पडता है। क्या यह रोग और भी किसी तरह मुखरित होता है ?

हमने इनको दो रूप मे देखा है। एक तो यह कि विद्यार्थी अपने अच्छे अध्यापक के विरुद्ध विद्रोह करते हैं और दूसरा यह कि विद्यार्थी अपने पुराने स्कूल से विद्रोह करते हैं। तो क्या यह विद्रोह मौलिक दृष्टिकोण से वच्चो द्वारा अपने पिता से किये जाने वाले विद्रोह से अधिक भिन्न है ? निश्चय ही नही। उन पर विचार करते समय, विना इस वात पर सोचे कि वहुत से वच्चो ने, जिनका लालन-पालन उनके चतुर और अच्छे पिता ने किया है, अपना सारा जीवन स्वय अपने और अपने परिवार की वदनामी करने मे व्यर्थ गँवा दिया है। यही नही वे ऐसी वुरी और अपमानजनक हरकतें वार-वार दुहराते हैं जिनसे इसी वात का परिचय मिलता है कि वे अपने पिता का अपमान करना और उनका नाश करना चाहते हैं। यह भी शिक्षा की एक समस्या है। निश्चय ही यह सवसे विकट समस्या नही है लेकिन इसमे सन्देह नही कि यह समस्या सवसे अधिक कष्टदायी होती है क्योकि इसको समझना सबसे कठिन होता है।

यदि इसका उद्देश्य केवल सत्ता (Authority) से विद्रोह होता तो यह समस्या साधारण होती। सभी युवा सत्ता के विरोधक होते हैं। वे इसको आतक समझते हैं। यदि सत्ता सचमुच आतकवादी हो तो वे अक्सर उसके बचाव के लिए कदम उठाते हैं। यदि उनका पिता स्वाभिमानी और क्रूर नवाबशाही स्वभाव का व्यक्ति है और वह इस बात में विश्वास करता है कि उनका बेटा उनका दास या हूवहू उनकी नकल (Carbon copy) का बने तो उनका बेटा या तो दास स्वभाव या दूसरो का अनुकरण करने वाला बन जायेगा या वह जोर से उनका विरोध करेगा, घर बार छोड देगा, पिता की छडी को हाथ

से छीन लेगा और उनकी पिटाई करेगा। वैसे बाप को जैसा व्यवहार मिलता है वैसा ही मिलना चाहिए।

लेकिन दुखदायी घटनाएँ इससे कही अधिक उलझी हुई और कठिन है। इनमें पिता पुत्र के साथ अधिक निर्दयी और आतकी नही होता। वह भद्र और विचारकुशल होता है। वह अपने बेटे पर अपनी इच्छाएँ थोपना नही चाहता। वह उसका पथ-प्रदर्शन करता है न कि उसको हाँकना चाहता है। वह चाहता है कि उसका बेटा सुखी और सम्पन्न बने। कोई आवश्यक नही कि उसी पथ का अनुसरण करके जिसका उन्होने अनुसरण किया बल्कि किसी भी रास्ते पर जिस पर उनका बेटा चलना चाहता हो। जब कभी इच्छाओ का सघर्ष होता है तो उसमे पिता साधारणत विजयी नही होता। अक्सर वह जिरह में आधा मैदान ही मार पाता है। अधिकतर देखा जाता है कि बाहरी सतह पर उनमे कोई वास्तविक सघर्ष नजर नही आता। पारिवारिक वातावरण नियमित लडाई-झगडो में तनाव नही होता। साधारणत, यह वातावरण शान्त और उचित होता है और बाहर से देखने मे भला मालूम पडता है। लेकिन ऐसा होने पर भी उस परिवार मे बहुधा ऐसे पुत्र होते हैं जो प्रत्यक्षत बिना प्रेरणा पाये ही और बिना विवेक के अपने माता-पिता का अपमान करने लग जाते हैं। यही उनके जीवन का उद्देश्य बन जाता है। दूसरे नवयुवक कठिन परिश्रम या जी ऊबने वाले काम से भडक जाते हैं क्योकि उन्हे स्त्रियाँ या जुआ अधिक प्रिय होते हैं। इन नवयुवको के लिए कोई ऐसा सीधा-साधा सिद्धान्त नही जो उनका पथ निर्देशन करे। वे जीवन मे केवल भटकते रहते और अपने जीवन और भविष्य को अन्धकारमय बना देते हैं। यह बर्बादी उतनी हास्यास्पद और दुखदायी मालूम होती है मानो किसी गिरजाघर या स्कूल-रूम को कुछ शरारती बच्चो ने तहस-नहस कर दिया हो, उसकी कुर्सियाँ तोड दी हो, दीवारो पर स्याही बिखेर दी हो, चीजो को उलट-फेर कर बर्बाद कर दी हो। यह बर्बादी निरुद्देश्य और निरर्थक मालूम पडती है लेकिन वास्तव मे यह अभिप्रायहीन नही होती। किसी युवा व्यक्ति का प्रत्यक्षत बहका हुआ और विवेकशून्य व्यवहार और आनन्दहीन खिलवाड अपने जीवन को सुलभ बनाने के उद्देश्य से नही बल्कि अपने पिता या उनके जीवन से सम्मिलित अपने जीवन को बिगाडने के उद्देश्य से किया जाता है। अक्सर लडका यह नही समझ पाता कि उसके साथ क्या हो रहा है। पिता तो अधिकतर यह बात कभी नही समझ पाते। फिर पिता और पुत्र दोनो ही नुकसान उठाते हैं और उनकी प्रतिभा और जीवन का ह्रास होता है।

शेक्सपियर, जिसने पिता पुत्र के सम्बन्धो के बारे मे काफी विचार किया था इस समस्या को लेकर अपने अत्युत्तम नाटको की रचना की है। उसने हमारे सामने एक ऐसे पिता का चित्र उपस्थित किया है जिसने बडे परिश्रम और शक्ति से एक उच्च स्थान प्राप्त किया है। वह पिता अपने पुत्र मे बहुत प्यार करता है और उसे आशा है कि पुत्र उसकी जिम्मेदारियो और सफलताओ को प्राप्त करेगा। उसका पुत्र प्रतिभावान और सुन्दर तथा

वहादुर और फुर्तीला है। लोग समझेंगे कि उसके लिए अपने पिता का पदानुसरण करना सुखदायी होगा। इसमे कोई ज़ोर जवर्दस्ती नही है। वह जैसा चाहे कर सकता है। यदि वह खेलना चाहता है तो वह घर पर बैठकर खेल सकता है, यदि शिकार खेलना चाहे तो शिकार के दिनो मे सारा हफ्ता शिकार खेलने मे विता सकता है या दूसरी वातो मे समय गँवाता रह सकता है। लेकिन वह वदमाश बनना पसन्द करता है। इस काम मे वह एक नौसिखिया ही है लेकिन वह एक सिद्धहस्त आवारा वनने के सन्निकट है। उस का सवसे अच्छा मित्र एक बूढा और कृष्णकाय वदमाश है जिसने अपनी सारी जिन्दगी अपनी जायदाद को वेचकर शराव पीने मे लगा दी और वचे खुचे लक्षणो के सहारे जी रहा है। वह अपने पिता, हेनरी चतुर्थ, की अपेक्षा फौल्सटाफ से अधिक सन्निकट रहता है, यहाँ तक कि वह फौल्सटाफ को पिता से ही अधिक मिलता जुलता समझने लगता है और वह उस से इस तरह हँस-वोलकर वाते करता है जैसा वह अपने पिता से नही कर सकता और उसे उसी तरह चालाकी से और वेवकूफ वनाकर उसकी मिट्टी पलीत करता है जिस तरह वह अपने पिता के साथ भी करना पसन्द करता है। ज्यो-ज्यो यह नाटक आगे वढता है त्यो-त्यो युवक की त्रुटी को समझने में कठिनाई वढती जाती है। उसने अपने सुअवसर क्यो गँवाए ? अपने पिता को तकलीफ पहुँचाने की इच्छा क्यो की ? वह कहता है कि वह ऐसा इसलिए कर रहा है ताकि उसे अपने पतन के वाद फिर से ऊपर उठने मे उतना ही अधिक श्रेय मिले। लेकिन इसका सही कारण यह नही है और उस सुधार के वाद भी उसका व्यवहार उचित नही होता। उसका वास्तविक कारण तव सामने आता है जव उसका पिता सचमुच खतरे मे है और स्वय हाल (Hal) को उसी की उम्र का कोई प्रतिस्पर्द्धि ललकारता है। तव वह अपने पिता की मदद की खातिर आगे वढता है और अपने प्रतिस्पर्द्धि हौट्सयर को मौत के घाट उतार देता है। उसके तुरन्त बाद जव हाल (Hal) का पिता जोर से वीमार पड जाता है तव वह उसे देखने के लिए जाता है और उसे अचेत पाता है, मानो वह पहले से ही मरा पडा हो। वह राजमुकुट को उठाकर अपने मस्तक पर पहन लेता है। यह काम वह पहले नही कर सकता था। फिर भी यही उसकी हमेशा इच्छा वनी रही। ऐसा करने के लिए उसने इसका बिल्कुल उलटा ही किया। किसी लायक वनने के लिए उसने ऐसा काम किया जो बिल्कुल उसके पिता से भिन्न था क्योकि वह अपने पिता के जीवनकाल मे ऐसा नही कर सकता है। ज्योही हेनरी चतुर्थ मरता है त्योही हाल (Hal) का अभिषेक होता है। वह एक आदर्श बादशाह, वीर, विनोदप्रिय, बुद्धिमान और फुर्तीला है। वह पिता तुल्य फौल्सटाफ को बर्खास्त कर देता है जिसे कुछ समय के लिए उसने अपने को वढाने चढाने के लिए अपनाया था। इस काम को वह इतनी निर्दयता से करता है कि उस बूढे की उसी वजह से मृत्यु हो जाती है। अब हाल (Hal) के दोनो पिता मर चुके होते हैं और वह मनमानी कर सकता है।

अपने आपको वदला नही होता। यदि उसका पिता दस या पन्द्रह वर्ष और जीवित रह जाता और यदि युद्ध की वजह से कोई विपत्ति नही पैदा होती, तो क्या हाल (Hal) अपने दुखी जीवन और बुरे सगी-साथियो से विमुख हो पाता ? क्या यह खतरा नही था कि वह बिल्कुल निकम्मा वन जाता ? वह और वडा होता, उसकी विद्रोह भावना तीव्रतर होती जाती और उस समय तक वढती ही जाती जव तक वह स्वय उसमें सुख अनुभव करने लगता या हो सकता है कि वात विगड जाने पर वह विरोध का कोई दूसरा तेज़ रास्ता अपनाता और अपने पिता को घातक दुख पहुँचाने के लिए, शासन को उखाड फेंकने के लिए या अपने पिता को वर्वाद करने के लिए दूसरा काम करता। 'हेनरी चतुर्थ' और 'हेनरी पचम' ये दोनो सुखद नाटक हैं लेकिन जीवन मे ऐसा प्रतिद्वन्द्व अक्सर दुखान्त होता हैं। इन नाटको के वाद शेक्सपियर ने 'हैमलेट' और 'किंगलियर' जैसे भी नाटक लिखे।

हम यह वता चुके हैं कि कुछ विद्यार्थियो का अच्छे अध्यापको या स्कूलो के प्रति विद्रोह उसी प्रतिद्वन्द्व की भावना से पैदा होता है जो अच्छे पिता के प्रति कुछ पुत्रो के विद्रोह में प्रतिपादित होती है। यदि यह वात है तो यह सघर्ष स्थायी स्वभाव का है और इसकी नीव मानव की आत्मा में निहित है। फ्रायड, जिन्होने इस भावना को औडिपस कमप्लेक्स (Oedipus Complex) की सज्ञा दी थी, इस भावना को पिता पुत्र के वीच अपनी स्त्री या माता के सम्पूर्ण प्रेम या स्नेह प्राप्त करने की यौन प्रतिस्पर्द्धा (Sexual Competition) की भावना पर आधारित वताया था। लेकिन यहाँ भी, दूसरी जगहो की तरह फ्रायड महाशय ने यौन प्रेरणाओ की महत्ता और प्रभुता का वढा-चढा कर वर्णन किया है। मानव स्वभाव के वहुत से दूसरे गम्भीर प्रेक्षको ने पिता-पुत्र या पितातुल्य अध्यापको के वीच सघर्ष की उसी भावना पर विचार करते हुए किसी भी यौन समस्या या भावना को उसमे निहित नही पाया है। शेक्सपीयर जैसे कुछ व्यक्तियो ने इस सघर्ष को कभी प्रधानत यौन भावना से प्रेरित वताया है ('हैमलेट' मे) और कभी-कभी उस भावना का लेशमात्र भी नही पाया ('हेनरी चतुर्थ में)। नि सन्देह विद्यार्थियो के स्कूल और अध्यापको के प्रति विद्रोह में कुछ यौन सम्वन्धी भावनाएँ होती हैं लेकिन उनका गुरुत्वाकर्षण कही और ही होता है।

यद्यपि हमने इस सघर्ष को समझाने का यत्न किया है लेकिन अभी भी इसे समझना कठिन है और इसको एक वरावर घटने वाले या ऐसे अनिवार्य सघर्ष की तरह मान लेना जिसमें किसी भी पक्ष का दोष न हो, सचमुच वहुत कठिन है। हम केवल दुखी पिता के पक्ष को ही समझने का यत्न करते हैं। शायद ही एक नज़र हम उस पुत्र पर भी डालते हो। हम सेनेका की दर्दनाक मृत्यु के वारे में पढते हैं और नेरो को एक राक्षस का खिताव दे डालते हैं। ईसा मसीह के प्रति विश्वासघात किया गया था और उन्होने मृत्युदण्ड पाया। जुडास के वारे मे सोचते समय कौन ऐसा होगा जिसके मन में केवल नफरत ही नफरत न उमड पडे ! फिर भी यह सघर्ष एक दुर्घटना होती है जिसमें दोनो पक्ष उठाते हैं। यदि

हम इस सघर्ष को समझना चाहते हैं तो हमे दोनो पक्षों के प्रति सहानुभूति रखनी होगी। ईसा को शूली पर चढा दिया गया और उनके भाग्य पर सारी दुनियाँ रोती है। लेकिन हमे एक आँसू जुडास के प्रति भी वहाना होगा जिसका हृदय प्रतिकार और अफसोस की भावना से गद्‌गद् हो गया उसने उसे पागल बना दिया और उसने आत्महत्या कर ली।

यदि इस सघर्ष मे किसी का दोप नही तो फिर इसका कारण क्या है ? क्या यह केवल पिता और पुत्र के लिए वैसा ही दुर्भाग्य है जैसे किसी वच्चे का जन्मान्ध होना होता है ? क्या यह भाग्यवश मृत्यु की तरह किसी राह चलते दुर्घटना की तरह है या यह हमेशा कुछ ऐसे नियमो के कारण होता है जिनका अभी तक पता नही लगाया जा सका है जैसे मगोलायड वर्थ (Mongoloid Birth) का कारण मालूम नही है या क्या पिता और पुत्र, अध्यापक और शिष्य दोनो अशत इसके लिए उत्तरदायी हैं ? हम यह नही जानते। मनोवैज्ञानिको की अपनी मनोकल्पनाएँ (Hypotheses) हैं और इनमे से किसी को भी अब तक व्यापक नियम नही माना जा सका है। अध्यापक केवल इसका अनुमान ही लगा सकते हैं और यह अनुमान भी अनुचित और विश्वमनीय नही है। वास्तव मे कुछ ऐसे महान् अध्यापक हैं जिनके शिष्य तो आज्ञाकारी निकले, लेकिन उनके अपने वच्चे वेवफा निकले। कुछ ऐसे पिता हैं जिनके चार-पाँच वच्चो मे से सभी अच्छे निकले केवल उनमे से एक उसी तरह का वर्ताव पाकर भी वुजदिल, झूठ वोलने वाला और भोंदा निकला जिससे सब को दुख हुआ। पिता ने सवो के साथ अच्छा से अच्छा व्यवहार किया, उनकी समझ मे यह बात नही आयी कि आखिर एक वालक ही क्यो विगड गया। कोई भी इसका रहस्य नही जानता, तत्काल हम केवल इतना ही कर सकते हैं कि इस वात को समझने का यत्न करे कि किसी विद्रोही शिष्य या विगडे पुत्र के मस्तिष्क मे जो उलट-फेर हो रहा हो उसे समझने का यत्न करें।

वह व्यक्ति अपने आप को समझने का यत्न कर रहा है। वह यह नही जानता कि ऐसा कैसे सम्भव होगा। दूसरे सभी छोटे वच्चो की तरह उसे भी अपनी शक्तियो और दोषो का ज्ञान नही है। उसका आध्यात्मिक विकास तो उसके शारीरिक विकास की तुलना मे कही अधिक रहस्यमय और स्वछन्द होता है। वह सोचने लगता है कि शायद वह अपनी गाडी को वहुत तेजी से चला रहा है विना यह जाने कि गाडी का ब्रेक कहाँ है और उसका स्टीयरिंग व्हील कहाँ है और रोडसाइन ठीक-ठीक सकेत दे रहे हैं या नही। वह केवल इतना जानता है कि उसे चलते ही जाना है लेकिन कहाँ, यह उसे मालूम नही। इसी तरह उसका विकास भी हो रहा है यह वह जानता है लेकिन यह विकास कैसा है यह उसे मालूम नही।

अब यदि कोई ऐसा अच्छा और प्रशसनीय और असाधारण पिता या अध्यापक हो जिसमें कोई बुराई नजर न आये तो उसे यह विश्वास हो जाता है कि उसे अपने पिता या अध्यापक का अनुसरण करना चाहिए। हर बात में उनकी नकल जरूर करनी

चाहिए। उसे अवश्य ही उनका अनुमरण करने की कोशिश करनी चाहिए। फिर भी वह समझता है कि यदि वह वैसा करता है तो कुछ खो बैठेगा या वैसा करने से उसका अपना रूप नही रहेगा और वह यह भी अनुभव करने लगता है कि वह उनका अनुसरण नही कर मकता क्योकि वे बहुत अच्छे हैं। कोई अट्ठारह वर्ष का बालक किमी पैंतालीस वर्षीय व्यक्ति जैसा आत्मनियन्त्रण और प्रशान्त बुद्धि का अनुकरण नही कर सकता। एक उत्तेजनापूर्ण और युवा सम्राट् भी एक वृद्ध स्टोइक (Stoic) की तरह सन्तुलन वाला नही बन सकता। इसलिए वह उनकी दुर्बल और घटिया प्रति (Infe-ior and weak copy) बनने के बदले दृढ और मौलिक व्यक्ति बनने का निश्चय करता है। मेरे पिता एक सम्राट् हैं। कितनी अच्छी बात है लेकिन मैं उनकी नक़ल कर एक छोटा राजा बनने के बदले गुडो का राजा या चोरो का राजकुमार बनूंगा। कुछ ईसाई धर्म पण्डितो का कहना है सबसे पहला अपराध, जो मानव ने किया था वह अनुकरण था, जब ईश्वर की सन्तान ने ईश्वर के प्रति विद्रोह किया, जब देवदूतो के राजकुमार ने अपने को राक्षसो का सम्राट् इस बात को कह कर किया कि "स्वर्ग मे ग़ुलामी करने की अपेक्षा नरक मे राज्य करना अधिक श्रेयस्कर है।"

लेकिन अक्सर ऐसा विद्रोह विधिवत नही होता। युवक भटकता है और जघन्य कार्य प्रचार के माथ करता है जिससे वह अपने पिता की तरह महत्त्वपूर्ण और वास्तविक बन जाये। इसी बीच मे उसकी अपनी मौलिकता भी नष्ट हो जाती है। कभी वह आत्म-हत्या कर लेता है या कभी उसी तरह का कोई दूसरा साकेतिक कार्य करता है। फिर भी वह अपने को नालायक या अपने पिता जैसा न बन सकने की वजह से अपने को दण्ड देता है।

इस मघर्ष मे, जैसा कि पिता और पुत्र या अध्यापक और शिष्य के सभी सघर्षो मे होता है, अधिक दोप पिता या अध्यापक का होता है क्योकि उनकी जानकारी अधिक होती है और वे अधिक अच्छे ढग से नियोजन कर सकते हैं लेकिन उन दोनो के लिए यह बहुत ही कठिन काम है।

इस सघर्ष को कम करने का एक तरीका यह है कि अपने पुत्र या विद्यार्थी को मतभेद की स्वतन्त्रता मिले। इसमे उसे प्रोत्साहन मिलना चाहिए। उसे ऐसे नये रास्ते दिखाने चाहिए जिनके द्वारा वह बालक अपने पिता के चरण चिन्हो का अनुमरण किये बिना ही स्वच्छन्द विचरण कर सके। फिर भी एक खतरा लगा रहेगा। वह बालक हमेशा इम पशोपेश में रहेगा कि वह अपने पिता का अनुकरण करे या अपना पृथक् अस्तित्व पहचाने। पिता का यह कर्त्तव्य है कि वह पुत्र के व्यक्तित्व के इन दो भागो में मामन्जस्य पैदा करे और उनके एक माथ विकास करने मे सहायता करने की कोशिश करे।

एक दूसरा तरीका जो और भी कठिन है वह यह है कि पिता और पुत्र के बीच की दूरी को कम किया जाय और लडके के मस्तिष्क मे यह बात बैठा दी जाय कि सफलता अवश्यम्भावी है। आप अपनी गलतियो को उसे बता दें। अपने जीवन के प्रारम्भिक

सघर्षो और कठिनाइयो से उसे अवगत कराये और ऐसा करते हुए आप उनका चित्रण किसी ऐसे महान् युद्ध जैसा न करें जिसे जीतने के लिए दैवी शक्ति की आवश्यकता हो बल्कि इस तरह चिन्तापूर्ण विवरण हो मानो वे कठिनाइयाँ उस लडके की सी हो। यदि प्रतिद्वन्द्व मे कही वह आपसे पछाड खा जाये तो दूसरी जगहो पर आप उसे भी पछाड़ने और अपनी सफलता पर गर्व करने का अवसर दें। यदि वह किसी ऐसी परिस्थिति में सफल हो जाय जिसका आपने कभी सामना नही किया हो तो उसकी बडाई करें और यह बतलाएँ कि किस तरह से वह बालक इससे मजबूत बना है। एक युवक के लिए यह अनुभव करना डरावना होता है कि उसके पिता या अध्यापक मे मानविक त्रुटियाँ नही हैं। अपनी त्रुटियो का दिग्दर्शन कराकर आप स्वय उसे अपनी त्रुटियो पर विजय पाने मे सचमुच सहायता पहुँचायेंगे।

इस सघर्ष मे केवल हानि ही हानि नही है। विकास इसका दूसरा पहलू है क्योकि सघर्ष से दोनो पक्षो को यह चुनौती दी जाती है कि वे अपनी मजबूतियो को सामने लाये। वह शिष्य जो अपने अध्यापक की हरेक बात की आलोचना करता है या प्रश्नोत्तर करता है, उस विद्यार्थी से कही अधिक सीख पाता है जो मुँह बाये भौचक्के की तरह अध्यापक की बाते सुनता जाता है। वह पुत्र, जो यह समझता है कि वह सफलता प्राप्त करने पर भी अपने पिता का प्रतिद्वन्द्वी शायद ही बन सकता है, अपनी उन गुप्त शक्तियो को भी नष्ट कर देगा जिनकी अवस्था का उसे ज्ञान तक न था। इसलिए बुद्धिमान पिता और अच्छे अध्यापक हमेशा अपने पुत्रो और विद्यार्थियो को चुनौती देंगे और जहाँ उचित होगा उनसे मतभेद पैदा करेंगे और उनसे आगे निकलने मे सहायता पहुँचायेंगे। जेसुइटो (Jesuits) की अध्यापन क्षमता का सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि उनके सबसे अच्छे बहुत से विद्यार्थी जेसुइट मतावलम्बी नही हुए। अध्यापक के रूप मे प्लेटो की प्रतिभा का भी सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि बीस वर्ष एक साथ काम करने के बाद भी अरस्तु ने एक अपना शक्तिशाली मत स्थापित किया जो अशत प्लेटो के सिद्धान्तो की अपनी आलोचना पर आधारित था। अच्छी शिक्षा के उद्देश्य का निष्कर्ष अरस्तु के इन शब्दो मे मिल जाता है जो उन्होने इन मतभेदो के बारे मे कहे थे "यद्यपि मेरे लिए सत्य और प्लेटो दोनो प्रिय हैं लेकिन सत्य का अनुसरण करना श्रेयस्कर है।"

हमने प्राचीन काल के कुछ बहुत ही विख्यात अध्यापको की चर्चा की है। सैकडो और हजारो अध्यापक और हुए थे। केवल उनका नाम भी गिनाना इस पन्ने को भरने के लिए काफी है और उनके का कार्य वर्णन तो कई पुस्तको मे भी पूरा नही होगा। यूनान और रोम की दुनिया ऐसी थी जहाँ शक्ति और सम्पदा की भरमार थी लेकिन वह ससार प्रधानत ऐसा भी था जिसमें दिमागी बातो का ऊँचा स्थान था। उनकी लम्बी सास्कृतिक परम्परा प्रशसनीय अध्यापको के द्वारा बनी, विकसित हुई और फैली।

जब असभ्य जातियो ने आक्रमण किया और जब पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अफ्रीका का सामाजिक ढाँचा तहस-नहस हो गया तो शिक्षा की शुभ्र सरिता भी सूखते-सूखते एक

पतली नाली की तरह बन गयी। भग्न नगरो, स्कूलो तथा पुस्तकालयो के अवशेषो में और एक मठ से दूसरे मठ तक बडी कठिनाई से बचते-बचते यह शिक्षा अधकार युगो (Dark ages) को पार करती हुई चार्ल मैग्ने के साथ प्रकाश मे आई और तब धीरे-धीरे सन् १००० के करीब से वह पुन फैलने लगी। उसकी जडें नीचे जाने और फैलने लगी और मस्तिष्क के त्यक्त इलाको को उर्वर बनाने लगी। उन में बहुत सी नयी दिशा मे जाकर फैल गयी। लेकिन यद्यपि मध्ययुगो मे बहुत से महान् व्यक्ति अध्यापक हुए फिर भी शिक्षा प्रणाली यूनानी और रोमन शिक्षा पद्धति की तुलना मे बहुत पिछडी हुई थी। शिक्षा उलझी हुई और मद गति थी। साथ ही ज्ञान कठिन और अप्राप्य था।

यूरोपीय पुनर्जागरण (रेनेसा) युग के स्कूल मास्टरो के रूप मे महान् अध्यापको का एक नया युग उदित हुआ। सन् १४५० के बाद पश्चिमी यूरोप में सब जगह ऐसे नये-नये स्कूल स्थापित हुए जिनके अध्यापक शिक्षा को सभ्यता की प्रसारक शक्ति मे उत्साह सहित विश्वास करते थे। यदि हम इस सफलता को शिक्षा की सबसे कठिन और सबसे सुरक्षित कसौटी अर्थात् शिक्षित विद्यार्थियो के आधार पर देखते हुए उनकी जाँच करे। इटली, फ्रास और इगलैण्ड में सैकडो ऐसे प्रतिभावान नाम अगली सदी मे देदीप्यमान हुए और उनमे से लगभग सभी ने प्रेरणा और ज्ञान कुशल अध्यापको से प्राप्त किया, शिक्षा पर सभी तरह की पुस्तके लिखी गयी, युक्लिड (Euclid) की कृतियो का अनुवाद हुआ, घुडसवारी पर पुस्तकें लिखी गयी, प्रार्थना करने और समाज मे सफलता पाने के तरीको पर गाइड (Guide) लिखे गये तथा भूगोल और भाषण कला पर ग्रथ लिखे गये। पोलैण्ड से स्पेन तक और स्काटलैंड से सिसली तक आतुर विद्यार्थी ऐसे लोगो की बाट जोहते थे जो उन्हे पढने, बातचीत करने, सोचने, जानने, व्यवहार करने और जीने के बारे मे शिक्षा दे सकें।

उस समय के कुछ महानतम लेखको ने अनेक रोचक कहानियाँ, नाटक और शिक्षा के पहलुओ के बारे मे सस्मरण लिखे, शेक्सपियर लिखित 'हेनरी चतुर्थ' मे हम हाल (Hal) को एक स्पष्टत आवश्यक किन्तु विचित्र ढग की राजकीय शिक्षा पाते हुए देखते हैं। 'टेम्पेस्ट' मे प्रोस्पेरो एक शिक्षक है, जो अपनी पुत्री को पढाता और बाद मे अपने भावी दामाद को पढाता है। उसे भी सेनेका की तरह असफलता मिलती है। उस नाटक मे उसका कुशिष्य कालिबन (Caliban) एक खलनायक है, जो इतना बदमिज़ाज है कि उसे प्रशिक्षित नही किया जा सकता और वह अपने अध्यापक को इन असभ्य शब्दो मे सबोधित करता है

You taught me language, and my profit on't
Is, I know how to curse

अर्थात् तुमने मुझे भाषा सिखायी और उसका लाभ मुझे यह हुआ कि मैंने गालियाँ देना सीख लिया।

रेबायलेस (Rabelais) कृत "गर्गन्टुआ" (Gargantua) का प्रारम्भ एक गाक्षस-

पुत्र की उत्पत्ति के बाद शुरू होता है जिसमे बुरी शिक्षा का सावधानी से वर्णन किया है जिसके कारण वह करीब-करीब रसातल को चला गया और जिसके कारण उसे केवल अपनी प्रतिभा और एक अच्छी शिक्षा जिसके सहारे वह एक महान् राजकुमार बना था का दुरुपयोग करने पर बाध्य किया गया था। पुस्तक का अन्त नवयुवक और नवयुवतियो के लिए एक ऐसे आदर्श स्कूल, 'ऐबे ऑफ थेलेमा' (Abbey of Thelema) के वर्णन से होता है, जहाँ वे केवल यथोचित कार्य ही करते थे क्योकि वे चाहते थे कि उसको करे। उन्हे ऐसा करने के लिए बाध्य किया जाता था। (थेलेमा का अर्थ होता है 'इच्छा'।) रेबेलेस (Rabelais) की दूसरी कृति "पेन्टाग्रएल" (Pantagruel) मे भी एक दूसरे राक्षस राजकुमार की इसी तरह की शिक्षा का उल्लेख है जिसमे वह फ्रास के सभी विश्वविद्यालयो का भ्रमण करता है और पेरिस विश्वविद्यालय मे पर्याप्त समय व्यतीत करता है। उसका प्रमुख दरबारी पेन्युर्ज (Panurge) रेबेलेस की भाँति ही एक विदूषक और विद्वान् भी है। वह जर्मन, इटालियन, अग्रेजी, बास्क, डच, स्पैनिश, पुरानी डेनिस भाषा, हेब्रू यूनानी, लैटिन और तीन अन्य बेहूदी भाषाएँ अपूर्व प्रवाह से बोल लेता था। (रेबेलेस इन अध्यायो मे अनुभव करा देता है कि बहुत सी बातो का अच्छी तरह से जानना वास्तव मे हास्याम्पद है, उसी तरह जिस तरह सत्तर साल की आयु में मकान पर चढना या बड़े मैदान मे चक्कर लगाना हास्याम्पद है।) मोतैं (Montaigne) लिखित एसेज "Essays" स्वय लेखक की आत्म-इच्छा के परिणाम हैं। सैनिक और कूटनीतिज्ञ के रूप मे २० वर्ष बिताने के बाद, उसने अवकाश ग्रहण कर लिया और अपने चरित्र को सम्पूर्ण बनाने मे लग गया। इस का कार्य पूरा करने के लिये उसने केवल अपने मस्तिष्क का विश्लेपण ही नही किया, क्योकि अपनी ही नाडी की और रक्तचाप की प्रत्येक घटे जाँच करने की तरह यह कार्य भी नीरस होता है बल्कि बहुत सी महान् पुस्तको को पढा, उनकी विषय-वस्तु पर विचार किया और उनकी शिक्षा को जहाँ कही भी हो सका प्रयोग किया। अपने विचार-विनिमयो को लिपिबद्ध करते समय ये ही उसके सत्य को प्राप्त करने के 'यत्न' या लेख बने। वे उसकी अपनी ही खोजो के चार्ट हैं। आत्मशिक्षा के निमित्त ही उसने तीन-चार लेख बच्चो की शिक्षा के विषय मे लिखे जिनमें उसने अपनी शिक्षा पर गौर किया और उसी के आधार पर कुछ सुझाव पेश किये। फिर भी वे महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ हैं। लेकिन हमारे लिए उसके जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह देखने की है कि किस तरह सावधानी से नियोजित, विविध और उत्साहवर्धक शिक्षा को एक साधारण फ्रेंच बालक पर लागू किया गया और यह शिक्षा उसे साहित्य के एक अग की पुनरावृत्ति में सहायक बनी। इसके अतिरिक्त जिन्दगी भर उसे अपने मस्तिष्क को विकसित और परिष्कृत करने मे प्रोत्साहित किया। इस तरह साँ-ब्युभ (Sainte-Beuve) के शब्दो मे वह सब फ्रेंचो मे चतुर और बुद्धिमान कहलाया।

ये केवल कुछ ही ऐसी उत्कृष्ट शिक्षाप्रद पुस्तकें हैं जो रेनेशो (Renaissance) के समय में लिखी गयी थी जब पश्चिमी यूरोप अपनी शिक्षा मे लगा हुआ था। यहाँ

उनका प्रसग इसलिए आता है क्योकि उनसे यह पता लगता है कि शिक्षा को केवल बच्चो या अध्यापको की वस्तु नही समझा जाता था वल्कि एक ऐसी प्रक्रिया माना जाता था जो जिन्दगी भर चलती रहती थी। उत्कृष्ट शिक्षा वह होती है जिसमे वालको को ऐसी वातें सिखाई जाती हैं जिन्हे वे जिन्दगी भर प्रयोग करते, सीखते और उनकी सराहना करते रहते हैं।

रेनेशो (Renaissance) काल मे पढाये जाने वाले विषय यहाँ हमारे लिए महत्त्व नही रखते। हाँ, शिक्षा के तरीके हमारे मतलव के हैं। उनकी सफलता का प्रमाण वे नर-नारी नही हैं जो उनसे शिक्षित हुए वल्कि वह उत्साह है जिस से उसके शिष्य उसका उल्लेख करते हैं।

पहली वात यह है कि शिक्षा पहले शुरू हुई। वच्चे विल्कुल वाल्यावस्था मे ही सीधे स्कूल मे दाखिल कर दिए जाते थे और स्कूल से वे हम लोगो से चार पाँच वर्ष पहले ही कालेज मे पहुँच जाते थे। आप कहेगे कि इसका मतलव यह हुआ कि अन्तर केवल यह था कि वे यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी कहलाने लग जाते थे जव कि वास्तव मे स्कूल के विषय ही पढते होते थे लेकिन यह वात ठीक नही है। वे पहले ही अधिक सीख लेते थे। और वह भी हमसे अधिक एकाग्र होकर। जव वच्चा स्कूल मे जाता था तो उसे रगे हुए खिलौने खेलने के लिए नही दिये जाते थे और उन्हे गाने नही सिखाये जाते थे वल्कि अक्षरो का ज्ञान कराया जाता था और उन्हे पढना-लिखना वताया जाता था। पढना सीख लेने के वाद ही उसे विदेशी भाषाएँ और वाइवल पढने को दिया जाता था। शेक्सपियर जिसे मामूली कस्वे की साधारण माध्यमिक (Middle) स्तर की शिक्षा मिली थी, सात वर्ष की आयु मे ही लैटिन पढने लग गया था। मिल्टन (जो स्वय राजनीति से अलग कर दिए जाने के वाद एक स्कूल मास्टर वन गया था) को उसके पिता ने सात वर्ष की आयु मे ही लैटिन और नौ वर्ष की आयु मे यूनानी भाषा पढाना शुरु करा दिया था। महारानी ऐलिजा-वेथ, एरिओस्टो (Ariosto), एरास्मस (Erasmus), लुथर (Luther), लोप दे वेगा (Lope-de-vega), गेलिलियो (Galilio), करीव-करीव उस महान् युग के सभी विख्यात व्यतियो की शिक्षा कम उम्र मे ही शुरु हो गयी थी और वयस्क होने तक उनका मस्तिष्क सुसस्कृत हो गया था। (जेसुइट मत के प्रतिपादक सेन्ट इग्नेशियस लोयाला (St Ignatius Loyola) इसके अपवाद थे, जो धर्म परिवर्तन के समय एक वहादुर किन्तु अज्ञानी सैनिक थे। उन्हे एक विशेष दड यह मिला था कि उनको पच्चीस या तीस वर्ष की उम्र मे साधारण विषय पढने के लिए वच्चो की पक्ति मे वैठना पडता था।) दूसरी वात यह थी कि उस समय पढाये जाने वाले विषयो की सख्या कम थी जिनसे विद्यार्थी का समय और शक्ति नष्ट न हो लेकिन साथ ही यह वात भी थी कि आजकल की तरह विषयो का सकीर्ण वर्गीकरण नही होता था। हमारे स्कूलो मे वालक वालिकाएं दस-ग्यारह वर्ष की उम्र मे फ्रेंच और ग्यारह से वारह वर्ष की उम्र मे इति-हास पढते हैं। रेनेशो काल के स्कूलो में यदि कोई अध्यापक फ्रेंच पढाता तो वह उन

भाषा को एक 'विषय' मानकर नही पढाता था। वह फ्रासीसी आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज अर्थात् समाज ज्ञान (Sociology), इतिहास, भूगोल, साहित्य और कई दूसरी महत्त्वपूर्ण चीज़ के बारे मे भी बातचीत करता था। 'फ्रेंच' पढाने के बदले वह फ्रास की शिक्षा देता था। इससे शिक्षक की जिम्मेदारी बढ जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि शिक्षक का सास्कृतिक ज्ञान वृहत् होना चाहिए। इसका यह भी अर्थ है कि क्रियात्मक ढग से अध्यापक को अपने 'विषय' के बारे मे सारी बातो का ज्ञान होना चाहिये और उसे उन बातो को बताने के लिए तत्पर रहना चाहिए। लेकिन अध्यापक ऐसा कर सकते हैं। रेनेशो युग के लोगो ने बार-बार अपने स्कूल मास्टरो को 'सर्वज्ञ', "सेरेरो की तरह वाक्यपटु, सुकरात की तरह विद्वान, 'ज्ञान के श्रोत और भडार' जैसे शब्द कह कर प्रशसित किया है। इस तरह की श्रद्धाभरी अतिशयोक्तियो से उनका मतलब यह है कि बाल्यकाल मे उन्होने अपने अध्यापको की सम्पूर्णता और ज्ञानलिप्सा की हिमायत की थी न कि उनके सीमित किन्तु सही ज्ञान की। उनके विचार मे वह अध्यापक, जो 'केवल' फ्रेंच प्राणीशास्त्र जानता हो, उन विषयो को पढाने के लिए बिल्कुल अयोग्य होगा इस बात से हम स्वत तीसरी बात पर पहुँचते हैं। इसका मतलब यह है कि अच्छे अध्यापक ज़ोर जबर्दस्ती से बहुत कम ही काम लेते हैं। घटिया स्कूलो मे मार-फटकार, और शोर शरारत होती थी। मोंते ने इसके प्रति घोर विरोध प्रगट किया है। लेकिन वे यह कभी नही कहते कि वे स्वय इसके भुक्तभोगी हुए। रेनेशो काल की शिक्षा के बारे मे टिप्पणी करने वाले सभी लेखको के साथ यह सहमति प्रगट की है कि यह तरीका अक्षम्य है और इसे समाप्त कर देना चाहिए। अच्छे स्कूलो और सफल अध्यापको ने कभी भी इसका प्रयोग नही किया। तब बदले मे उन्होने क्या किया ? किस तरह उन्होने कठिन विषयो की पढाई की ? हमे मालूम होता है कि स्वय क्योकि वे अधिक विषयो को इतना पसद करते थे और उसे इतने रोचक ढग से पढाते थे कि विद्यार्थी उनकी ओर खिंच जाते थे। आजकल हम समझते हैं कि यूनानी गीति-काव्य के किसी गूढ और अप्रत्यक्ष पद्याश को पढाना बहुत ही गभीर, कडा और परिश्रम का कार्य है तथापि जाँ दोरा (Jean Dorat) जैसे अध्यापको ने इस कार्य को इस ढग से किया कि उनके विद्यर्थियो ने उन्हे 'जादूगरो' की सज्ञा दी थी और उनके वाक्यो को 'रतन की तरह बटोरना' कहा करते थे और कहते थे कि उनके श्रोता बार-बार उन्हे आगे पढाते जाने के लिए निवेदन करते रहते थे मानो वे उनकी शब्द शक्ति और आकर्षण से मोहित हो गये हो। अच्छे अध्यापको द्वारा इस तरह की अभिरुचि पैदा कर देना विद्यार्थी को जीवन भर याद रहता है।

शायद इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि वे लोग बिल्कुल सही (Accurate) नही थे। कभी-कभी तो वे बिलकुल साकेतिक और प्राय दृढ और रचनात्मक होते थे। कभी बुरा और गलत इतना कि हमें हैरानी हो। वे शब्दार्थ सही-सही और प्रमाण सहित भाषा को उतना महत्त्व नही देते थे जितना कि हमने उन्नीसवी सदी के प्रारभ में दिया। 'वैज्ञानिक प्रणाली' की भावना परीक्षण की स्थिति को तब तक पार नही कर सकी थी। सचियो,

शब्दकोषो, प्रासगिक पुस्तको (Reference Books) आदि चीजे बहुत ही कम थी। ऐसी पुस्तको को खोज निकालने, उनका अनुवाद करने और इतिहास मे पहली बार उन्हे अपनी भाषा मे लिखने मे, जो एक हजार वर्ष पूर्व खो गयी थी, अध्यापक अक्सर तथ्य की प्रमाणिकता के बारे मे भूल जाते थे। यह काम वे उसी तरह करते थे जैसे सोना निकालने वाले खनिक मिट्टी खोदते समय उस जगह की प्राकृतिक सुन्दरता को बनाये रखने का विचार भुला देते हैं। शेक्सपीयर की पुस्तको मे बहुत सी ऐसी यूनानी मान्यताओ की ओर सकेत है, जिन्हे उसने स्कूल मे पढा या सुना था। कभी-कभी शेक्सपीयर ने उनका गलत मतलब समझा है और प्राय बेतकल्लुफी से उनमे परिवर्तन कर दिये हैं। फिर भी उनका उपयोग उसने इस तरह किया जिससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि वह उन्हे पसन्द करता था। बहुत से महत्त्वपूर्ण अनुवाद कुछ ऐसे अनुभवहीन नवयुवको ने बहुत ही जल्दीबाजी मे किये थे लेकिन उनकी शैली मे प्रवाह और कल्पना मे चेतनता थी। चैपमैन को यह गर्व था कि उसने इलियाड पुस्तक का आधा भाग चार महीने से कम समय मे ही खत्म कर डाला। प्रमुख अध्यापको ने जो गलतियाँ की वे हमे आज जितनी खलती हैं उतनी मनोविज्ञान के बारे मे हमारा अज्ञान सन् २३५० ई० के लोगो को खलेगा। स्पेसर जैसे कवि ऐसी पुस्तको के बारे मे जानकारी रखने का दावा करते थे जिन्होने कभी भी उन्हे पढा नही हो और उनके उद्धरणो का वे हवाला देते थे—वे भी किसी दूसरी पुस्तक मे दिये गये उद्धरणो मे से चुराये गये होते थे। फिर भी ये कवि साहित्य के बारे मे, हम जितना जानते हैं उन से अधिक जानकारी रखते थे। क्योकि उन्हे स्कूलो मे पढाया जाता था कि साहित्य रोचक विषय है और साहित्य का किस तरह रसास्वादन करना चाहिए यह भी वे स्कूल मे सीखते थे। इस कथन के दो पहलू हैं। एक यह कि विद्वत्ता चाहे रुचिकर हो या अरोचक, सही होनी चाहिए और दूसरा, शिक्षा चाहे शत-प्रतिशत सही नही हो फिर भी रोचक जरूर होनी चाहिए।

अन्त मे हम यूरोपीय पुनर्जागरण (रेनेसाँ) युग के उन सर्वश्रेष्ठ अध्यापकों का उल्लेख करते हैं, जो अपने शिष्यो को मारने पीटने की अपेक्षा उन्हे ऐसी चीजो के प्रोत्साहित करते थे जिससे उनका मनोरजन हो। वे इस बात पर जोर देते थे कि पढाने का काम सुखकारी होता है। विट्टोरिना दा फेल्टर (Vittorino da Feltre) ने अपने बोर्डिंग स्कूल का नाम जौलीटी हाऊस (Jollity House), "La Casa Giocosa" रखा हुआ था। इस युग के अध्यापक अपने विद्यार्थियो की प्रतिद्वन्द्व की भावना को प्रेरित करते थे और इस प्रतिद्वन्द्व मे जो जीतता उसे पुरस्कार और शाबाशी मिलती थी। वे कठिन पाठ तैयार करते थे और अपने अच्छे से अच्छे विद्यार्थियो को उन्हे हल करने की चुनौती देते थे। वे ऐसे नाटक लिखते थे जिनमे बालक पात्र बन सकें (ये नाटक करीब-करीब साहित्य तुल्य ही होते थे और अँगेजी का प्रथम सम्पूर्ण सुखान्त नाटक ईटन ... के मास्टर उडाल (M... Udall) द्वारा रचित "राल्फ रायस्टर डायस्टर" (Ralph Roister Doister), जो एक यूनानी और रोमन सुखान्त नाटक का रूपान्तर था और उनके विद्या...

नाटक खेला था ।) रेनेसाँ युग के अंग्रेजी नाटको मे काफी नाटको की उत्पत्ति ऐसे ही स्कूल नाटको के रूप मे हुई थी । इन नाटको मे कठिन विषयो को खेल का रूप देकर समझाने का यत्न किया जाता था । जैसे मौते के पिता अपने पुत्र को ताश के पत्तो पर साधारण ग्रीक शब्दो और अक्षरो को लिख कर ताश का नया खेल सिखाया करते था । दूसरे लोग भी इसी तरह से हिसाव सिखाया करते थे । इन सव तरीको से जव सवल और आकर्पक व्यक्तियो ने पढाने का कार्य किया तो शिक्षा एक वहुत ही सुखपूर्ण धन्धा हो गया । रेनेसाँ युग के अध्यापको का उल्लेख उनके विद्यार्थी सच्ची भावना, सराहना, प्रेम और मानवता के हितैपी और व्यक्तिगत मित्र वताकर करते हैं । यह उन्ही की लग और तपस्या का फल था कि वह युग पाश्चात्य देशो के इतिहास मे एक स्वर्ण युग वन गया जिसमे यद्यपि लोगो का साधारण स्तर गिरा हुआ था फिर भी उसमे हमारे युग से अधिक महान व्यक्ति और अधिक उत्कृष्ट कलाकृतियाँ पैदा हुई ।

प्रसिद्ध अध्यापको की पक्ति मे इसके वाद जेसुइट्स (सन् १५३४ मे स्थापित 'ऑर्डर ऑफ जेसस' कहलाने वाला ईसाई धर्म के मतावलम्वियो का दल) का नम्वर आता है । मैंने जेसुईट शिक्षा की पहले इतनी प्रशसा कर दी है कि इससे यह प्रत्यक्ष हो गया है कि मैं स्वय एक जेसुईट नही हूँ और न रोमन कैथोलिक ही क्योकि जेसुइट्स अपनी प्रणाली की प्रशसा खुद करने की गलती नही करते । वे कुशल मनोविश्लेपक होते हैं । वे जानते हैं कि ऐसा करना कभी-कभी जनता को अपना विरोधी बना लेना होता है और मैंने शायद ऐसा नही किया है । यह प्रणाली सचमुच प्रशसनीय है या शायद सन् १७७३ ई० मे पोप द्वारा भग किये जाने तक यह व्यवस्था प्रशसनीय थी । सन् १८१४ मे दुवारा स्थापित होने के वाद ऐसा लगता है कि इस प्रणाली ने उतना अच्छा कार्य नही किया और न उतने विलक्षण विद्यार्थी ही पैदा किये । इस प्रणाली के शिक्षा के ढग की सवमे अच्छी वात यह थी कि उसे पक्के ढग और पूरे तौर से नियोजित किया जाता था । नियोजन अपने आप मे ही कोई गुण नही है । वहुत से स्कूलो मे इस प्रकार का नियोजन होता है पर वे बुरे स्कूल होते हैं । लेकिन इससे स्कूलो मे आ जाने वाली कुछ भयकर बुराइयो से बचने मे सहायता मिलती है । इससे अध्यापक और शिष्य समय व्यर्थ नही गँवा सकते । जो समय व्यर्थ गँवा दिया जाता है वह मुफ्त का समय नही न ही विश्राम का समय । साधारणत , यह एक हफ्ता, एक महीना, एक टर्म या एक पूरा वर्ष होता है जिसमे न तो शिक्षक को और न विद्यार्थियो को ही यह मालूम होता है वे क्या कर रहे हैं । वे किसी ऐसे विषय पर काम करते हैं जिसको वे पहले ही खत्म कर चुके हैं, या वे जून तक किसी तरह समय बिताते हैं जिससे अगला वर्ष आने पर फिर से कोर्स शुरू करें, या किसी दूसरे उद्देश्य की प्राप्ति में लगे रहने के कारण उसी श्रेणी की परीक्षा मे उनको दुबारा बैठना पडता है । 'जेसुइट प्लैन ऑफ स्टडीज' (Jesuits plan of studies) की जब शिक्षा शास्त्रियो ने योजना बनाई थी, उन्होने अपने विद्यार्थी की सपूर्ण स्कूल शिक्षा को एक नियमित जीवन की शक्ल दी थी जिसमे काफी अवकाश तो हो पर जिसमे समय न तो

व्यर्थ जाय और न यह काम का पुनरावर्तन है।

नियोजन से समय बचाने के अतिरिक्त बच्चो मे असाधारणत उद्देश्य चेतनता आती है। इससे उन्हे यह मालूम होता है कि वे कहाँ जा रहे हैं, जहाँ दूसरी ओर कम नियमित रूप से चलाये जाने वाले स्कूलो मे बच्चे यह अनुभव करते हैं कि उनको एक श्रेणी से दूसरे श्रेणी मे इस तरह भेजा जाता है जैसे मवेशियो को एक कोठरी से दूसरी कोठरी मे ढकेलते हैं। युवावस्था मे बन्धन बडा दुखदायी होता है लेकिन यह जानना दुखदायी और अपमानजनक होता है कि किसी के जीवन मे कोई उद्देश्य नही और न उसका कोई अर्थ ही है या किसी बूढे स्कॉट्स (Scots) के शब्दो मे 'बिना गाँठ का सूत' है। जेसुइट नियमावली मे ऐसी व्यवस्था है कि विद्यार्थी यह जाने कि वे क्या कर रहे हैं और क्यो कर रहे हैं? ऐसा देखा गया है कि उसके विद्यार्थी दृढप्रतिज्ञ और पारदर्शी हुए। इसके आधुनिक उदाहरण आयरिशमैन हैं जिन्होने एक दिन की घटना के बारे मे, एक पुस्तक लिखने मे सात वर्ष लगाये और एक रात के किसी स्वप्न के बारे मे सत्रह वर्ष। युलेसिस (Ulyssis) और फिनेगेन्स वेक (Finnegans Wake) को आप भले ही पसन्द न करें, लेकिन वे सुन्दर नियोजन और धैर्य के प्रमाण हैं और जायस (Joyce) को वैसे नियोजन के बारे मे बनाने वाले जेसुइट ही थे।

फिर भी नियोजन और उद्देश्य प्राप्ति बहुत अमानुषिक हो सकता है। इनमे स्वच्छन्दता और मौलिकता पर आघात हो सकता है। कभी-कभी उसकी प्रशसा इसलिए की जाती है क्योकि उनसे रचनाओ मे असर होता है। जेसुइट इस दोष की एक पूरक सिद्धान्त, रूपान्तर पर जोर देकर दूर करते थे। बार-बार वह इस बात को दुहराते हैं कि विद्यार्थी भिन्न होते हैं, क्लासें भिन्न होती हं, समय बदलता रहता है और अध्यापक का कर्त्तव्य पढाना है, किसी काल्पनिक अवस्था मे नही बल्कि उनके सामने बैठे एक खास किस्म के विद्यार्थी समूह को। सबसे पहले अध्यापक को विद्यार्थियो की आवश्यकतानुसार पढाना चाहिये। वह पढने और अपने मस्तिष्क के प्रयोग करने का आदी बन चुका है। जहाँ विद्यार्थियो के साथ ऐसी बात नही। इस बात को ध्यान मे रखकर वह उन बच्चो के समय के अनुसार पढाने का काम करेगा। पादरी जोव्हेन्सी इसी भावना का चित्रण करते हुए कहते हैं कि बच्चो का मस्तिष्क किसी पतले गले वाली बोतल की तरह है। इसे एक-एक बूंद करके धीरे-धीरे ज्ञान की बूंदो मे भरा जा सकता है। लेकिन यदि अधिक मात्रा मे उस बोतल मे ज्ञान भरने की कोशिश करते हैं तो वह बह निकलता है और व्यर्थ चला जाता है। अध्यापक को धीरज, धीरज और धीरज रखना चाहिये।

ऐसा होने पर अध्यापक विभिन्न कक्षाओं और विभिन्न विद्यार्थियो को विभिन्न स्तर पर पढायेगा। ऐसा करने के लिये उसे एक अच्छा मनोविश्लेपक होना चाहिये। करीब-करीब सभी बच्चे एक जैसे सुन्दर लगते हं। लेकिन अध्यापक को चाहिये कि वह उनके बाहरी आकार में भीतर छिपे वास्तविक स्वभाव को पहचाने। उनका दूसरा चित्र (देखिये जेसु-इट चित्रो की सहायता से कैसे पढाते हैं) पादरी पैनेवीनो के शब्दो में देखिये। वे कहते ह

कि बच्चे नमक, चीनी, आटा और चौक की तरह होते हैं जो सुन्दरता मे लगभग एक ही जैसे होते हैं, लेकिन स्वभाव और उपयोग की दृष्टि मे परस्पर बहुत भिन्न होते हैं। अपने विद्यार्थियो की विभिन्न क्षमताओ का पता लगा लेने के बाद अध्यापक, नियोजन के अधीन जहाँ तक सम्भव हो सकेगा, पढाने का काम उनकी आवश्यकतानुसार करेगा। शिक्षार्थियो के अनुसार अपनी शिक्षा को ढालने के कार्य मे जेसुइटस ने अविश्वसनीय धैर्य का परिचय दिया और अपेक्षाकृत बहुत दूर तक गये। उदाहरण के लिये उन्होने ४० करोड चीनियो को ईसाई बनाने के लिये १०-१२ पादरियो का एक छोटा-सा दल भेजा। उन्होने इस लगभग असम्भव काम को चीन का अध्ययन करने से शुरू किया। यहाँ एक ऐसा साम्राज्य था जो ऊपर के कुछ लोगो द्वारा शासित होता था। अच्छा है, यदि उन्ही कुछ लोगो को ईसाई बना लिया जाय तो शेष आगे च कर अपने आप ईसाई बन जायेगे। तब सम्राट, दरबारी और अधिकारियो का किस तरह से धर्म परिवर्तन हो? यह कार्य उस तरह नही हो सकता जैसे पेरू के राजा को डोमिनिकन पादरी ने पिजारो के साथ मिलकर बाइबल की अनुवादित प्रति कर किया था बल्कि वे यह कार्य इस तरह से कर सकते हैं कि वे उनके पास उसी चीज के जरिये पहुँचे जिसकी वे प्रशसा कर चुके हो। प्रश्न उठता है कि उन्होने किस चीज की प्रशसा की? कौन सी चीज उन्हे सबसे अधिक भाई? चीनी सस्कृति—दर्शन, कला, साहित्य और विज्ञान—और भूगोल। अच्छी बात है। अत जेसुइट्स ने कई साल चीनी दर्शन, कला और साहित्य को सीखने और चीनियो के स्तर तक अपने को लाने मे लगाए। जब चीनी अधिकारियो ने ढीठता से उनको दरबार मे आने दिया तो जेसुइट्स ने उन्ही की जबान मे बोलकर और ज्योतिष के नये-नये यत्र और खास तौर के नक्शे दिखाकर उनका ध्यान खीच लिया। विदेशी दुष्ट बताकर निकाल दिये जाने की अपेक्षा उन्हे बुद्धिमान और योग्य व्यक्ति समझ कर स्वीकार कर लिया गया। उनमे से एक, जिसने चीनी ढग की चित्रकारी करना सीखा, अब चीन के शास्त्रीय कलाकारो मे माना जाता है। बाद की अवस्था, जहाँ तक वे बडी ही कठिनाई से पहुँच पाये थे, चीनी राजाधिकारियो को उनसे शिक्षा पाने के लिये इच्छुक बनाती थी। ऐसा उन्होने चीनी वैज्ञानिको से ज्योतिष विद्या पर विचार-विनिमय करके, ससार का नक्शा बनाकर और उनमे उन्ही की तरह जगहो के नाम और बीच में चीनी साम्राज्य को दिखाकर किया। वे जिन बडे-बडे अधिकारियो से मिले, धूप घडी और ज्योतिष विद्या सम्बन्धी साज सामान देकर और आखिर मे रस्म सम्बन्धी शाही विभाग (Imperial Board of Rites) को अपने कलेन्डर को सही करने का जिससे ग्रहण सम्बन्धी भविष्यवाणी करने और नैसर्गिक विधान के बारे मे हिसाब-किताब उतनी योग्यता से और सही लगा सकने मे सहायता दी जितनी उससे पहले चीनी कभी नही कर पाये थे। इसके पीछे उद्देश्य धैर्यपूर्वक आगे बढना था और विज्ञान और दर्शन की मौलिक समस्याओ के बारे मे उस महान् साम्राज्य के शासक से विचार-विनिमय करना था। हाँ, आप देखते हैं कि वे एक ऐसे बिन्दु पर पहुँच गये थे जहाँ बातचीत बहुत धीरे-धीरे शुरू

होती है। तारो के घूमने से सम्बद्ध नियम, एक न्यायकारी और दुनिया के रचना करने वाले भगवान् की प्रकृति, इस ग्रह पर रहने वाले लोगो का भगवान् से सम्बन्ध है ...... ये सारी बाते धीरे-धीरे विनम्रतापूर्वक और बिना किसी हिचकिचाहट के सफल हो गईं। इस सुन्दर और महत्त्वाकाक्षी प्रयास के असफल होने का कारण यह था कि चर्च के अन्दर ही विरोध पैदा हो गया और चीन मे शाही परिवार बदल गया। इसका कारण कदापि उनकी शिक्षा की रूपान्तर और प्रवेश शक्ति का असफल हो जाना नही था।

नियोजन और परिस्थितिनुसार बदलना जेसुइट शिक्षा के दो मुख्य स्तम्भ थे। तीसरी बात, जो उतनी ही महत्त्व की थी, यह थी कि उच्च स्तर की पुस्तके पढाई जाती थी जिसके फलस्वरूप विद्यार्थियो से अधिक सफलता की आशा की जाती थी। प्रोटेस्टैंट रिफारमेशन का विरोध करने के लिये मुख्यत जेसुइट स्कूलो की स्थापना की गई थी और उसके सस्थापक अधिक लोगो को कैथलिक बनाने के सुन्दर सिद्धान्त पर चलते गये। ऐसा करने के लिये यह आवश्यक था कि सबसे कठिन और सबसे लाभकारी विषयो को अत्युत्तम ढग से पढाये। अत उन्होने शास्त्रीय साहित्य के सर्वोत्तम विषयो का एक पाठ्य-क्रम इस मान्यता से तैयार किया कि "We needs must love the highest when we see it" शिक्षा की विषयवस्तु का उल्लेख करना इस पुस्तक का उद्देश्य नही है लेकिन शिक्षा के ढाँचे और उसके तत्वो मे भेद निकालना बिल्कुल असम्भव है क्योकि जैसा कि जेसुइट स्वय कहते हैं, वे शास्त्रीय साहित्य को "आत्मा को पकडने का फन्दा" मात्र समझते थे। जेसुइट शिक्षा प्रणाली की सफलता उसके स्नातको मे सिद्ध होती है। उसने सबसे पहले जेसुइट प्रचारक, लेखक, दार्शनिक और वैज्ञानिको की सूची तैयार कर दी। लेकिन यदि इससे जेसुइट के अतिरिक्त और किसी भी बात को बढावा दिया होता तो यह कम महत्त्व का रह जाता। इसका महत्त्व यह है कि विस्तृत क्षेत्र म महान् विद्वानो का बडी सख्या मे निर्माण करके इसने अपने सिद्धान्तो की सार्थकता को सिद्ध कर दिया। जैसे इसने प्रख्यात दुखान्त लेखक कारनेल, प्रसिद्ध दार्शनिक और गणितज्ञ डेस्कार्टेस, बोसुए (Bossuet) और बौरडोले (Bourdaloue) जैसे वक्ता, मौलिए जैसे सुखान्त लेखक, दर्फ (d'Urfé) जैसा रोमाचकारी उपन्यासकार, मौतेस्क (Montesquieu) जैसा राजनीतिक दार्शनिक, वाल्टेयर जैसा विचारक और आलोचक बनाए जिनको यद्यपि जेसुइट्स एक बुरा शिष्य मानते हैं। फिर भी वह प्रतिभावान व्यक्तियो को पटाने की योग्यता रखने वाला एक कुशल अध्यापक था। ईसा मसीह के सहयोगियो मे कई उनके शत्रु भी थे लेकिन उनमे से कभी किसी ने नही कहा कि उन्हे पढाना नही आता था।

उन्नीसवी सदी मे शिक्षा सम्बन्धी कई क्रान्तियाँ हुई। उनमे सबसे महत्त्वपूर्ण सार्वभौम शिक्षा का आदोलन था जिसका प्रचार कुछ पश्चिमी यूरोप के देशो, कुछ अमेरिकन गणराज्यो, ब्रिटिश साम्राज्य के कुछ देशो और जापान मे हुआ। डेढ हजार वर्षो मे यह प्रथम अवसर था जब उन देशो के लोग साक्षर बने। अधिकाश रोमन सभ्यता मे अधिकतर नगर निवासी और किसानो की भारी सख्या शिक्षित थी जैसा कि साहित्य के विस्तार और

समस्त साम्रज्य मे यत्र-तत्र शिलालेखो से पता लगता है। लेकिन निरक्षरता उनको बर्बर लोगो से मिली जो सदियो से वहाँ बसे थे। अधकार के युग (Dark Ages) मे यह बात करीब-करीब सर्वव्याप्त थी। मध्य युगो मे भी इसका काफी प्रचलन था जैसा कि दूकान के चिन्हो और सिपाहियो के परिधानो से मालूम होता है। यदि सिपाही अशिक्षित होते तो उन्हे सफेद ट्राफी मे तीन गुलाब के फूल जड़ कर अपने मालिक के नाम और परिवार का बोध कराया जाता था। इसी प्रकार अनपढ ग्राहको को बताने के लिए किसी विशेष नाम का साइनबोर्ड नही लगाया जाता बल्कि सोने के गोल गेंदो तथा अन्य साकेतिक चिन्हो से दूकानदार का परिचय दिया जाता था।

यूरोपीय पुनर्जागरण (रेनेसा) युग मे पढना-लिखना एक साधारण बात हो गई, विशेषकर तब जब पश्चिमी देशो ने मुद्रण की विधि मालूम कर ली। फिर भी साक्षर लोगो की सख्या कम ही रही। लगभग सन् १८७० के बाद से ही आधुनिक ससार मे सभ्य देशो के अधिकतर लोग साक्षर बने हैं। लेकिन ससार की अधिकतर आबादी अभी भी निरक्षर है। फिर भी हम यहाँ पश्चिमी राष्ट्रो की ही चर्चा कर रहे हैं। उनमे और उन पर निर्भर अन्य देशो मे सर्वसाक्षरता का आदोलन उन्नीसवी और बीसवी सदी के शुरू मे हुआ। यह निरन्तर विकसित हुआ। इसे सफलता मिली। यह एक उदार और शांतिपूर्ण क्राति रही है। यद्यपि इस समय इसके प्रभावो को साफ-साफ बताना इसलिए सम्भव नही क्योकि यह बहुत बडा था फिर भी इसके परिणामस्वरूप पश्चिमी देशो में स्कूलो और कालेजो की भरमार हो गयी। सन् १८२० के गाँव सन् १९२० तक अच्छे खासे नगर बन गये और वहाँ बडे-बडे स्कूल और युवा नागरिको के लिये विस्तृत शिक्षा प्रणाली बन गयी थी। शिक्षा-मन्त्रियो और बोर्डो का, देश की सारी ऐसी सस्थाओ पर अधिकार था।

उन्नीसवी और बीसवी सदी के शुरू मे हम यह आशा शायद करें कि उस समय विलक्षण अध्यापक जैसे शिक्षा के अग्रदूत उत्साही और शिक्षा मूर्ति हुए होगे। लेकिन ऐसी बात नही, निश्चय ही उस समय कई असाधारण अध्यापक हुए और शिक्षा के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण कार्य किये गये। फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से पढाई का स्तर अधिक गिरा हुआ था और मध्ययुगो के किसी भी समय की अपेक्षा अधिक बुरे और घृणात्मक शिक्षक थे। ऐसी हतोत्साहक स्थिति के पैदा होने के कई कारण थे। अशत, यह उन्नीसवी सदी के शुरू का वह दर्दनाक और अधूरा धार्मिक नैतिक दृष्टिकोण था। यह दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित था कि महत्त्वपूर्ण विषयो को ऐसी भयानक गम्भीरता के साथ पढाया जाना चाहिए जिसमे कठोर अनुशासन और कठिन परीक्षा को सफल जीवन की पृष्ठभूमि माना गया हो। इसके साथ ही वह इस मान्यता मे विश्वास रखता हो कि शिक्षा का उद्देश्य तथ्य सचय था जिस तरह जीवन का उद्देश्य जमीन जयादाद प्राप्त करना था। अशत, इसकी उत्पत्ति विज्ञान और दूसरे विषयो की बराबरी के बारे मे गलतफहमियो के होने की वजह से पैदा हुई थी जो शिक्षा के अग हैं (उदाहरण के लिए) इसकी वजह से ए० इ० हाउसमैन (A E Housman), स्वय एक भावपूर्ण कवि और समालोचक होते

हुए भी भ्रान्तिवश जिन्दगी भर सुन्दर लैटिन कविता के बारे मे लेक्चर देते रहे और तब तक यह नही बताते थे कि कविता सुन्दर है जब तक उनसे इसके बारे मे पूछा न जाय। और इसी भावना से हजारो अध्यापक गलतफहमी से हरेक कक्षा मे हर विषय को उसी निर्लिप्त भाव से पढाते थे जिस तरह कोई सर्जन कोई बडा ऑपरेशन कर रहा हो। इसके बहुत से दूसरे सामाजिक और सास्कृतिक कारण हैं जिन पर हम यहाँ विचार नही कर सकते। लेकिन वास्तविक बात यह है कि उन्नीसवी सदी मे, चतुर और दिलचस्प लोग स्कूल मे बुरे ढँग की शिक्षा की वजह से उनके मस्तिष्क और चरित्र पर पडने वाले कुपरिणामो के बारे मे पहले के अनुपात मे अधिक शिकायत करते थे। मशीन जैसा काम करने वाले अध्यापक यदि अनुपात मे नही तो सख्या मे तो बहुत बढ गये। बुरे अध्यापको की सख्या तेजी से बढी और घृणास्पद ढँग से पढाकर बहुत से आवश्यक विषयो का सत्यानाश ही कर दिया। अच्छे अध्यापक अपेक्षाकृत या आशा से कम ही होते थे।

याद रहे कि इसका तात्पर्य अच्छे विद्वान् से नही है क्योकि वैज्ञानिक खोज—जैसे भैषज, ज्योतिष, भूगर्भ शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, रसायन शास्त्र और भौतिक शास्त्र आदि विषयो के लिए यह एक अपूर्व सफलता का युग था। दूसरे विषय, जैसे साहित्यिक और ऐतिहासिक समालोचना, समाज शास्त्र, इतिहास, जाति शास्त्र, सौन्दर्य शास्त्र जैसे दूसरे विषयो की खोज और परिमार्जन की दृष्टि से यह युग अद्भुत परिश्रम, बल, व्यवस्था का युग था। जिन लोगो ने ये खोज और शोध किए वे प्रतिभावान विचारक थे और उनकी बुद्धि विशाल और सबल थी। लेकिन प्राय वे लोग अच्छे अध्यापक नही होते थे।

कभी-कभी तो सचमुच वे अपने शिष्यो से घबराते थे। प्रसिद्ध गणितज्ञ गौस (Gauss) पढाने से घृणा करता था और जो विद्यार्थी पढने के लिए उसके कोर्स के लिए दाखिल होते थे उनमे से प्रत्येक को वह जता देता था कि इस बात की सम्भावना हो सकती है कि उन्हे कोर्स से कुछ भी न पढाया जाय। वे लोग अधिकतर नवयुवको के सम्पर्क मे नही रहते थे। स्वय वे किसी अज्ञात दिशा मे निरन्तर आगे बढते चले जा रहे थे और इस दौरान मे उन्हे पीछे की सारी चीजें अरुचिकर दीख पडती थी। अपने विद्यार्थियो की साधारण कठिनाइयो को भी वे नही समझ पाते थे और अपने विषय के अलग-अलग हिस्सो के सम्बद्ध रूप से अपने विद्यार्थियो को अवगत नही कराते थे क्योंकि ये चीजे उन्हे साधारण जान पडती थी लेकिन कोर्स को शुरू करने वालो के लिए यही बाते अग्राह्य होती थी। भौतिक शास्त्री, हेमोल्टस (Helmholtz) नामक भौतिक शास्त्री तो प्रयोगशाला मे अपने विद्यार्थियो के प्रश्नो का उत्तर तक नही देते थे। जब उनसे कोई विद्यार्थी कोई प्रश्न पूछता तो वे वायदा करते कि वे उस पर विचार करेंगे और कुछ दिनो के बाद उसका उत्तर देते थे। तब तक विद्यार्थी उस स्थिति से काफी दूर निकल गया होता (क्योंकि वह स्थिति इतनी साधारण और व्यापक होती) कि वह नवयुवक शायद ही उनमे कभी भी कोई सामजस्य देख पाता था। एक बार लॉर्ड केल्वीन (Lord Kelvin) ने अपने विद्यार्थियो को ज्योतिष की एक पुस्तक पढने की सलाह दी और कहा कि वे

आसानी से उसके पचास पन्ने एक दिन मे समाप्त कर सकते हैं और वे जब कभी लेक्चर देते तब वे अपने विषय को इतनी तेजी मे पढाते कि "श्रोतागण उनके भाषण का कुछ भी प्राप्त नही कर सकने के कारण मे केवल अपने आपको उनके अविश्रान्त आचरण की सराहना करके ही सन्तोष कर लेते थे।" मामसेन (Mommsen) नामक इतिहासज्ञ इस तरह की गलती नही करता था क्योकि वह अपने लेक्चरो को बहुत ही सावधानी और सही ढँग से तैयार करता था। लेकिन जान पडता है कि वह केवल ऐसी बातो पर ही विचार करता था जिनमे उसको दिलचस्पी हो न कि वैसी बाते जिनको उसके श्रोता समझ सकें। इसका परिणाम यह होता था कि घण्टे के समाप्त होने के बहुत पूर्व ही उसका लेक्चर रूम (Lecture Room) आधे से भी अधिक खाली हो जाता था।

इसके बावजूद भी उन्नीसवी और बीसवी सदी के प्रारम्भ मे बहुत से महान् अध्यापक हुए जिन्हे उनके विद्यार्थी श्रद्धा और कृतज्ञता सहित याद करते थे। उनका विशद विवरण देना कठिन है क्योकि उनका सम्बन्ध अनेको शताब्दियो से और कई पीढियो से है और चूँकि उन्हे जेसुइट (Jesuits) और यूरोपीय पुनर्जागरण (रेनेसा) युग के अध्यापको की तरह वर्गीकृत नही किया जा सकता इसलिए उनकी कृतियो से प्राप्त कुछ मामूली और अस्त-व्यस्त विशेषताओ का ही जिक्र किया जा सकता है। लेकिन पाँच-छ विशेषताएँ उन सबो मे सामान्यत पायी जाती हैं।

उनके सभी विद्यार्थी इस बात से सहमत हैं कि वे सगीन समालोचक थे। जब कि रेनेसा युग के अध्यापक दृढ होते थे और जब कि जेसुइट प्रसन्नचित्त और प्रोत्साहक होते थे, इस काल के अध्यापक अति कठोर और कभी-कभी अपनी गलतियो और छोटी-मोटी बातो का उद्घाटन करने मे निर्दयता से काम लेते थे। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के जौवेट महाशय (Jowett) ने चोटी के विद्वान् न होते हुए भी बायलियाल कालेज (Balliol College) की शिक्षा के स्तर को नवयुवको को डक मारकर प्रगति करने पर बाध्य किया और शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाया। उनकी बहुत सी टिप्पणियाँ आज भी सुरक्षित हैं। वे अधिक प्रतिभापूर्ण नही मालूम पडती। फिर भी जिन लोगो ने उस डक की चोट सही और उससे लाभ उठाया उनके वृतान्तो से हमें मालूम होता है कि वे टिप्पणियाँ प्रभावोत्पादक सिद्ध हुईं और इन सब बातो को मिलाकर जो मधुरपाक तैयार हुआ उसकी सुगन्ध आज भी मनमोहक लगती है। जैसे—

एक आदर्शवादी नवयुवक से जिसका कहना था कि उसके जीवन का उद्देश्य ईसा के जीवन की किसी परमावस्था को प्राप्त करना था, वे पूछते "आप उस अवस्था को पाने के बाद क्या करेंगे महाशय?"

किसी नास्तिक युवक ने उनसे कहा, "प्रकृति मे मैं ईश्वर के अस्तित्व का कोई चिन्ह नही देखता और जब स्वय मैं अपने हृदय में बैठकर उसे ढूंढता हूँ तो वहाँ भी वह मुझे नही मिलता।" जौवेट महाशय ने आदेशपूर्वक उत्तर दिया, "तुम कल सुबह तक उसे ढूंढ लो अन्यथा कालेज छोड़ दो।"

एक युवक विचारक से जो कहा करता था कि उसके जीवन का आदर्श सत्य की खोज मे अपना जीवन अर्पित कर देना है वे बोले, "तुम उसे शायद नौ सौ पौण्ड प्रतिवर्ष तक खर्च करके पा सकते हो लेकिन उससे अधिक कीमत पर नही।"

जौवेट महाशय का चित्र आज भी उनके कालेज की दीवार से लटक रहा है। वे नाटे कद के गोल और तेज आँखे और लटकते मुह वाले अप्रिय व्यक्ति थे मानो महारानी विक्टोरिया और मिस्टर टलकिंग हौर्न (Tulkinghorn) की पुट हो। लेकिन आपकी ओर घूरती हुई छोटी, सतेज आँखे जब आप से मिलती हैं तब आपके मन मे यह भावना उठती है, कि ऐसे व्यक्ति से घटिया काम करके निकल जाना सचमुच बडा मुश्किल काम हो गया। एक बर्लिन के भाषाविज्ञ, विलामो विट्स, मोलेनडोर्फ (Wilamowitz-Moellndoroff) के यहाँ पहली बार एक नवयुवक विद्यार्थी गया। वह युवा विद्यार्थी आज एक विश्वविख्यात विद्वान् हैं लेकिन आज भी उसे विलामोविट्स का वह लम्बा, सशक्त और प्रभावोत्पादक शरीर याद है जो उसने सुबह आठ बजे सीढी से उतरते हुए बातचीत इस प्रश्न से शुरू करते हुए सुना था कि "तुम क्या पढ रहे हो ?"

चाहे कोई भाषण कितना ही लम्बा क्यो न हो, इस बात को उसे इतने प्रभावोत्पादक ढग से नही बता सकता था कि एक विद्वान् का कर्त्तव्य निरन्तर पढते ही रहना होता है।

फिर फुस्ते-दे-कुलाशे (Fustel de Coulanges) नामक इतिहासज्ञ, जिसने अपने जीवन का सर्वोच्च भाग एकोल नोर्माल (ecole Normale) नामक संस्था मे बिताया था। कभी भी अपने विद्यार्थियो के तर्कों को मान्यता नही देता था जब तक उसका प्रत्येक भाग दस्तावेजो (Documents) से प्रमाणित न किया गया हो। वह पूछता, "क्या तुम्हारे पास प्रमाण है ?" यदि प्रमाण नही होते तब उनके सिद्धान्त केवल कल्पना मात्र ठहराये जाते थे। अमेरिका मे जेम्स हार्वे रोबिन्सन नामक इतिहासज्ञ, दार्शनिक और दार्शनिक इतिहासज्ञो के प्रशिक्षक थे।

इस युग के अच्छे अध्यापक समालोचना मे नही थकने वाले होते थे लेकिन इनमे एक दूसरा गुण था जो प्रभावहीन अध्यापको मे नही था। भले ही ये अध्यापक नयी-नयी बातो को पता लगाने मे कितने ही प्रतिभावान क्यो न हो, इस गुण के द्वारा उन्हे सभी प्रकार के नर-नारियो पर प्रभुत्व हो जाता था। इन विद्यार्थियो मे अनेक देश और वलास के नवयुवक-नवयुवती शामिल होते थे और उनका काम उनके मरणोपरान्त भी जारी रहता था। इसका वर्णन करना कठिन है। सचमुच बहुत से लोग, जिन्होने उनका अनुभव किया है वे यह शिकायत करते हैं कि वे उनका बयान नही कर सकते। इसे हासिल करना तो और भी कठिन है। इसमे अध्यापको के कालेजो मे नही पढाया जा सकता और हमेशा मनन अथवा कार्यस्थ मे लाकर बढाया नही जा सकता। फिर भी एक सफल अध्यापक के लिए यह अमूल्य होता। सफल स्त्री या पुरुष की सफलता का भी यही रहस्य है। साधारण भाषा में हृदय की विशालता की सज्ञा दी जा सकती है।

उसमे उदारता और मानवता के प्रति प्रेम टपकता है। हाउसमैन जैसे अध्यापक [illegible]

हृदय भले ही कोमल हो और वे भले ही कुछ खास लोगो के प्रति खास तौर से उदार हो, लेकिन वे अधिकतर लोगो से घृणा करते थे या अधिक सभव है, उनसे डरते थे। दूसरे अध्यापक अपने कार्य मे इतने तल्लीन होते थे कि वे विद्यार्थियो को उसी तरह समझते थे जैसे रसोइया मक्खी को समझते हैं अर्थात् ऐसे भूखे और तग करने वाले जीव, जिन्हे भगाने की जरूरत होती है और करते हुए काम मे दखल देने या उनके पैरो से किसी चीज के खराब होने से बचाना होता है। अच्छे अध्यापक अपने अधिकतर विद्यार्थियो को पसद करते थे और उसी तरह अधिकतर लोगो को भी वे अपने उस प्रेम को छिपाते नही थे। उनमे से कुछ ओसलर (Osler) जैसे अध्यापक, जो पहले मैगिल (McGill) उसके बाद जौन होप्किन्स (Johns Hopkins) और उसके बाद ऑक्सफोर्ड मे भैपज का प्रोफेसर थे, काफी हँसमुख और प्रसन्नचित्त व्यक्ति थे। वे हमेशा मजाक भरी बाते करते और विद्यार्थियो से खुलकर मिलते जिस तरह सूरज के उदय होने पर जीनिया के फूल खिल उठते हैं। दूसरे अध्यापक आरनौल्ड औफ एबी (Arnold of Rugby) की तरह गभीर और करीब-करीब उल्लू की तरह चुप होते थे। आरनौल्ड के किसी विद्यार्थी ने एक विख्यात शिक्षाप्रद उपन्यास टौम्ब्राउन्स स्कूल डेज (Tom Broun's School days) मे उनके स्कूल चलाने के तरीके के बारे मे जिक्र किया। ह्यूजेज (Hughes) की पुस्तक में आरनौल्ड सबसे निष्प्राण चरित्र हैं। उसमे उन्हे एक भयानक डाक्टर के रूप मे दिखाया गया है जो किसी के पिता या भगवान् के बीच के किसी जीव की तरह दिखाया गया है। यह कभी स्पष्ट नही किया गया है कि वास्तव मे वे अपने स्कूल के लिए क्या कुछ करते रहे हैं। आरनौल्ड का सच्चा चित्र देखने के लिए ह्यूजेज की पुस्तक के उन भागो को अवश्य पढना चाहिये जिनमे उनकी प्रशसा है। तब लिटन स्ट्रैची (Lytton Strachey) कृत हास्यपूर्ण व्यग्य एमिनेन्ट विक्टोरियन्स (Eminent Victorians) पढिये। तब उनको सच्चे जीवन के बारे मे डिक्सनरी ऑफ नेशनल बायग्राफी (Dictionary of National Biography) तत्पश्चात ए० एफ० स्टैन्ले (A F Stanley) द्वारा लिखित उनके जीवनी और पत्र पढते हुए अत मे उनके पुत्र द्वारा चित्रित उनका आदर्शवादी रूप 'रग्बी चैपेल' (Rugby Chapel) नामक पुस्तक में पढिये। इन सबो को पढने से विभिन्न रूप में यही बात जाहिर होती है कि आरनौल्ड अपने साथी और बधुओ से बचपन से ही प्यार करता था। एक बार जब वह लालेहाम मे एक नवयुवक अध्यापक का काम करता था, एक मद बुद्ध विद्यार्थी को झाडा। वह बेचारा विद्यार्थी, उसकी ओर देखता हुआ बोला, "महाशय, आप मुझ से क्रोध में क्यो बातें करते हैं ? वास्तव मे मैं भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ।" इस घटना ने आरनौल्ड के मन पर गहरा प्रभाव डाला और वे कभी उसे भूले नही। इसके बाद गभीर होने पर भी वे मूलत दयावान बने रहे।

एक बुरा अध्यापक भी अच्छा अध्यापक बन सकता है यदि उसमे ऐसी जिन्दादिली आ जाए (नि सन्देह उसमें बुद्धि का होना भी बहुत आवश्यक है।) कुछ चतुर और असयमित व्यक्तियो ने अपनी त्रुटियो के बावजूद करीब-करीब पूरी सफलता से पढ़ाने का

काम किया है क्योकि वे अपने विद्यार्थियो को वहुत पसन्द करते थे । अक्सर उनके काम की रिपोर्टों के आधार पर यह पता लगाना वडा कठिन होता है कि किस प्रकार वे इतनी खूबी से काम चला सके । उनका सब काम बिल्कुल ऊटपटॉग, अधूरा, असन्तोपजनक और परस्पर विरोधी जान पडता है । लेस्चटिस्की (Leschetizky) नामक सगीतज्ञ ने पादेरेवस्की (Paderewski), स्नावेल (Schnabel), और ब्रेलोवस्की (Brailowsky) तथा और दूसरे विख्यात पियानो वजाने वालो को प्रशिक्षित किया था । फिर भी वह अपने आप से कहता, "मेरा न कोई तरीका है और न होगा ।" उसके किसी पाठ का शब्दचित्र विवरण से हमारे मन मे केवल आकर्पण, शब्द सौष्ठव, सिगार का धुआँ और कौतूहल के सिवा और कोई स्पष्ट चित्र नजर नही आता । प्रत्यक्षत, वह यह जानता था कि कला मे अशत तारतम्य होना चाहिये और हमेशा रचयिता की छाप रहनी चाहिये ।

दर्शन मे इस तरह की शिक्षा का उदाहरण विलियम जेम्स था । यह हम कह सकते हैं कि शायद विलियम जेम्स था । "अपने क्लास-रूम मे भी वह विल्कुल उसी तरह ढीला-टाला किन्तु उत्तेजक और अत्यन्त आकर्पक रहता था ।" उसके लिए लम्बा, लगातार, नियमित और अधिकारपूर्वक भापण देना असम्भव लगता था और साथ ही प्रत्येक अवसर पर क्रमश तर्क पेश करना, प्रमाण के वाद प्रमाण देकर किसी धार्मिक सिद्वान्त को पढाना असम्भव-सा लगता था । वे समझते थे कि इस तरह के भापण देने से विचार की आवश्यक चपलता (Flexibility) भग हो जायेगी और उस सिद्धान्त को पढाने मे उसकी अनन्त पेचीदगी, विचित्रताए और यथार्थ का अवूरापन प्रत्यक्ष नही हो पायेगा । वे समझते थे कि लोगो को वातें वता देना ठीक नही । वे किसी वात को कहते समय 'अगर' 'या' 'हो सकता है' लगाकर कहना अधिक अच्छा समझते थे । वोलते-वोलते वे वीच-वीच मे रुक जाते और मस्तिप्क मे नये सुझाव के आने पर उसके वारे मे वोलते हुए इतनी आगे वढ जाते कि उन्हे अपने मौलिक विपय पर लौटने के लिए यह कहना पडता 'हाँ, तो मैं क्या कह रहा था ? वे अपने ही प्रस्तावो के विपक्ष मे आपत्ति प्रकट करते, वक्तृत्व की अपेक्षा विचार-विमर्श को अधिक पसन्द करते और वहुत गम्भीर विपयो पर भी मजाक करते, जैसा कि जीवन मे अक्सर होता है । एक वार वे स्पेन्सर के विकासवाद की परिभापा पढने लगे—

"विकास वस्तु का एकीकरण और उसकी सहगामी गति का विलोम है । इस प्रक्रिया मे वस्तु एक अनिश्चित और सामजस्यहीन सामान्य से होकर निश्चित और सामजस्यपूर्ण पार्थक्य मे वदल जाता है ।"

और वाद मे उन्होने इसी को इस प्रकार अनूदित किया—

"उन्होने दुनिया की सवसे गम्भीर समस्या, पाप की समस्या, का तर्क से नही वल्कि यथार्थवादी दृष्टिकोण से सामना किया ।" इस वात को उन्होने क्लास के सामने यह कहकर व्यक्त किया—

'यह ससार तव तक पूर्णतया भला नही वन सकता जव तक यहाँ एक भी जीव दुखी

है और जब तक तुच्छ से तुच्छ जीव के भी प्रेम का प्रतिकार नही मिल पाता।"

और हम इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि उन्होंने हार्वार्ड मे यह कहकर कि "निश्चय ही भगवान् भद्रपुरुष नही है।" कितना तहलका मचा दिया था। फिर भी लोग जानते हैं कि उनकी इस नटखट वाक्य-चपलता और भुलावे मे डाल देने वाली बेमेल बातो के पीछे एक ऐसी सच्ची और सजीव भावना का स्पन्दन होता था जिसका स्रोत जीवन की अन्तरात्मा है।

यह गुण, जिसे हमने दरियादिली की उपाधि दी है, इसमे शारीरिक और मनोवैज्ञानिक, दोनो तरह की शक्तियो की चर्चा है। पतले और सूने शरीर वाली श्रीमती अन्जेला थर्केल की मिस वन्टिग जैसी अध्यापक स्त्रियाँ और विटोरिनो दा फेल्टर (Vittorino da Feltre) जैसे सटीके और दुबले लोग अध्यापक हो, फिर भी उनमे अपूर्व शक्ति होती है। वे कार्य करते समय लडखडाते या पीछे नही छूट जाते और दिनचर्या मे तो वे नियमित गति से चलते हैं। कुछ सचमुच उच्च कोटि के अध्यापक भाषण के पहले बीस मिनटो मे अपनी मृदुल वाणी से इस तरह बोलते हैं मानो विषय को बहुत ही आसान रूप मे, उस समय तक ऐसे ही बोलते जाते हैं जब तक उनकी बात श्रोता समझ नही लेते या जब तक श्रोताओ उनके कठिन विषय को उसी आसानी से बोलते हुए पूरा सुन न लिया हो। ऐसा करते हुए यह अनुभव होगा कि अपने भाषण के दौरान मे गुप्त रूप से शक्ति और प्रेरणा मिलती रही और आप भी उसमे हाथ बटाते रहे। कभी-कभी यह शक्ति उनके शरीर का चमत्कार होती है। प्लेटो यह बात जानता था और वह स्वय एक सशक्त व्यक्ति था। अपने "सिपोजियम" के अन्त मे उसने लिखा है कि प्रात काल केवल आगाथोन (Agathon) नामक नाटककार और शराबी, मजाकिया एरिस्टोफेन्स (Aristophanes) सुकरात के साथ जग रहे थे। सुकरात उनको तब तक कोई सैद्धान्तिक विषय समझाते रहे जब तक उन दोनो को भी नीद नही आयी और उन दोनो को वही कपडे से ढककर उन्होने स्नान किया और यथापूर्व सारा अगला दिन बिताया। बोआसिएर (Boissier) नामक इतिहासज्ञ बिल्कुल डैनमो की तरह फुर्तीला था। यहाँ तक कि बडी उम्र मे वह छ बजे से पहले अपने रोजमर्रे लेक्चर को तैयार करने के लिए उठता था और उसको समाप्त करने के बाद आवश्यक सभाओ में शामिल होता था। इसके बाद दोपहर का समय पढने और लिखने में बिताता था और शाम का समय दावते खाने, कहानी सुनाने और अपनी सजीव भाषा में गम्भीर बातें बताता था।

ईसा मसीह के दीक्षा देने के बारे मे कुछ कहानियाँ उसी तरह की शक्ति का प्रतिपादन करती हैं। उनके चारो तरफ से लोग घेर लेते थे और उनके स्पर्श का अनुभव करना चाहते थे। इसका मतलब यह हुआ कि वे लोग उनके शरीर मे दौडती हुई विद्युत-शक्ति का अनुभव करना चाहते थे जिससे उन्हे नयी शक्ति मिले। वे स्वय भी कभी-कभी ऐसा ही अनुभव करते थे क्योकि एक बार, जब किसी बीमार स्त्री ने अनजाने मे उनके कपडे का स्पर्श कर लिया, वह स्वस्थ हो गयी लेकिन उसी क्षण ईसा को अनुभव हुआ कि

उनकी कुछ अपनी शक्ति विलुप्त हो गयी। उन्होंने जो टिप्पणी की उसका पारस्परिक ढँग से यो अनुवाद किया जा सका है—"मेरे शरीर से पुण्य का ह्रास हो गया है, लेकिन वास्तव मे उनके कहने का अभिप्राय यह था कि मैंने अपने शरीर से शक्ति के क्षय होने का अनुभव किया।"

महान अध्यापको की शक्ति भी एक अजीब चीज है। अभी तक हम इसके बारे मे बहुत कुछ नही जान पाये हैं और अभी भी बहुत कुछ पता लगाने को शेष है। इस शक्ति की उत्पत्ति केवल या मुख्यत शारीरिक नही जान पडती। तुलना मे दुबले पतले मे ही अधिक बल होता है। उसी तरह यह बल उन लोगो मे भी होता है जो अपने स्वास्थ्य की अधिक चिन्ता नही करते। लेकिन इसमे सदेह नही कि इस बल का प्रभाव शरीर मे अभिव्यक्त होता है। इसके बारे मे एक और मुख्य बात यह है कि जब वह आदमी अकेला हो, किसी बात का मनन कर रहा हो, कुछ लिख रहा हो, या सफर कर रहा हो तब यह बल अवसर मालूम नही पडता और यहाँ तक कि उसका लोप होता है। इस बल से युक्त आदमी मे इस शक्ति की अभिव्यक्ति जोर शोर से तब होने लगती है मानो कोई बडी धारा हो जब वह आदमी दूसरे लोगो के बीच होता है। लोगो की यह भीड कोई ऐसा-वैसा जनसमूह या रेलवे स्टेशन की भीड नही होती बल्कि इसमे ऐसे व्यक्ति होते हैं जिनको यह शक्ति प्राप्त है। वे कहते हैं कि उनके बल का रहस्य स्वय उनमे नही बल्कि इर्दगिर्द रहने वाले नर-नारी, श्रोतागण, विद्यार्थी और दर्शक होते हैं। ईसा को यह देखकर आश्चर्य हुआ था कि जब वे नजरथ लौटे और वहाँ शिक्षा देने लगे तो बहुत से नगर-वासियो ने उनकी बातो पर विश्वास नही किया और (जैसा कि अन्तर्निहित है) यही कारण था कि वहाँ वे अपनी 'शक्ति' का प्रदर्शन नही कर सके अर्थात् वे वहाँ के लोगो पर वे चमत्कार नही दिखा सके जैसा कि उन्होंने दूसरी जगहो पर किया था। शायद इसी लिए इस शक्ति को भविष्य मे अध्यात्मिक शक्ति के नाम से पुकारा जायेगा। यह शक्ति किसी व्यक्ति या उसके ग्रुप की होगी जिसको वह ऐसे ढग से प्रयोग करेगा कि वे चकित हो जाये और स्वय उसे आश्चर्य हो। शायद इस शक्ति मे किसी वैसे महान वक्ता द्वारा अनुभव की जाने वाली 'प्रेरणा' के सदृश्य देखा जाने लगेगा जिसने कठिनाई के बाद अपने श्रोताओ पर अपना आधिपत्य जमा लिया हो और जिसने अपने को अपने श्रोताओ की वाणी बना लिया है। वह ऐसा महसूस करता है कि जनशक्ति उसे बोलने के लिए प्रेरित कर रही है जिनको वह आकार और अर्थगत बनाता है।

मैत्रिभाव और शक्ति के साथ-साथ उन्नीसवी सदी के सर्वोत्तम अध्यापको के मस्तिष्क भी इतने विकसित और विस्तृत होते थे जिससे वे अनेक विभिन्न विषयो को पढ़ा सकें। और अपने जीवन से उनका सम्बन्ध स्थापित कर सके। इन दिनो विशेषज्ञ खोज करने मे तो अपूर्व थे लेकिन पढ़ाने की कला मे शायद ही अच्छे होते थे। उनके ज्ञानों के पैठ की गहराई बढ़ने के साथ-साथ उनका मस्तिष्क सकुचित होता चला गया। जिन अध्यापको की ख्याति बहुत अधिक थी वे एक ही साथ तीन या चार क्षेत्रो मे ज्ञान रखते थे और

अपने पेशेवर (Professional) दायित्वो को अपने विविध और विस्तृत सामाजिक जीवन से जोड देते थे। एक चिकित्सक होने के अलावा, ओस्लर (Osler) शास्त्रीय साहित्य और न जाने कितनी दूसरी विद्याओ के नौसिखिए (Amateur) थे। एक शोध कार्य करने वाला विद्वान् अपने ज्ञान-भण्डार को भर सकता है और उसे समृद्ध बना सकता है लेकिन एक अध्यापक को अनेको दूसरे लोगो को ज्ञान देकर उन्हे मानसिक रूप से विकसित करना पडता है। इसलिए उसके लिए आवश्यक है कि वह अपनी शक्ति (Vigour) विभिन्न साधनो से प्राप्त करे।

ये अध्यापक अधिकतर कार्य प्रयोगशालाओ या गोष्ठियो मे अपने विद्यार्थियो को शोध कार्य मे सहायता पहुँचाया करते थे। लेकिन यहाँ उनका ढग इससे बिल्कुल भिन्न है, न केवल विषय की दृष्टि से बल्कि विभिन्न व्यक्तियो के लिहाज से भी और वह इतना भिन्न है कि उनकी चर्चा एक साधारण योजना के अधीन करना शायद ही सम्भव है। लेकिन अपने लेक्चरो के द्वारा वे कही अधिक प्रभाव डालते हैं। इसी लिहाज से हम उनके कुछ विशेष ढगो का उल्लेख करेंगे और उनके भेदो की चर्चा करेंगे।

इस तरह के लेक्चर मुख्यत दो श्रेणियो मे आते हैं। एक शुष्क और नीरस था। दूसरा गर्म और समृद्ध। एक किसी धातु पर खुदाई जैसा (Etching) था और दूसरा पेन्टिग जैसा। किसी कुशल अध्यापक द्वारा किये जाने पर ये दोनो ढग कारगर और स्मरणीय बने।

इन दोनो मे से पहली प्रणाली इतिहासज्ञ फुस्टल दे कोलान्जेस (Fustel de Coulanges), चिकित्सक रदरफोर्ड (Rutherford), और दार्शनिक डेवी (Dewey) का था। फुस्टल अपने साथ कुछ पुस्तके ले आते थे, जिनको इस तरह से नियमित किया जाता था कि जिससे वे दृष्टान्तस्वरूप उद्धरण प्रस्तुत कर सके और अपने लेक्चर की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर सके। इसके बाद वे तेज आवाज मे लगातार डेढ घण्टे तक बोलते जाते जिस बीच वे बिल्कुल नही रुकते, विश्राम नही लेते और कभी सौन्दर्य का आभास नही करते थे। यद्यपि यह एक इतिहास सम्बन्धी विचार-विनिमय था, उनके एक विद्यार्थी का कहना था कि उनकी क्लास हिसाब की क्लास जैसी लगती थी (यहाँ जरा वैज्ञानिक आदर्श की ओर ध्यान दें)। स्वय फस्टेल को यह लिखते गर्व का अनुभव हुआ कि "पच्चीस साल तक मेरी जबान से एक भी 'बढिया' मुहावरा नही निकला।" 'बढिया' से उनका तात्पर्य 'दिखावटी' और 'बनावटी' से था। फिर भी उनके लेक्चर बडे साफ और स्पष्ट होते थे। इसी तरह रदरफोर्ड (Rutherford) महाशय भी जैसे लिखने मे वैसे ही बोलने मे भी "सहज और साफ अँग्रेजी का प्रयोग करते थे, जिसमें स्पष्ट भाव के साथ-साथ जोर भी होता था।" वे वैसे कुछ वैज्ञानिको की आदत पर आपत्ति करते थे जो किसी शोधकार्य पर महीनो तो निकाल देते लेकिन उन प्राप्त परिणामो को सहज और समझ मे आने योग्य भाषा मे लिख डालने के लिए कुछ घण्टे नही दे सकते थे। एक बार तो उन्होने अपने मित्र ट्वीड्समूर (Tweedsmuir) से साफ कह दिया कि

"वे किसी खोज को उस समय तक पूरा नही समझते थे जब तक उस खोज को सहज और सही अँग्रेजी मे लिख न दिया गया हो।"

इसी तरह डेवी (Dewey) के शिष्य, दार्शनिक इर्विन एडमन अपने लेक्चर देने के ढग का वर्णन इन शब्दो मे करते हैं —

"He sat at his desk, fumbling with a few crumbled yellow sheets and looking abstractedly out of the window He spoke very slowly in a vermont drawl He looked both very kindly and very abstracted He hardly seemed aware of the presence of a class He took little pains to underline a phrase, or emphasise a point, or, so at first it seemed to me, to make any He seemed to be saying whatever came into his head next The end of the hour finally came and he simply stopped, it seemed to me that he might have stopped anywhere But I soon found that it was my mind that had wandered, not John Dewey's I began very soon to do what I had seldom done in college courses—to take notes It was then a remarkable discovery to make to find that what had seemed so casual, so rambling, so unexciting, was of an extraordinary coherence, texture, and brilliance I had been listening not to the semi-theatrical repetition of a discourse many times made—a fairly accurate description of many academic lectures—I had been listening to a man actually *thinking* in the presence of a class"

अर्थात्

"वे अपनी मेज पर बैठ गये और कुछ अधफटे पीले कागज के टुकडो मे उलझे हुए भावशून्य हृदय से खिडकी से बाहर दृष्टि दौडाते। वे धीमी आवाज मे धीरे-धीरे बुदबुदाते थे। उनके चेहरे मे दया और मन की गौण भावनाओं का आभास मिलता था। उन्हे शायद ही किसी लगे हुए क्लास की उपस्थिति का बोध होता था। किसी चीज को पढाते हुए वे किसी वाक्याश पर लकीर लगाने या किसी बात को जोर देकर कहने का प्रयत्न नही करते थे। या कम से कम शुरू मे तो ऐसा मालूम पडता था कि । मुझे ऐसा लगता था कि उनके मस्तिष्क मे जिस तरह अगली बात आती वे उसी तरह उसे बोलकर व्यक्त कर देते थे । अन्त मे जब समय समाप्त हो जाता तब वे अनायास रुक जाते थे। मुझे ऐसा लगता था कि उन्हे रुकने के लिए किसी नियत स्थान पर पहुँचने की आवश्यकता नही पडती थी। लेकिन शीघ्र ही मैने अनुभव किया कि वास्तव मे न कि जौन डीवे के मस्तिष्क ने चक्कर खाया है, मै शीघ्र ही नोट्स लेने लगा। मै शायद ही कभी कालेज मे नोट्स लिया करता था। यह अपूर्व बात जानकर यह देख कर कि उनकी साधारण लडखडाती, रुचिहीन बातो मे भी एक अपूर्व सामञ्जस्य, बनावट और प्रतिभा का संयोग

अपने पेशेवर (Professional) दायित्वो को अपने विविध और विस्तृत सामाजिक जीवन से जोड देते थे। एक चिकित्सक होने के अलावा, ओस्लर (Osler) शास्त्रीय साहित्य और न जाने कितनी दूसरी विद्याओ के नौसिखिए (Amateur) थे। एक शोध कार्य करने वाला विद्वान् अपने ज्ञान-भण्डार को भर सकता है और उसे समृद्ध बना सकता है लेकिन एक अध्यापक को अनेको दूसरे लोगो को ज्ञान देकर उन्हे मानसिक रूप से विकसित करना पडता है। इसलिए उसके लिए आवश्यक है कि वह अपनी शक्ति (Vigour) विभिन्न साधनो से प्राप्त करे।

ये अध्यापक अधिकतर कार्य प्रयोगशालाओ या गोष्ठियो मे अपने विद्यार्थियो को शोध कार्य मे सहायता पहुँचाया करते थे। लेकिन यहाँ उनका ढग इससे बिल्कुल भिन्न है, न केवल विषय की दृष्टि से बल्कि विभिन्न व्यक्तियो के लिहाज से भी और वह इतना भिन्न है कि उनकी चर्चा एक साधारण योजना के अधीन करना शायद ही सम्भव है। लेकिन अपने लेक्चरो के द्वारा वे कही अधिक प्रभाव डालते है। इसी लिहाज से हम उनके कुछ विशेष ढगो का उल्लेख करेंगे और उनके भेदो की चर्चा करेंगे।

इस तरह के लेक्चर मुख्यत दो श्रेणियो मे आते हैं। एक शुष्क और नीरस था। दूसरा गर्म और समृद्ध। एक किसी धातु पर खुदाई जैसा (Etching) था और दूसरा पेन्टिग जैसा। किसी कुशल अध्यापक द्वारा किये जाने पर ये दोनो ढग कारगर और स्मरणीय बने।

इन दोनो मे से पहली प्रणाली इतिहासज्ञ फुस्टल दे कोलान्जेस (Fustel de Coulanges), चिकित्सक रदरफोर्ड (Rutherford), और दार्शनिक डेवी (Dewey) का था। फुस्टल अपने साथ कुछ पुस्तकें ले आते थे, जिनको इस तरह से नियमित किया जाता था कि जिससे वे दृष्टान्तस्वरूप उद्धरण प्रस्तुत कर सके और अपने लेक्चर की सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर सकें। इसके बाद वे तेज आवाज में लगातार डेढ घण्टे तक बोलते जाते जिस बीच वे बिल्कुल नही रुकते, विश्राम नही लेते और कभी सौन्दर्य का आभास नही करते थे। यद्यपि यह एक इतिहास सम्बन्धी विचार-विनिमय था, उनके एक विद्यार्थी का कहना था कि उनकी क्लास हिसाब की क्लास जैसी लगती थी (यहाँ जरा वैज्ञानिक आदर्श की ओर ध्यान दे)। स्वय फस्टेल को यह लिखते गर्व का अनुभव हुआ कि "पच्चीस साल तक मेरी जबान से एक भी 'बढिया' मुहावरा नही निकला।" 'बढिया' से उनका तात्पर्य 'दिखावटी' और 'बनावटी' से था। फिर भी उनके लेक्चर बडे साफ और स्पष्ट होते थे। इसी तरह रदरफोर्ड (Rutherford) महाशय भी जैसे लिखने मे वैसे ही बोलने मे भी "सहज और साफ अँग्रेजी का प्रयोग करते थे, जिसमे स्पष्ट भाव के साथ-साथ जोर भी होता था।" वे वैसे कुछ वैज्ञानिको की आदत पर आपत्ति करते थे जो किसी शोधकार्य पर महीनो तो निकाल देते लेकिन उन प्राप्त परिणामो को सहज और समझ मे आने योग्य भाषा मे लिख डालने के लिए कुछ घण्टे नही दे सकते थे। एक बार तो उन्होने अपने मित्र ट्वीड्समूर (Tweedsmuir) से साफ कह दिया कि

"वे किसी खोज को उस समय तक पूरा नही समझते थे जब तक उस खोज को सहज और सही अँग्रेजी मे लिख न दिया गया हो।"

इसी तरह डेवी (Dewey) के शिष्य, दार्शनिक इर्विन एडमन अपने लेक्चर देने के ढग का वर्णन इन शब्दो मे करते हैं —

"He sat at his desk, fumbling with a few crumbled yellow sheets and looking abstractedly out of the window He spoke very slowly in a vermont drawl He looked both very kindly and very abstracted He hardly seemed aware of the presence of a class He took little pains to underline a phrase, or emphasise a point, or, so at first it seemed to me, to make any He seemed to be saying whatever came into his head next The end of the hour finally came and he simply stopped, it seemed to me that he might have stopped anywhere But I soon found that it was my mind that had wandered, not John Dewey's I began very soon to do what I had seldom done in college courses—to take notes It was then a remarkable discovery to make to find that what had seemed so casual, so rambling, so unexciting, was of an extraordinary coherence, texture, and brilliance I had been listening not to the semi-theatrical repetition of a discourse many times made—a fairly accurate description of many academic lectures—I had been listening to a man actually *thinking* in the presence of a class"

अर्थात्

"वे अपनी मेज पर बैठ गये और कुछ अधफटे पीले कागज के टुकडो मे उलझे हुए भावशून्य हृदय से खिडकी से बाहर दृष्टि दौडाते। वे धीमी आवाज मे धीरे-धीरे बुदबुदाते थे। उनके चेहरे से दया और मन की गौण भावनाओ का आभास मिलता था। उसे शायद ही किसी लगे हुए क्लास की उपस्थिति का बोध होता था। किसी चीज को पढाते हुए वे किसी वाक्याश पर लकीर लगाने या किसी बात को जोर देकर कहने का प्रयत्न नही करते थे। या कम से कम शुरू मे तो ऐसा मालूम पडता था कि । मुझे ऐसा लगता था कि उनके मस्तिष्क मे जिस तरह अगली बात आती वे उसी तरह उसे बोलकर व्यक्त कर देते थे । अन्त मे जब समय समाप्त हो जाता तब वे अनायास रुक जाते थे। मुझे ऐसा लगता था कि उन्हे रुकने के लिए किसी नियत स्थान पर पहुँचने की आवश्यकता नही पडती थी। लेकिन शीघ्र ही मैंने अनुभव किया कि वास्तव मे न कि जौन डीवे के मस्तिष्क ने चक्कर खाया है, मैं शीघ्र ही नोट्स लेने लगा। मैं शायद ही कभी कालेज में नोट्स लिया करता था। यह अपूर्व बात जानकर यह देख कर कि उनकी साधारण लडखडाती, रुचिहीन बातो मे भी एक अपूर्व सामजस्य, बनावट और प्रतिभा का सयोग

होता था। मैं कोई ऐसा भापण वार-वार नही सुन रहा था जिसमे वातें अर्ध-नाटकीय ढँग से दुहरायी जाती थी जैसा कि बहुत से विद्वत्तापूर्ण भापाग्रो के वारे मे कहा जा सकता है। वास्तव मे मैं एक ऐसे व्यक्ति के विचार सुन रहा होता था जो यथार्थ मे ग्रपनी क्लास के सामने विचार-क्रिया मे तल्लीन होता है।"

शायद प्रोफेसर एडमन ग्रपने बूढे ग्रध्यापक के प्रति वहुत उदार हैं। निश्चय ही वे इसमे विश्वास नही कर सकते कि शुरू से ग्रन्त तक जव कभी श्री डेवी ने लेक्चरो का कोर्स कही सार्वजनिक रूप से दिया, तो उनसे पूछे गये सभी प्रश्नो का उन्होने उत्तर दे ही दिया। यदि ऐसी वात है तो उन्होने मिस्टर डेवी (Dewey) की ऐंसी वनावटी शक्तियो की दाद दी है जो विल्कुल नाटकीय तो नही लेकिन प्रत्यक्षत प्रभावित करने वाली थी। उनके कहने का मतलव यह है कि जव मिस्टर डेवी वोलते थे तो उनके श्रोताग्रो को यह विश्वास हो जाता था कि डेवी महाशय ने इन सभी समस्याग्रो पर उसी सन्तोप ग्रौर ईमानदारी के साथ विचार किया है। लेक्चर द्वारा वे क्रमानुसार प्रक्रिया ग्रौर परिणाम की सूचना विद्यार्थियो को दिया करते थे। मालूम होता था कि इन प्रक्रियाग्रो ग्रौर परिणामो को उन्होने 'पुराने पीले कागजो' पर नोट कर लिया था ग्रौर ग्रब पढाते समय उन्ही चीजो को दुहरा रहे थे।

लेकिन मिस्टर डेवी के पढाने के एक दूसरे विवरण से यह ज्ञात होता है कि लेक्चर के समय वे समस्या पर नही सोचते थे वल्कि केवल ऐसे शव्द टटोला करते थे जिनसे पढे हुए विपय के परिणामो को वह व्यक्त कर सकें।

"पढाते समय ग्रभिव्यक्ति मे जो कठिनाई उन्हे होती थी उसका कारण उनकी ग्रत्यधिक ग्रात्म-चेतना थी ग्रौर यही कठिनाई उनके तकनीकी लेखो ग्रौर रचनाग्रो की क्लिष्ट शैली मे पायी जाती है। जव उन्हे कोई सही शव्द नही सूझता तो जो कुछ भी उनके मस्तिष्क मे ग्राता, उसका प्रयोग नही करते थे बल्कि वोलते-वोलते चुप हो जाते थे जव तक उन्हे कोई उपयुक्त शव्द नही सूझ जाता था। ग्रौर वे किसी गलतफहमी से बचने के लिए इतने चिन्तित हो जाते थे कि कभी-कभी उनको समझना कठिन हो जाता था।"

उनके श्रोता, जो चीज उनमे सबसे ग्रधिक पसन्द करते थे, वह उनकी बौद्धिक सचाई थी। विद्यार्थी कभी-कभी ऐसे ग्रध्यापको में विश्वास नही करते जो कभी घवराते न हो। वे ऐसे ग्रध्यापको को पसन्द करते हैं जो किसी समस्या के समाधान में उलझे हुए हो ग्रौर उपयुक्त शव्द ढूँढ रहे हो। राल्फ वाल्डो एमरसन यह बात ग्रच्छी तरह जानते थे। यहाँ तक कि जब उनके पास सारा ग्राख्यान पहले से ही लिखा हुग्रा होता था फिर भी वे ऐसा प्रकट नही होने देते थे कि उनका भाषण पहले ही से तैयार किया हुग्रा है। वे कठिन सन्दर्भों मे इस तरह उलझ कर रुक जाते मानो ग्रपनी भावशैली को पकडने के लिए यह व्यक्त करने के लिए श्रोताग्रो से सहायता माँग रहे हो। ग्रपने बहुत ही सुन्दर विचारो को बोलने से पूर्व (यद्यपि ये बहुत पहले ही तैयार कर लिए गये होते थे) वे हिचकिचाते ग्रौर प्रत्यक्षत प्रयत्न करते ग्रौर तब ऐसा मालूम होता कि वे किसी बात को पकडते हुए

कोई बडे सुन्दर शब्द कह जाते और उसकी इस तरह पुष्टि करते मानो कठिनाई के बावजूद उन्होंने एक सुन्दर हीरा काट कर निकाल दिया।

किन्तु इस कार्य मे ऐसे लेक्चर बहुत ही प्रभावोत्पादक सिद्ध हुए हैं जो किसी सुनार की तरह अपने विद्यार्थियो को स्पष्ट, ठोस और शत प्रतिशत ठीक विचारो से अवगत कराते हैं। शुद्ध तर्क का युवको के मस्तिष्क पर बडा व्यापक प्रभाव होता है। जीव शास्त्री, टी० एच० हक्सले (T H Huxley) का विचार था कि उन्होने जो सबसे अच्छे लेक्चर अपने जीवन मे सुने उनमे वार्टन जोन्स (Wharton Jones) के लेक्चर उन्हे सबसे अच्छे लगे। यद्यपि बर्क (Burke) और हेअर (Hare) के सम्पर्क मे आकर इनका भविष्य अन्धकारमय हो गया था लेकिन वे सूखे, समतल आवाज और क्लास की तरफ बगैर देखे हुए बोलते समय शरीर शास्त्र की कठिनतम समस्याओ पर सुन्दर से सुन्दर व्याख्यान दे देते थे। ऐसे लेक्चरो को ऐसी ज्योति की सज्ञा दी जा सकती है जिसमे चमक हो लेकिन गर्मी नही हो।

दूसरी श्रेणी के लेक्चरो मे ताजगी (Warmer) होती हैं। उनमे प्रवाह होता है। प्रवाह पैदा करने के लिए तर्क की आवश्यकता होती है। भाषण और लेक्चर दोनो अनिवार्य रूप से तर्क पर आधारित होने चाहिएँ। लेकिन एक प्रवाहपूर्ण लेक्चरर इसमे एक और गुण जोड देता है। वह है एक विविध और आकर्षक ढग से भाषण देना, जिसमें सौन्दर्य हो, स्मरणीय मुहावरे हो, ग्राही दृष्टान्त हो और जिसमे श्रोताओ के साथ वक्ता का व्यक्तिगत सम्पर्क हो। वे सत्य का केवल अभिव्यजन ही नही करते, जिससे विद्यार्थी उसे ग्रहण कर लें बल्कि इस श्रेणी के लेक्चरर सत्य को ऐसे ढँग से व्यक्त करते हैं जिससे विद्यार्थी को प्रोत्साहन मिले और वे उसके वशीभूत हो जायें। उन्नीसवी सदी के सर्वश्रेष्ठ लेक्चरर, टी० एच० हक्सले भी इसी तरह लेक्चर दिया करते थे।

उनके लेक्चर तर्कपूर्ण भाषण के अपूर्व दृष्टान्त थे। उदाहरणार्थ जब कभी वे कोई लेक्चर देते उस समय अपने पहले लेक्चर मे चर्चा की गयी बातो का एक सक्षिप्त मे विवरण देते थे और वह भी बडे आकर्षक ढँग से। "वे पचास मिनटो मे प्रकृति के दो-तीन ऐसे नियमो का विश्लेषण कर देते जिसे समझना बडा कठिन मालूम होता था। फिर वे घडी की ओर देखते और शेष दस मिनटो में जो कुछ कहते उन सभी बातो को एकत्र कर उनके निष्कर्ष बताते और जब वे अपना लेक्चर समाप्त करते तो हमारे दिल मे यह बात बैठ गई होती कि "प्रकृति का भी कोई निर्दिष्ट नियम होता है।" उनके सब विद्यार्थी यह कहते कि शब्द-चित्र बनाने में वे निपुण थे और अपनी बातचीत मे वे "हमारे कान और आँखो के द्वारा नियमित रूप से सजीव चित्र तैयार करते जाते थे।"

हूबहू हक्सले की टक्कर के लेक्चरर, अमेरिका मे लुई अगासिज थे जो स्विस थे और कद मे छोटे थे। उन्होने पहले हार्वर्ड और बाद में सारे अमेरिका मे जन्तु-शास्त्र और भूगर्भ-शास्त्र का सूत्रपात किया। अगासिज (Agassiz) को पढाने से शौक था और वे लोगो से प्रेम करते थे। वे 'मछली मारने वाले नाविक' या 'हासलर' (Hassler)

कप्तान, मासेच्युसेट्स (Massachusetts) मे विधान सभा के सदस्य या हार्वर्ड यूनि-वर्सिटी के प्रेसीडेण्ट, सडक पर अखवार वेचने वाले लडके या कालेज जाने वाले युवक सभी को पढा सकते थे और सभी पर उनके वाक्यो का जादू-सा प्रभाव होता था।"

लेकिन पढाने के उनके दो ढँग थे जो एक दूसरे से वहुत भिन्न थे। उनमे से प्रथम लेक्चरो द्वारा पढाना था। इसमे वे हक्सले की तरह ही प्रभावपूर्ण थे और उन्ही की तरह विविध भी। (हक्सले की तरह वे भी हमेशा नर्वस (Nervous) रहते थे। उन्होने एक वार लागफेलो (Longfellow) से कहा था कि किसी कोर्स को शुरु करने से वे पूर्व हमेशा 'भयकर डर' (Terrible fright) का अनुभव करते थे।) इधर-उधर की वाते करने या अपने विषयवस्तु का घुमा-फिरा कर जिक्र करने की अपेक्षा वे उदाहरण और नमूने प्रस्तुत कर समझाते थे। लेक्चर देते समय, शार्क के अडो भरा तालाव, पुराने जीव-जन्तुओ की हड्डियो आदि (Fossil) को दिखा कर या अपने हरेक विद्यार्थी के हाथ मे टिड्डियो (Grasshopper) को थमा कर उनको परीक्षण करने की सलाह देते थे। जहाँ कही भी ऐसे नमूने प्रस्तुत करना सभव नही होता वहाँ व्लैक-वोर्ड (Black-board) पर वे उन नमूनो का वडा, विविध और अत्यन्त सुन्दर चित्र वना कर उन्हे समझाते थे। उदाहरण के लिए जव उनको यह समझना होता कि किसी कीडे का अडा, पूर्णरूप से वच्चा वनने तक कौन-कौन सी विभिन्न अवस्थाओ से होकर गुजरता है तो वे उस कीडे की परिवर्तनशील सभी अवस्थाओ का चित्र ऐसे ढग से वनाते जाते जव तक वह पखो वाला जन्तु

अगासिज (Agassiz) के पढाने के दूसरे ढग से लोग अधिक अच्छी तरह परिचित हैं। इसका प्रयोग वे साधारण जनता को लेक्चर देने के लिए नही करते थे, वल्कि (Professional) वैज्ञानिको को प्रशिक्षित करने के लिए करते थे। उनका मत था कि वैज्ञानिक वैसा प्रथम व्यक्ति होता है जो वैसी वातो को देख सके जिसे दूसरे नही देख पाते हैं। इसलिए वे प्रयोगशाला मे विद्यार्थियो को किसी चीज का अध्ययन करना सिखाते थे। उनके एक विद्यार्थी ने इस प्रशिक्षण का सुन्दर विवरण दिया है।

"मैंने अपने लिये चीड की लकडी का बना हुआ एक छोटा मेज रख छोडा था जिसके ऊपर एक जग लगा हुआ टीन का बर्तन रखा था जव मैं उस बर्तन के सम्मुख बैठा तो उसी बीच अगासीज ने मेरे सम्मुख एक छोटी मछली लाकर रख दी और तनिक रूखाई से मुझे सकेत किया कि मैं उसका अध्ययन करूँ। लेकिन किसी भी व्यक्ति से उसके सम्बध में बगैर उनसे पूछे न कोई बात करूँ और न कोई पुस्तक ही पढ़ूँ। जब मैंने उनसे पूछा कि उसका क्या करूँ तो उत्तर मिला, "बगैर इस नमूने को हानि पहुँचाये जहाँ तक सम्भव हो सके उसका अध्ययन करो। जब मैं समझूँगा कि तुमने यह कर लिया तव मैं तुमसे प्रश्न पूछूँगा।" घटे भर के अर्से मे मैं समझने लगा कि मैंने उस मछली को जान लिया है। वह घृणास्पद जैसी चीज थी और उसमें से पुराने शराब की वदवू निकल रही थी । उसके बहुत से डैने ढीले पड गये थे और इसी लिए गिर पडे।

मेरे लिये उसके विषय मे जानने और बताने लायक अधिक बातें नही जान पडी। अब मैं चाहता था कि इन्ही दो एक बातो को बताकर अपने दूसरे काम मे हाथ लगाऊँ। फिर भी अगासिज़ ने जो यद्यपि हमारे बिल्कुल सम्पर्क मे ही थे, न उस दिन हमसे उस विषय पर आगे कोई बातचीत की, न ही उन्होने अगले दिन या एक सप्ताह तक ऐसा किया।

शुरू-शुरू मे यह अवहेलना मुझे अखरने लगी। लेकिन तब मुझे यह ज्ञात हुआ कि यह तो केवल उनकी एक चाल थी क्योकि वे ·· मुझे सावधानी से परख रहे थे। अत मैंने तन-मन से उस पर विचार करना आरम्भ किया और लगभग सौ घटे के दौरान में मैंने काम को शुरू करने से पहले सभव नजर आने वाली बातो से सौगुनी अधिक बातो का पता लगाया। मैंने डैनो की लगातार बनावट, उनके आकार, शक्ल और दाँतो की बनावट आदि बातो को पता लगाने मे अभिरुचि दिखलाई। अत मे मैं उस विषय पर अपने आपको पारगत समझने लगा और सभवत यह भावना मेरे विवरण मे भी प्रगट हुई। जहाँ तक मेरे अध्यापक का प्रश्न है, मुझे उनसे प्रात कालीन अभिवादन के अतिरिक्त और कुछ नही मिला। अत मे सातवें दिन जब उन्होने मुझसे पूछा तो वे मेरा वृत्तान्त, मेरी मेज के किनारे बैठे, सिगार का धुआँ छोडते हुए सुनते रहे। लगभग घटे भर तक मेरी बातें सुनते रहने के बाद वे कूदकर यह कहते हुए चले गये कि यह ठीक नही है।

यह स्पष्ट था कि वह इस बात का पता लगाने के लिये मुझसे एक चाल चल रहे थे कि मैं बगैर अध्यापक का सहारा लिए कठिन और अविश्रान्त परिश्रम के योग्य हूँ या नही और इस चाल से मुझे परिश्रम करने की प्रेरणा मिली। मैंने फिर से इस काम मे हाथ लगाया। अपने पहले नोटो का बहिष्कार किया और अगले सप्ताह दस घटा प्रतिदिन की चाल से परिश्रम करने पर ऐसे निष्कर्षो पर पहुँचा जिससे स्वय मुझे अचरज था और तब उन्हे सतोष हुआ।

उनके विद्यार्थी ने जब इस कठिन काम को पूरा किया तो अगासिज़ ने उसकी प्रशसा नही की। कम से कम उन्होने प्रशसा मे शब्द प्रवाह तो नही चलाया। इसकी बजाय उन्होने उसको हड्डियो से भरा एक टीन दिया और कहा कि शायद वह उनका उपयोग कर सके। उस युवक ने उन हड्डियो का परीक्षण किया और देखा कि उनके गाल की हड्डियो (Jaws) से ऐसा मालूम होता था कि वे मछलियाँ अलग-अलग जातियो की हैं। इसलिए उन हड्डियो के सम्पूर्ण ढाँचे को तैयार करने के लिए उसने उनको जोडना शुरू कर दिया। इस कार्य मे उसे दो महीने या इससे कुछ अधिक समय लगा। इस बार फिर अगासिज़ ने उसकी प्रशसा नही की बल्कि अध्ययन (Observation) और तुलना करने का एक उससे भी कठिन काम दिया। यही उसका पुरस्कार था जिसकी वह आशा कर सकता था क्योकि इसका मतलब यह था कि "तुम अधिक वैज्ञानिक होते जा रहे हो।"

यह प्रशिक्षण कितना प्रशसनीय है। कोई भी व्यक्ति, जिसे ऐसी शिक्षा मिली होगी यह कभी नही भूलेगा कि अध्ययन (Observe) करना वैज्ञानिक का कर्त्तव्य है और कोई भी जिसे इस तरह से कठिन अनुशासनबद्ध बनाया गया हो वह किसी बात को साव-

धानी से अध्ययन करने में नही चूकेगा। अगासिज (Agassiz) के विद्यार्थियों में से एक दूसरे विद्यार्थी को ग्रण्ट नाम की एक छोटी-सी मछली का अध्ययन करने को कहा गया। इस मछली का उस विद्यार्थी ने पहले कुछ घण्टो तक अध्ययन किया और उसके बाद उसका चित्र बनाने लगा। अगासिज़ ने इस चीज का अभिनन्दन किया। बोला, "यह बात तुम बडी अच्छी कर रहे हो।" पैंसिल एक ऐसी चीज है जो बहुत अच्छा आँख का काम देती है। फिर भी जब उसने इस बालक द्वारा चित्र मे कुछ कमी पायी तो उसके लिये विद्यार्थी को दुत्कारा। इसके बाद ग्रण्ट मछली के बारे मे सभी ज्ञातव्य बातो का अध्ययन करने के लिए अगासिज को चार दिन तक उसे निहारना पडा।

कठिनाई और एकाग्रता की यह जो चुनौती है उसे बिना घटाए अच्छे अध्यापक ही प्रयोग मे ला सकते हैं। इसका उपयोग किसी भी क्षेत्र मे किया जा सकता है। हम १८वी शताब्दी के सगीत-शिक्षको को इसका प्रयोग करते हुए देखते हैं। ये लोग अपने विद्यार्थी को पाठ के किसी एक ही पन्ने पर कई साल तक अडाए रखते थे। इसे चुनाव की ऐसी प्रक्रिया के रूप मे प्रयोग मे लाया जाता है जिसके द्वारा अनुपयुक्त विद्यार्थी अलग किये जा सके। प्रशिक्षण के एक बहुत ही बर्बर प्रयोग से एक रूमी बालक को गुजरना पडा था, जिसने जर्मन ढँग से तैयार किया हुआ एक कारीगर का कोर्स (Machinist) ले रक्खा था। बीसवी सदी के शुरू की यह बात है कि पहले दिन उसे एक लोहे का टुकडा और दो-एक रेती देकर उस लोहे के टुकडे को चौकोर बनाने को कहा गया। दिन भर मे चार घण्टा और सप्ताह मे पाँच दिन लगातार काम करके एक महीने मे उसे उसने पूरा किया। जब वह यह काम कर चुका तो उसे एक हथौडा और एक छेनी देकर समानान्तर पक्तियो मे उस लोहे के टुकडे मे छेद करने को कहा गया। इस काम मे उसे एक सप्ताह लगा। इसके समाप्त होते ही उसका अँगूठा हथौडियो की चोट से जख्मी हो गया था। इसके बाद भी उसे लोहे को चौकोर बनाने और उसमे छेद करने का काम तीन महीने तक दिया गया। वह लिखता है, "इस अवधि के बाद मैं रेती और छेनी से बिल्कुल सुपरिचित हो गया।" इसके बावजूद भी वह आज एक कुशल डिजाइन और मशीन बनाने वाला आदमी बन गया है। उसके घाव अब भर गये हैं।

इसी तरह की कठिन चुनौती, जिसमे भले ही उतना दबाव नही था, प्रसिद्ध अमेरिकन शिक्षाविज्ञ मिस्टर ऐब्राहम फ्लैक्सनर को मिली थी। उनके परामर्शदाता, हौप्किन्स (Hopkins) के प्रोफेसर मौरिस ने उन्हे सलाह दी कि यदि वह ग्रीक भाषा को अच्छी तरह सीखना चाहता हो तो उसे ग्रीक पुस्तको की एक आलमारी रखनी चाहिये और पाँच वर्ष तक केवल उन्ही पुस्तको को पढना चाहिये। वे कहते, "दुनिया की दैनिक घटनाओ से अपने आपको सूचित रखने के लिये दैनिक समाचार-पत्र पढो। लेकिन पुस्तकें केवल ग्रीक भाषा की पढो, किसी अन्य भाषा की नही।" उस महत्त्वाकाक्षी,योग्य विद्यार्थी ने उस कठोर परामर्श का अनुसरण किया और अगासिज़ के दूसरे विद्यार्थियो की तरह उस गूढ विषय पर तब तक आँखे गढाये रक्खी जब तक वह सचमुच इनसे अपने आपको

अभ्यस्त न समझने लगा। जिस तरह अगासिज के विद्यार्थी किसी नये नमूने को लेकर हमारी अज्ञान निगाहो से छूट जाने वाली हजारो चीजो को परखा करते थे, उसी तरह वह भी ग्रीक भाषा की कोई अमर और बहुमूल्य कृति को आसानी से और आनन्दचित्त होकर पढता था। ऐसे प्रयत्न दुखदायी होते हैं लेकिन बिना परिश्रम के कोई पुरस्कार नही मिलता।

ओस्लर नामक चिकित्सक अगासिज के टक्कर का अध्यापक था। वह भी सब चीजो के अतिरिक्त विवेत्ता पर ही अधिक जोर देता था। हौप्किन्स मे पढने के लिये जाने से पूर्व अमेरिका के चिकित्सा-शास्त्र के विद्यार्थी, पाठ्य पुस्तके पढते और लेक्चर सुना करते थे, लेकिन उन लोगो को यह नही सिखाया गया था कि वे अपने सैद्धान्तिक ज्ञान को व्यवहारिक जीवन मे कैसे मिलाएँ। ओस्लर ने चिकित्सा-शास्त्र की पढाई मे बीमारो को पाठ्य वस्तु की तरह प्रयोग करने का नियम चलाया। किसी रोग के सैद्धान्तिक ज्ञान पर विचार करने के बदले वह उस रोग से पीडित व्यक्ति की बगल मे खडा होकर समझाना शुरू करता। यदि वह अतत दयालु और प्रसन्नचित्त व्यक्ति न होते तो शायद यह काम बहुत ही घृणास्पद और क्रूर होता। लेकिन उन्होने बीमारो और विद्यार्थियो दोनो को अपनी शक्ति से प्रेरणा प्रदान की थी। शब्द विन्यास मे भी वे उतने ही कुशल थे। तरह-तरह के चेहरो का वे अलग-अलग पौराणिक नामो मे उल्लेख करते थे। ये उपमाएँ वे इतनी गभीरता और शीघ्रता से देते कि वे रोगी उसका मतलब नही समझ पाते और बुरा नही मानते थे। वे तथ्यो के बारे मे अनजानी बातो को बताकर उन्हे स्मरणीय बना देते थे। जैसे जब कभी विद्यार्थी ग्रेव्हस डिजीज़ (Graves' Disease) को एक तरह के गठिया (Goitre) से मिलाते तो ओस्लर उन्हे ग्रेव्हस द्वारा लिखित पुस्तक पढने को कहते और उसके बारे में एक लेख लिखने का आदेश देते थे।

उन्नीसवी शताब्दी और बीसवी शताब्दी के आरम्भ के सभी दूसरे महान् अध्यापको के कार्य का ब्यौरा देना यहाँ हमारे लिये सम्भव नही है। फिर भी उन अध्यापको के बारे में बताना उचित होगा जो आज भी इस तरह कार्यशील हैं, मानो उनका कार्यकाल समाप्त हो गया हो। लेकिन हम कुछ महानतम अध्यापको का चरित्र सामने रख सकते हैं जिन्होने कठिनाइयो के होते हुए भी अच्छी तरह से पढाया। ये सब लेखक थे और उनमे से अधिकतर प्रतिभा सम्पन्न और मौलिक विचारक थे। फिर भी अध्यापन कार्य उनके जीवन का आवश्यक अग था। उनमे से किसी एक का मूल्याकन करना केवल उनकी पुस्तको के आधार पर और बिना उन्हे आख्यान देते हुए सुने, गलत होगा। पढाने और उनके तरीके मोटे तौर पर एक दूसरे से इतने ही भिन्न होते थे जितने उनके व्यक्तिगत चरित्र।

पहले वर्ग के अध्यापक मच पर आते ही श्रोताओ की ओर नजर दौडाते और शिष्ट भाषा मे और हावभाव के साथ भाषण देते हैं। इसी वर्ग के अध्यापक, हार्वर्ड मे पढाने वाले किट्रेज (Kittredge) नामक अग्रेजी साहित्य पढाने वाले अध्यापक थे। इन्होने लगभग

पचास वर्ष तक, सन् १८८८ से सन् १९३६ तक पढाया था। उनके पढाने के ढग की विशेषता यह थी कि उसमे पाठ की व्याख्या होती थी। वे शेक्सपीयर के किसी दुखान्त नाटक का कोई दृश्य ले लेते और उसके हर शब्द और हरेक कथन का अर्थ बताते, और उसकी व्याख्या करते। वे नाटक के कथानक (Plot) के परिवर्तनो के नाटकीय महत्त्व पर विचार करते, उसके नये मनोवैज्ञानिक तथ्यो को सामने लाते और सारी घटना को अतिम और स्मरणीय ढग से श्रोताओ के सामने इस तरह पेश करते कि कवि का सारा उद्देश्य सामने आ जाता था। लेकिन इस तरह का विस्तारपूर्ण विश्लेषण तब तक सभव नही हो पाता जब तक विद्यार्थियो ने स्वय सारे दृश्य को पढ नही रखा हो और उस पर अच्छी तरह विचार न कर रखा हो। इसलिए किट्रेज के विद्यार्थियो को, लेक्चर सुनने से पहले पढने का भारी काम दिया जाता था और उनसे आशा की जाती थी कि वे अपने विषय के बारे मे उनके प्रश्नो का उत्तर दे सकेगे। घण्टे मे पाँच मिनट विद्यार्थियो के प्रश्नो का उत्तर देने के लिए रक्खे जाते थे जिसमे वे पहले लेक्चर मे समझ मे न आने वाली बाते पूछ सकें। यह एक कठिन विषय को पढाने मे बढती हुई कठिनाई की वजह से विद्यार्थियो मे विश्वास पैदा करने का बहुत अच्छा तरीका है। इसके बाद किट्रेज प्रश्न पूछना शुरू करते। सभी उपस्थित विद्यार्थियो मे किसी का भी नाम पुकारा जा सकता था और जब बताने पर उनका रोष छिपता नही था। उनका मिजाज घातक था और उसमे औसत विद्यार्थी के प्रति तिरस्कार की भावना टपकती थी। उनकी दाढी सफेद और आवाज़ ऊँची थी और वे सिगरेट पिया करते थे। उन्हे विद्यार्थियो का आदर और प्रेम प्राप्त था। एक बार वे पढाते हुए बहुत तेजी से आगे बढ गये और गिर पडे तो विद्यार्थियो ने हँस दिया। इस पर वे उन पर आँख जमाते हुए बोले, "यही प्रथम अवसर है जब मैं पहली बार अपने श्रोताओ के स्तर तक गिरा हूँ।" यदि किसी ने किट्रेज का आख्यान कभी नही सुना तो उनके बारे मे पढने पर वैमनस्य हुए बिना नही रह सकता। तथापि यह वैमनस्य पैदा करना उनका उद्देश्य होता था। वे अपने विद्यार्थियो को अच्छे साहित्य को पढते समय अनुभव की जाने वाली कठिनाइयो से चुनौती देना चाहते थे और चाहते थे कि वे महानता प्राप्त करने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए विनम्र बनें।

जर्मनी मे उलरिचवो विलामोविट्स-मोलेन्डोर्फ (Ulrich von Wilamowitz-Moellendorff) नामक व्यक्ति भी उसी तरह का अध्यापक था जो उसी भावना से यूनानी साहित्य पढाने का काम करता था। जैसा कि उसके आधे जर्मन और आधे स्लाविक (Slavic) नाम से ही प्रत्यक्ष है, वह एक ऐसे जकर परिवार का था कि जिसके बागान प्रसिया और पोलैण्ड की सीमा पर स्थित थे। अपनी कृति (Recollections) के प्रारम्भ मे ही उसने अपने बचपन के दोहरे जीवन (Double world) का जिक्र किया है जिसमें वह पला था अर्थात् उसका प्रारम्भिक जीवन ऐसी जगह बीता था जहाँ कुछ घमण्डी जमीदार, गदे अशिक्षित और गुलाम जैसे किसानो पर प्रभुता दिखाते थे। अपनी

जिन्दगी के अत तक उसमे विश्वास और अधिकार की भावना रही और यह सचमुच मे प्रामाणिक वात है कि उनके जीवन का प्रारम्भ निशजे (Neitzsche) के साथ हिसक झगडे से शुरू हुआ, जो पूर्वजो के लिहाज से पोलिश (Polish) था। उसकी लिखावट की तरह उसके भाषण मे भी निर्देश की भावना झलकती थी। लेकिन यह प्रभावोत्पादक अभिव्यजन का ही एक भाग था। यहाँ तक कि वर्लिन की सार्वजनिक सभाओ मे दिये जाने वाले उनके भाषण सावधानी से तैयार किये हुए होते थे और हॉल श्रोताओ से भरा हुआ होता था।

यदि आप चाहे तो अव दूसरे प्रकार के उन सक्रिय अध्यापको पर गौर कर सकते हैं जिनमे राजी करने वाले (Persuader) और जादू करने वाले अध्यापक आते हैं। इस वर्ग के लोगो मे वे सभी गुण मौजूद होते हैं जिनके द्वारा कोई अभिनेता प्रशसनीय और कोई अध्यापक प्रिय वनता है। वोलते समय मधुर भाषा, गतिशील और अनोखा चेहरा, जिसमे वक्ता के मन में भावो का नृत्य झलकता हो, सुन्दर हाव-भाव, जिसमे वनावट न हो बल्कि किसी वात को व्यक्त करने की सच्ची भावना होती है और साथ ही वक्ता का अपने विषय से अनुराग, लोगो से प्रेम, साथ ही अपने आपसे प्रेम, झलकता है। वक्ता का उद्देश्य श्रोताओ को चुनौती देना नही है, उनका विरोध करना या उन्हे नीचा दिखाना नही, वल्कि लोगो को आकर्षित करना होता है।

कैम्ब्रिज के ए० डब्लू० वेराल (A W Verrall) ऐसे ही व्यक्ति थे। वे ग्रीक, लैटिन और अग्रेजी कविता इतने मधुर कठ से सुनाते थे कि हरेक पक्ति से नये-नये भावार्थ उमडने लगते थे। आँखे मूंदे वे एक घण्टे तक लेक्चर देते। वे अपने विद्यार्थियो को अपने साथ एक ऐसे परिणाम पर पहुँचाते जो यदि पहले ऐसे ही उनको बता दिया गया होता तो वे उसे वेहूदी बात समझते। लेकिन अव इतनी लम्बी और कौतूहलपूर्ण यात्रा करने के वाद विद्यार्थी उसे ऐसी जिज्ञासा से ग्रहण करते हैं जो इस चमत्कारी अध्यापकी के कारण उत्पन्न हुआ। रेनेसा युग के बर्खार्ड (Burckhardt) नामक कला और सस्कृति के एक स्विस इतिहासज्ञ भी थे। उनके लेक्चर तैयार किये गये भाषण नही होते थे, बल्कि उनकी वाणी मे चित्रकला, काव्य, इटली, देश और आधुनिक सभ्यता के उषाकाल मे लोगो के आशावाद के प्रति उमडता हुआ अनुराग प्रवाहित होने लगता था। वे इतने प्रिय थे कि बार-बार लोग 'वाह-वाह' और 'फिर कहिए, फिर कहिए' कहने लगते और उसी समय उन्हे फिर अपनी बात को दुहराना पडता था। अमेरिका मे येल के विलियम फेल्पस नामक व्यक्ति एक ऐसे ही पुरुष थे। उनके एक विद्यार्थी ने जिसने नोवेल पुरस्कार जीता था, उन्हे अमेरिका मे साहित्य का सर्वोत्तम अध्यापक बनाया और साथ ही उन्हे एक 'बडा अभिनेता' भी कहा था। उनका चरित्र इतना मोहक था और उनके इतने अधिक लेख छपते थे कि लोग कभी-कभी उन्हे अधिक छिछला समझने लगते थे लेकिन उनका अध्यापन वहुत परिश्रम और सावधानी से की गई तैयारी पर आधारित होता था। उन्नीसवी सदी के काव्य पर पहले महत्त्वपूर्ण लेक्चर कोर्स में उन्होने विद्यार्थियो

मे ऐसे पर्चे बॉटे (क) जिनमे हरेक लेक्चर का पूरा विवरण दिया गया था, (ख) साथ ही साथ पढने योग्य पुस्तको के बारे मे बताया गया था और (ग) जिनमे पूछ कर या लिखकर प्रश्न माँगे गये थे। एक तत्पर और सच्चे हृदय से पढाने की भावना रखने वाले व्यक्ति का यही चिन्ह है और केवल उसी व्यक्ति का नही जो चमत्कार दिखाता है। अपने जीवन काल की चरम सीमा पर वे हरेक सप्ताह १५० कापियाँ पढकर उन पर नम्बर लगा लेते थे। वे एक अभिनेता थे लेकिन वे अभिनेता से भी अधिक थे क्योंकि वे टीकाकार (Interpieter) थे।

इन दोनो वर्ग के परस्पर पूरक अध्यापको के भी ऊपर कुछ ऐसे लोग आते हैं जो अपने व्यक्तित्व की विशालता के कारण दोनो वर्गो के अध्यापको के सद्गुणो का सामजस्य पैदा कर सके। जब कि दूसरे महान अध्यापक थे, ये लोग ऐसे महापुरुष थे, जो पढाया भी करते थे। उनका अपना कोई विशेष ढग नही था। वे केवल अपनी महानता का सचार करते थे। हेनरी बर्गसन (Henri Bergson) नामक दार्शनिक नि सन्देह आज समय और विवेक के सम्बन्ध मे उनका आश्चर्यजनक पुनर्मूल्यन करके प्रचलित हुए। लेकिन अपने जीवन काल मे वे फ्रास के बहुत ही विख्यात लेक्चरर थे। कालेज दे फ्रास (Collège de France) के हाल मे दर्शन के पेशेवर विद्यार्थी, साहित्यिको, पेरिस की फैशनेबल स्त्रियो और विदेशी आगतुको से खचाखच भरे हाल मे पढाया करते थे। वे बिना किसी नोट के सहारे धीरे-धीरे और सगीतमय भाषा मे अपने गूढ और निर्भय विचारो का लय के साथ अभिव्यक्ति करते थे। इसमे हरेक वाक्य इसी भावना से ओत-प्रोत होता था और ये वाक्य बढते हुए एक सयोजित रूप मे उपस्थित होते थे। यह ढाँचा बनावटी नही बल्कि एक जीवित वस्तु होता था। इस तरह बर्गसन के विचार और भाषण दोनो मे उनकी व्यक्तिगत प्रतिभा की छाप नजर आती थी।

जो लोग पुरानी तस्वीरो मे चित्रित वुड्रो विल्सन के भरे हुए और मुस्कराते चेहरे से ही जानते हैं वे यह भूल जाते हैं कि वास्तव मे वुड्रो विल्सन एक लम्बे कद के भद्र और प्रभावशाली व्यक्ति थे। जब रोम मे इटली के सम्राट, विक्टर इमानुएल के साथ-साथ वे घोडे पर चढे जा रहे थे तो उस समय सम्राट् की अपेक्षा वे सच्चे सिज़र जैसे लगते थे। जो लोग उन्हे एक असफल और आदर्शवादी राष्ट्रपति समझते हैं वे यह गलती करते हैं कि विल्सन अपनी सदी के सबसे महान् अध्यापको में से थे। करीब-करीब उनके सभी विद्यार्थी उन्हे अपनी जानकारी के आधार पर 'सबसे अच्छा अध्यापक' मानते थे। उनका कार्य जीवन विश्वविद्यालय से शुरू होता है जहाँ वे विधिशास्त्र (Jurisprudence) और अर्थशास्त्र के अध्यापक थे। ये दोनो विषय महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन वे शुष्क और नीरस हैं। लेकिन विल्सन इन्हे भी इतने विश्वास, शक्ति, समृद्ध भाषा और नये-नये विचार के साथ अपने विद्यार्थियो को पढाते थे कि वे लेक्चर के खत्म होने पर अक्सर उनकी भूरि-भूरि प्रशसा करने लगते थे। इस तरह स्वाभाविक ढग से वाह-वाह करना विद्यार्थियो का हृदयगम्य उद्‌गारो का व्यक्त करना ही सूचित करता है। बहुत दिनो के बाद जब वे

प्रिस्टन का सभापतित्व छोडकर न्यूजर्मी के गवर्नर वने और उसके वाद अमेरिका के राष्ट्रपति वने तो वे दुनिया के अध्यापक वन गये। यह ठीक है कि इसमे उन्हे सफलता अधिक नही मिली उनमे ज्यादा चालाक कूटनीतिज्ञो ने उन्हे अपनी कलावाजियो से पछाड दिया या हो सकता है कि उन्होने जिस चीज की आशा की वह आशा से अधिक थे, फिर भी उन्होने मानव जाति को जिस महानतम आदर्श पर चलने के लिए शिक्षा दी वह विश्वशान्ति स्थापित करने का आदर्श था। शायद इतना वडा पाठ किसी एक पीढी की समझ से वाहर की वात थी। हो सकता है कि उन्होने इस शिक्षा के आशातीत परिणाम निकलने के समय का गलत अनुमान लगाया लेकिन इस आदर्श को पढाने की कोशिश करने मे उन्होने एक सद्कार्य किया और अन्त मे जव हम इस आदर्श को पा जायेगे तो उस महानतम अध्यापक की तपस्या सार्थक हो जायेगी।

अध्यापको का आखिरी वर्ग जिसके वारे मे हम विचार करने जा रहे हैं, बहुत ही महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली है। फिर भी वास्तव मे इसे कोई वर्ग कह कर नही पुकारना चाहिये वलिक कुछ ऐसे व्यक्तियो का समूह कहना चाहिये जो शायद ही एक दूसरे के वारे मे जानते थे या उनकी परवाह करते थे। ये लोग आज भी जीवित हैं और ऐसे लोग हमेशा और हर युग में होते हैं। इनका इनकी योग्यता के मुताबिक सम्मान नही किया जाता। साधारणतया जनता इन्हे भुला देती हे और कभी-कभी इनके शिष्य भी। लेकिन इनका कार्य अमूल्य होता है और शिक्षा की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट।

ये अध्यापक महापुरुषो के वे पिता हैं जिन्होने उन्हे महान वनने के लिये जरूरी चीजो की शिक्षा दी। यह भावना विल्कुल गलतफहमी है कि 'प्रतिभावन (Genious) व्यक्ति किसी वडी जाति के लोग होते हैं।' जो जाति भूत-प्रेत की तरह पुर्नावृत्त होती रहती है, उसी तरह यह भावना भी कोरी वेवकूफी है कि हरेक विख्यात व्यक्ति केवल अपने सामाजिक वातावरण की ही उपज है, उसी प्रकार जिस तरह जिस्ता और ताँबा मिलाकर पीतल बनता है या 'शरीर मे किसी तत्त्व के अभाव से मधुमेह (Diabetes) होता है। अपने सामाजिक वातावरण की तुलना में लोग एक दूसरे से अधिक भिन्न होते हैं। सभी महापुरुष अपने व्यक्तित्व मे वहुत अधिक परिवर्तन लाकर ही महापुरुष वनते हैं। अपनी इच्छाशक्ति को तीव्रतर बनाकर, दूसरो की अवहेलना करके, धीरे-धीरे वढने वाली योजनाओ को प्रयोग मे लाकर वे अस्तित्ववादी की भाषा मे वास्तव में अपने आपको पुनर्निमित करते हैं। जाहिर है कि उनका सामाजिक जीवन उन पर गहरा प्रभाव डालता है। लेकिन वे प्रारम्भिक प्रभाव जिनका अवसर उनके दिलोदिमाग पर स्थायी प्रभाव पड जाता है, उनके अपने परिवारो से ही मिलते हैं। जव उनके माता-पिता स्वेच्छा से उन्हें पढाने लग जाते हैं, तो ये प्रभाव गहरे होते हैं और निश्चय ही अधिक नियमित होते हैं। वहुत से विख्यात लोगो के पिता वास्तव मे उनके शरीर और उनकी आत्मा दोनो के ही जनक थे।

किसी स्त्री के लिये अनिवार्य रूप मे किसी वच्चे को जन्म देना वहुत ही जिम्मेदारी,

और शक्ति का काम है। पुरुष के लिये ऐसी जिम्मेदारी अधिक नही होती और उनको इसका अनुभव नही के बराबर होता है। इसमे उनका योग अधिक-से-अधिक केवल पूरक ही कहा जा सकता है। बच्चे के जन्म के बाद माता और पिता दोनो उसकी जिन्दगी और शिक्षा के लिये सम्मिलित रूप मे उत्तरदायी हो जाते हैं। ज्यो-ज्यो शिशु सोचने और बातें करने लगता है पिता का उत्तरदायित्व बढने लगता है, चाहे वह इस बात से अवगत हो या न हो या ऐसा करना चाहे या न चाहे। अधिकतर पिता यह बात नही जानते, परवाह नही करते और समझाते हैं कि यह बात सच्ची नही है। वे इस तरह रहने लग जाते है मानो उनके कोई बच्चा ही न हो। वे बालक को उसकी माँ पर, स्कूल पर या दूसरे बालको पर छोड देते हैं। कभी-कभी वे बच्चे की बिल्कुल अवहेलना करने की कोशिश करते हैं। करीब-करीब हमेशा जब बच्चे के कारण नई बातो की ओर उनका ध्यान खिचता है या घर मे कोई नई स्थिति पैदा होती है तो वे इन बातो के मुताबिक अपने व्यवहार मे परिवर्तन लाने से जी चुराते हैं। लेकिन ऐसा करने पर भी वे उस बालक को उतनी ही सावधानी और गौर से शिक्षा दे रहे हैं जिस तरह कोई उन पर दिन मे कई घटा व्यतीत करके करता है। ऐसा करते हुए वे बालक के विचारो को तरह-तरह की भावनाओ और विचारशैली और ऐसे आदेश दे रहे हैं जिन पर आगे चलकर उनकी जरूरतो का समाधान होगा। बिना किसी बात के बालक स्वय अपने विचार नही नियत कर सकता। उसे देखना होता है कि लोग किस तरह उससे व्यवहार करते हैं। इसलिये वह दूसरे बच्चो को देखता है, चलचित्रो मे लोगो को देखता है और पुस्तको के पात्रो पर गौर करता है। लेकिन सबसे अधिक और प्रभावशाली प्रभाव बच्चे के ढलते हुए दिमाग पर उनके माता-पिता का होता है। बच्चे के लिये उसके माता-पिता आकार मे बहुत बडे, शरीर से बहुत मजबूत, बहुत ही तेज बुद्धि वाले, सभी बातो को देखने और समझने वाले, क्रोध मे डरावने, बहुत ही दयावान, ज्वार भाटे की तरह अज्ञात, दया मे भी कठोर, दिलेर और प्रभावशाली होते हैं। जब वे बोलते हैं तब भी उनकी बातें बच्चो की समझ मे नही आती। उनके लिये उनके माता-पिता ही सच्चे राजा और रानी, राक्षस या डायन, परी, देवी माता या रक्षक देव होते हैं। बालक उनकी बातो का पालन करता है, अपने को उनकी सुविधा के मुताबिक बदलता हैं, उन्हे अपनी नकल करते हुए देखता है और अक्सर बिना जाने ही उनकी नकल करता है या वह उनसे बिल्कुल उल्टा व्यवहार करता है जिससे उसकी शक्ति और भी निखरती है।

चाहे पिता कुछ भी करे, बालक उनकी बातो को सीखता और अनुकरण करता है। इसलिये पिता के लिए यह तय करना और भी अच्छा होगा कि बच्चे को क्या चीज पढाई जाय और कैसे पढाई जाय। ऐसा करते हुए पिता को अपने व्यक्तित्व में कुछ परिवर्तन लाना होगा और अपने कुछ समय और शक्ति का त्याग करना होगा। लेकिन बाद में जब इसके परिणाम दृष्टिगोचर होने लगेंगे तो उसे यह देखकर आश्चर्य होगा कि उसकी मेहनत सफल हुई और उसका अपना ही व्यक्तित्व उस बच्चे के व्यक्तित्व में नई शक्ति

और नई मौलिकता के साथ पुनर्वृत्त हो रहा है। तब वह सचमुच कह सकेगा कि उसने बालक के व्यक्तित्व का निर्माण किया है और वह उसका पिता है।

महापुरुषो के सम्बन्ध मे कोई पुस्तक लिखना एक रोचक कार्य होगा। वे लोग जिन्होने अपने बच्चो की अवहेलना करके, उन्हे डरा धमकाकर या उनका मित्र बन के शिक्षा दी, यह भी जीवन की एक शिक्षा थी, क्योकि दुनिया मे भी हमे ऐसे ही बर्त्तावो का सामना करना पडता है। इन तीन वर्गो मे आखिरी वर्ग के लोगो के बारे मे भी कोई पुस्तक लिखना रोचक कार्य होगा। इस पुस्तक मे वैसे पिता जिन्होने अपने बच्चो को बुरी शिक्षा दी जैसे चेस्टरफील्ड (Chesterfield), सीसरो (Cicero), बोर्गिया पोप एलेग्जण्डर षष्ठ (Borgia Pope Alexander 6) और कोलेरिज (Coleridge) जैसो का उल्लेख नही होगा। इस पुस्तक मे उन परिवारो का उल्लेख होगा जिन्होने कई पीढियो तक प्रतिभा को न केवल वशज सम्पत्ति बनाकर ही रक्खा बल्कि पिताओ के लगातार परिश्रम से उनके पुत्रो मे योग्यता की परम्परा को बनाए रक्खा जैसे बाश (Bachs), मेदिसी (Medici), एस्त (Este), चर्चिल (Churchills), ऐडम्स (Adamses), लौवेल (Lowells), कोएलहो (Coelhos), मौंतमोरेंसी (Montmorencys) परिवार इस पुस्तक मे प्रतिभावान और सुशिक्षित पुत्रो और उनके पिता के प्रतिद्वन्द्व और प्रतिस्पर्धा इगित या अज्ञात और कभी-कभी सच्चा निस्वार्थ स्नेह जो समृद्ध और सुखी पारिवारिक जीवन का अग हो, और कभी-कभी पिता की दुखपूर्ण भावना पर आधारित मनोवैज्ञानिक भावनाओ का उल्लेख होगा, अपने पिता की इन भावनाओ के लिये पुत्र को ऐसा काम करना होता है जिससे उनका दुख दूर हो सके या वह उसका बदला ले सके। यहाँ हम केवल कुछ ऐसे पिताओ का उल्लेख कर सकते हैं जिनके पुत्र उनकी शिक्षा से महान् और विख्यात बने।

इनमे से पहले वर्ग के पिता दीवार पर लटकते हुए चित्रो के फ्रेम से शान्त, क्रुद्ध आँखो, दृढ होठो, सुथरे कपडो मे और अपनी शान्त योग्यता का परिचय देते हुए, हमारी ओर घूरते हुए नजर आते हैं। उनके पास खडे हुए उनके पुत्र कभी-कभी अपने पिता के लघु चित्र जैसे लगते हैं न कि कोई विभिन्न प्रतिभावान व्यक्ति की तरह जैसा कि वे आगे चलकर अपने शिक्षक पिता की तरह ही उसी तरह के आवास आदि मे लगते हैं। ये आदमी वैसे व्यवसायिक पिता होते हैं, जिनके प्रतिभावान पुत्र थे और उन्होने अपनी विशेषताओ से पुत्र को अवगत कराया। ऐसे लाखो परिवारो मे केवल एक ही परम प्रसिद्धि पाते हैं लेकिन प्रकृति मे जन्म और जीवन के सम्बन्ध मे जितनी अनिश्चितत्ता पाई जाती है, उसकी तुलना मे यह दृष्टात अवश्य ही अच्छा है। अक्सर ये पिता अपने पुत्रो को इस भावना से शिक्षा नही देते थे जिससे वे आगे चलकर विश्वविख्यात कलाकार बनें और आनेवाली पीढियाँ उनकी हिमायत करें। उनका केवल यही विचार था कि वे अपने बालको को ऐसी शिक्षा दे जिससे वे जल्दी ही किसी व्यवसाय में लग

जाएँ या वे उनका काम सीख कर और हाथ बटाकर बाद मे स्वय ही अपने कंधे पर उसका भार ले सके।

ऐसे बहुत से पिता सगीतकार होते हैं, क्योकि सगीत एक ऐसी भाषा है जिसमे कोई व्यक्ति तब तक पारगत नही हो सकता जब तक वह बचपन से ही सीखना शुरू न कर दे। सगीत के बारे मे पुस्तक लिखना तो इससे भी अधिक कठिन कार्य है। मोजार्ट (Mozart) के पिता एक गण्यमान्य सगीतज्ञ थे। उनकी पुत्री और छोटे पुत्र दोनो ने ही उनकी शिक्षा पाकर सगीत का ऐसा अभ्यास किया कि आगे चलकर वे ही उसके सचालक भी हो गये। उन्होने अपने पुत्र-पुत्री को इतनी खूबी से पढाया कि बालक सात वर्ष की आयु मे ही सोनाटास (Sonatas) और बारह वर्ष की आयु में (Operas) लिखने लगा। वह न केवल वाद्य यत्र को अपूर्व निपुणता से बजाता था बल्कि वह समस्त यूरोप मे घूम-घूम कर सगीत सभाओ मे अपनी बाल-प्रतिभा का परिचय देने लगा। इस काम मे (दूसरे प्रतिभावान बाल-कलाकारो की तरह) वह ऊबा नही और न उसने भावहीन सगीत का लय ही बाँधा बल्कि वह जीवन-पर्यन्त सुन्दर, सुमधुर और उत्कृष्ट सगीत की रचना करता रहा। यहाँ तक कि अपने व्यक्तिगत दुख की दशा मे भी वह जिस दैवी शान्ति से बात करता है उससे उस पिता को श्रेय मिलता है जिसने उसे यह सिखाया था कि कला बुरे से बुरे जीवन की भी परमौषिध है और उसमे मानो सर्वोत्तम जीवन की भाषा प्रवाहित होती हो।

सभी सगीतज्ञ पिता उतनी ही सफलता से अपने पुत्रो का चरित्र निर्माण नही कर सकते। बीथोवन (Beethoven) का पिता एक बर्बर और असभ्य शराबी था। पुत्र को शराब घरो मे पिता के साथ जाकर नशे की स्थिति मे उसे घर लाना पडता था और गलियो को पार करते हुए दूसरे बालको के पिता के कटाक्षपूर्ण आँखो से सामना करना पड़ता था। घर लाने के बाद उसे कभी-कभी पुरस्कारस्वरूप अपने पिता के लात-जूतो से भी अपने आपको बचाना पडता था। आगे चलकर बीथोवन को यह अनुभव हुआ कि समाज मे केवल अपनी इच्छा शक्ति का घोर प्रदर्शन करके ही सफलता मिल सकती है। उसने ऐसे नायको की हिमायत की जिन्होने अपने शक्तिशाली अध्यापको (फिडेलियो, कोरियोलैन्स, प्रोमेथ्यूस) के विरुद्ध बगावत की थी। स्वय उसका अपना आचरण रूखा और विध्वसात्मक हो गया था और उसने अपने स्वीकार किये हुए पुत्र के जीवन को अत्यधिक लाड-प्यार और सावधानी के कारण बर्बाद कर दिया और स्वय अपना जीवन भी बर्बाद कर दिया। इन सब बातो की शिक्षा उसे अपने उस पिता से ही मिली थी जिसने बाल्यकाल मे उसे कोठरी मे बन्द कर दिया था और जिस पिता को जीविकावस्था मे उसे पुलिस के हाथो से बचाना पडा था। इसके बावजूद भी बीथोवन के पिता ने उसे सगीत की शिक्षा दी। चार वर्ष की आयु मे उसने बीथोवन को वायलिन आदि यत्र बजाना सिखाया था और नौ वर्ष की आयु में जब वह अपने पिता से और अधिक नही सीख सकता था, तब बुद्धिमानी से उसे दूसरे अध्यापको के सुपुर्द कर दिया। साथ ही उसे

अपने पिता मे अभिव्याप्त पाशविक प्रवृत्ति और उन प्रेरक शक्तियो का भी काफी अश मिला ।

बाश स्वय एक सुयोग्य सगीतज्ञ का पौत्र था और साथ ही उसका भाई, भतीजा और परपौत्र भी सगीतज्ञ थे। बाश परिवार तीन पीढियो या उससे अधिक तक सगीतज्ञो का परिवार बना रहा। स्वय बाश के बडे भाई ने उसे सगीत की शिक्षा दी थी। उसने भी अपने पुत्रो को बहुत अच्छी शिक्षा दी। उसने प्रारम्भिक पाठो का क्रमश सग्रह करके अपने पुत्र विल्हेम फ्रडमैंन (Wilhelm Friedemann) के लिये एक पुस्तक तैयार की थी और एक दूसरी छोटी पुस्तक अपनी दूसरी युवती स्त्री के लिये लिखी थी जो आज भी मौजूद है। उसके बीस पुत्रो में से पाँच कुशल सगीतज्ञ बने और तीन ने उत्कृष्ट प्रतिभा दिखलाई। शिक्षा के प्रति उनकी अभिरुचि का परिचय हमे उनकी कुछ महान कृतियो मे मिलता है। उदाहरणार्थ उन्होने "दी फोर्टीएट प्रील्युडस एण्ड फ्यूग्स" (The Forty-eight Preludes and Fugues) का निर्माण सगीतज्ञो को नये वाद्य यन्त्र से अवगत कराने के लिये किया था। जैसा वे स्वय कहते थे, "मुझे बहुत कठिन परिश्रम करना पडा था। यदि दूसरा कोई व्यक्ति भी इतना ही कठिन परिश्रम करे तो वह भी उतनी ही सफलता पा सकता है।" यदि बाश मे कोई त्रुटि थी तो वह यह कि वह कभी-कभी शुष्क और गम्भीर हो जाते थे। इसलिये उनका एक पुत्र जो एक अद्भुत रचयिता (Improviser) था, शराब पीकर अपना जीवन गँवा बैठा।

इसी तरह कोई व्यक्ति दूसरे व्यवसाय का निरीक्षण करते हुए यह देखेगा कि व्यवसायिक पिता चरित्र के बदले शैली के विकास मे सबसे अधिक अभिरुचि दिखाते हैं। 'प्रतिभा की अस्थिरता' (The instability of genious) के नाम से सम्बोधित की जाने वाली स्थिति के मुख्य कारणो मे से यह एक है। बहुत से सगीतज्ञ पिता अपने पुत्रो को यह तो सिखायेंगे कि वे सगीत रचना की योजना किस प्रकार करें और शब्दो का चुनाव कैसे करें लेकिन वे उन्हे यह नही बताते कि वे अपने खर्च कैसे कम करे, और दबावो मे कैसे बचें। हम इसका एक विचित्र उदाहरण पहले देख चुके हैं। सिकन्दर महान एव आश्चर्यजनक योद्धा और राजनीतिज्ञ था। पच्चीस वर्ष की आयु तक उसने युद्धकला मे रसद, युद्ध की चाल, विजय, प्रशासन, प्रचार और नीति जैसे गूढ विषयो को हस्तगत कर लिया था। यदि यह विषय अलग-अलग पढे जाते तो उसे कई वर्ष लगते। ऐसा वह इसी कारण कर सका क्योकि उसके पिता ने उसे पढाया था। उसके पिता मैसिडोनिया के राजा फिलिप एक चतुर और निर्दयी परिवार के थे जिन्होने यूनान की कई प्रतिरोधी जातियो पर काबू पाकर सत्ता प्राप्त की थी। अपने कटु अनुभवो से फिलिप यह सीख गये थे कि शत्रु में किस तरह वैमनस्य पैदा करना चाहिये, झूठ बोलना चाहिये, आक्रमण करना चाहिये, कब उनसे सुलह करनी चाहिये या उनसे मत्रणा करनी चाहिये, जब सेना नही लड रही हो तो किस तरह से उसे प्रशिक्षित करना चाहिये, किस तरह अपने शत्रु की कलाबाजियो को समझना चाहिये और उसमे उसे पराजित करना चाहिये,

धन प्राप्ति या व्यय, और किन शक्तियो को अपने हाथ मे रखना चाहिये और किन का हस्तातरण करना चाहिये। नवयुवक राजकुमार अपने पिता के साथ घुडसवारी करता, उसके नेतृत्व मे युद्ध भूमि मे लडता, उनके सहायक और सेनाध्यक्ष का काम करता, और अपने पिता की समस्याओ को सुनता था। वह इन समस्याओ के बारे मे उनसे वाद-विवाद करता और यहाँ तक कि अपनी माँ के पक्ष मे होकर उनसे लड भी पडता था। सिकन्दर की सफलता काफी अवश्यम्भावी थी। यह सफलता उसके पिता की शिक्षा के बिना असम्भव होती। लेकिन साथ ही फिलिप ने सिकन्दर को अपने व्यक्तिगत दोषो से भी आक्रात कर दिया। सिकन्दर का दिव्य रूप दिखाते हुए निर्दयता, भ्रष्टाचार और दभ जैसे दुर्गुणो के कारण उसकी पाशविक प्रवृत्तियो का आभास होने लगता है। अरस्तु ने, जो उसके दूसरे अध्यापक थे, इन प्रवृत्तियो को दूर करने का यत्न किया था। वे फिलिप के प्रभाव का निराकरण नही कर सके।

दूसरे वर्ग के पिता जिन्होने अपने पुत्रो को शिक्षा दी वे इन सुयोग्य कारीगरो से भिन्न प्रकार के थे। हम उनके चेहरे को उतनी स्पष्टतया नही पहचानते जितना बाश या मोजार्ट के चित्र हमारे सम्मुख स्पष्ट हैं। उनका जीवन चित्र उनके पुत्रो मे नही मिलता। जीवनियो के सग्रह मे भी उनकी अवहेलना की गयी है। अक्सर वे इस स्थिति से सतुष्ट रहते थे क्योकि वे खुशहाल व्यक्ति थे और स्वय अपना जीवन ही उनका पुरस्कार था। वे ऐसे पिता हैं जिन्होने अपने पुत्रो को इसलिये पढाया, क्योकि वे स्वय नई-नई बातो से भरे हुए थे। उनका विचार अपने पुत्रो को किसी विशेष व्यवसाय के लिए शिक्षित करना नही था बल्कि केवल उनके साथ मिलकर वे मानव जाति की सफलताओ और सुन्दरता की अनुभूति करना चाहते थे वे स्वय सस्कृति का रसास्वादन करते थे। वे अपने पुत्रो को सुख से वचित रखना नही चाहते थे, जिस तरह कोई पहाड पर चढने वाला अपने पुत्र को पहाडियो पर चढने के लिए मना नही करता। कभी-कभी वे अपने लडको से कहते—"मैंने स्वय अपने को तीस वर्ष तक वचित रक्खा, क्योकि तब तक किसी ने मुझे इसके बारे मे नही बताया था। आओ, मैं तुम्हे अब उसे दिखाऊँ।" कभी-कभी उन्होने पुत्रो को ऐसे पाठ पढने के लिए दिये जो उन्हे नापसद थे। फिर भी आखिर मे वे बच्चे जो कुछ भी सीख सके वह अप्रत्यक्ष रूप से उन्हे अपने पिता से ही मिला था। एडमड गौस (Edmund Gosse) लिखित फादर एण्ड सन (Father and Son) एक अच्छी जीवनी है जिसमे ऐसी शिक्षा के प्रारम्भ का परिचय मिलता है। गौस विक्टोरियन युग के एक बुजुर्ग और गभीर माता-पिता के पुत्र थे जो बहुत ही धार्मिक प्रकृति के थे और किसी सकुचित मत को मानते थे। लेकिन वे लोग बहुत ही आकर्षक व्यक्ति थे और वे आपस मे एक दूसरे को और अपने पुत्र को बहुत प्यार करते थे। माँ छोटी-मोटी लेखिका थी। पिता जीवशास्त्री थे जिनका यह कार्य था कि लोगो को इगलैण्ड के पशु जीवन को पढाएँ और समझायें और विशेष रूप से समुद्र तट पर मिलने वाली मछलियो के बारे में बताएँ। गौस को उनके माता-पिता ने बिल्कुल अपने जीवन का अग बना लिया था। उन्होने उसे उतनी

छोटी उम्र मे चर्च भी दिखा दिया था जो उस उम्र के बच्चो के लिये सभव नही होता क्योकि गौस ने उसके धार्मिक सिद्धान्तो के बारे मे बहुत कुछ सीख लिया था। वह बिल्कुल अपने माता-पिता के स्तर पर जिन्दगी बिताता था। उसके बारे मे एक बडी रोचक घटना है। एक बार वह बच्चो की किसी पार्टी मे गया जहाँ दूसरे बालक बालिकाएँ 'कासा बिएन्का (Casabianca) और उसी तरह की 'मधुर कविताएँ' (Sweet Stanzas) सुना रहे थे। जब गौस से पूछा गया कि क्या वह भी कोई कविता सुनायेगा तो वह बहुत प्रसन्नता से आगे बढा और ब्लेयर (Blair) कृत 'दि ग्रेव' (The Grave) कविता के अश सुनाने लगा। यह कविता नैतिक भावनाओ से ओत-प्रोत थी और गौस के माता-पिता उसे बहुत पसद करते थे। गौस ने कहना शुरू किया

"If death were nothing, and nought after death,—
If when men died atonce they ceased to be,—
Returning to the barren womb of Nothing
Whence first they sprung, then might the debauchee "

इस वाक्य के समाप्त होते ही सभापति ने कहा, "बहुत धन्यवाद बेटे! अब बस करो। हम तुम्हे इसे दुहराने का कष्ट न देगे।" और उसे कविता पढने को मना कर दिया। गौस को यह देख अकथनीय आश्चर्य हुआ और उसे अपना कविता पाठ बन्द करना पडा।

गौस के पिता ने उसे (क) प्लाईमाउथ बन्धुओ (Plymouth Brethren) की धार्मिक मान्यताओ और (ख) जल-जीव विद्या (Marine Biology) से अवगत कराने का प्रयत्न किया था। उस बालक ने अपने पिता की सहायता के लिये हजारो चित्र बनाए और उन्हे गहरे रगो से रगा मानो वे चित्र किसी वैज्ञानिक या असभ्य द्वारा बनाये गये हो। यहाँ तक कि समुद्र के जीवो की जाति का भी पता लगाया। अपनी पुस्तक मे उसने अपनी महान् प्रसन्नता का वर्णन किया है जो कौरनिश के समुद्र तट पर घण्टो अपने पिता के साथ उसने उन जीवो को देखने और समझने में बिताया था जो हम से बिल्कुल भिन्न वातावरण मे जीवन व्यतीत करते हैं। आप यह भी देखेगे कि उस परिवार मे बडी-बडी कठिनाईयो के बावजूद भी साहित्य को बडा महत्त्व दिया जाता था। उसकी माँ ने लिखा कि सब लोग बाजारू पुस्तकें नही बल्कि अच्छी और गभीर पुस्तकें पढते थे। उसके पिता ने 'अधार्मिक चीजो' को छोडने से पूर्व और भी अच्छे साहित्य का रसास्वादन किया था। गौस लिखता है कि एक बार लैटिन के प्रारम्भिक पाठो को याद करते हुए उसके पिता ने उसे सुन लिया और तब उन्होने उसे वर्जिल की एक प्रिय पुस्तक के कुछ अश सुनाए। पढने का लय इतना सुन्दर था कि कविता का अर्थ न मालूम होने पर भी बालक का हृदय वशीभूत हो गया और उसने उसे केवल आनन्द पाने के लिये ही कठस्थ कर डाला। ज्यो-ज्यो गौस बडा होने लगा, उसे भी अपने पिता के प्रभाव से बचने के लिये सघर्ष करना पडा। उसके लिये यह सघर्ष अधिक कठिन साबित हुआ क्योकि पिता और पुत्र एक दूसरे से हृदय से प्रेम करते थे। इस दुखदायी विच्छेद

के बाद गौस इगलैण्ड का एक खोखला और आडम्बरपूर्ण किन्तु प्रमुख साहित्य समालोचक बन गया। यह ऐसी बात थी कि शायद ही उसके पिता ने कभी इसकी कल्पना भी की हो, स्वीकार करने की बात तो दूर रही। फिर भी गौस का व्यक्तित्व सम्पूर्ण था। उसके गुण और दोप दोनो ही उसके पिता की शिक्षा से उत्पन्न हुए थे। उसकी मेहनती आदतें, सुरुचि, तत्परता, सौंदर्य और साहित्य प्रेम ये सब उसके पिता के ही दिखाए हुए पाठ थे, लेकिन दुनियादारी, धर्म के प्रति अविश्वास की भावना और भोगवाद उसके पिता की शिक्षा के विपरीत परिणाम थे।

प्राउस्ट महाशय को गौस के जीवन के उस पहलू पर उतना प्रकाश न डाल कर, जिसमे उसने एक रचनात्मक साहित्यिक समालोचक का कार्य किया था, उसके जीवन के दूसरे पहलुओ पर अधिक लिखना चाहिए था। उन्हे यह बताना चाहिए था कि किस तरह एक जीवशास्त्री के रूप मे वह समुद्र के भीतर रहने वाले जीव-जन्तुओ को निहारा करता था। उसके घर मे कितनी भीड होती थी, कितने मेहमान आते थे, किस तरह वह अपने पालतू विचित्र जन्तुओ से लोगो का मनोरजन करता था, किस तरह कवियो आदि को इनके बारे मे तरह-तरह के विवरण बताता था, किस तरह उसके पिता ने उसके जन्तुओ के नमूने इकट्ठे किए थे और किस तरह शाम तक वह उनके चित्रो मे रग भरता था। किस तरह अपने कठिन जीवन मे वह पुस्तको पर पुस्तक लिखता जाता था। उसके पिता जन्तुओ के बारे मे चित्र और वैज्ञानिक पुस्तके लिखते थे, इत्यादि।

गौस द्वारा अपने पिता के विरुद्ध व्यक्त किये गये उपकारो के बावजूद भी उनके सम्बन्ध दुखद थे। उनकी तुलना मे राबर्ट ब्राउनिंग (Robert Browning) और उसके पिता के सम्बन्ध अधिक अच्छे थे। जाहिर है कि ब्राउनिंग के पिता ने उसे जीवन की समस्याओ के प्रति एक आक्रमणकारी दृष्टिकोण अपनाने की शिक्षा दी और आशावाद, प्रबुद्धि और निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाने की शिक्षा दी थी। लेकिन ७५ वर्ष की उम्र मे लिखी हुई एक छोटी-सी कविता मे उन्होने ग्रीक भापा और कविता के ज्ञान के लिये अपने पिता के प्रति उद्गार व्यक्त किये हैं। उन्होनें लिखा है कि पाँच वर्ष की आयु मे जब उसने अपने पिता को कोई पुस्तक पढते हुए देखा तो उन्होने उनसे प्रश्न किया, "क्या पढ रहे हो ?" होमर द्वारा लिखी हुई पुस्तक के ऊपर से आँख उठाकर देखते हुए पिता ने जवाब दिया, "ट्राय का कब्जा' (The siege of Troy) पढ रहा हूँ।" तब छोटे बालक ने उनसे "ट्राय" और "कब्जा" का मतलब पूछा। ऐसे मौके पर बहुत से पिताओ ने कहा होता, "ट्राय एशिया का नगर है। अब भाग जाओ और अपनी रेलगाडी से खेलो।" लेकिनब्रा उनिंग के पिता वैसे पिता न थे। वे उछल-कूदकर स्वय कमरे के अन्दर कुर्सी और मेजो की सहायता से ट्राय बनाने लगे और उनके ऊपर एक कुर्सी रखकर उसमे राबर्ट को बैठा दिया और बोले, "यह लो। यह रहा ट्राय और तुम हो उसके राजा प्रियम (Priam)।" तिपाई के नीचे बिल्ली की ओर सकेत करते हुए उन्होने कहा—"यहाँ ट्राय की सुन्दर रानी हेलेन बैठी है। बाहर आँगन मे बैठे हुए दो कुत्ते दो बहादुर राजे एगामेमनौन (Agamemnon) और

मैनेलौस (Menelaus) हेलेन को जीतने के लिये ट्राय पर आक्रमण करने वाले हैं।" इस तरह उन्होने बालक को कहानी का रोचक भाग ऐसे ढग से बता दिया जिससे वह उसे समझ जाए। मैं जब उस कविता को पढता हूँ तो हँसी आती है और मैं उस बालक की खुशी और आश्चर्य की कल्पना करने लगता हूँ जब उसने अपने प्रसन्न पिता को पुस्तक बन्द करके इधर-उधर कूदते, मेज पर कुर्सी रखकर उस बालक को उसमे बैठा देने का दृश्य याद करता हूँ। वे किसी परियो की कहानी के जादूगर की भाँति उस बालक को राजा और उसके परिचित कमरे को एक नगर और युद्धभूमि मे बदल देते हैं। आगे चलकर ब्राउनिंग ने लिखा है कि जब वह सात या आठ वर्ष का हुआ तो उसके पिता ने उसे उमर की इलियाड की एक अनूदित पुस्तक दी और (जितनी शीघ्र ही सम्भव हो सके) उसे ग्रीक भाषा मे पढने के लिये प्रोत्साहित किया। ब्राउनिंग अपने पिता को एक बुद्धिमान अध्यापक समझता है क्योकि उन्होने उसे एक दिन के खेल का मनोरंजन ही नही दिया बल्कि जीवन-पर्यन्त साथ रहने वाली एक निधि भी दी।

टेनिसन के पिता उतने खुश नही थे लेकिन वे एक सफल व्यक्ति थे। सुनने मे आता है कि वे अपने पुत्र को सावधानी से किन्तु गलत ढग से पढाते थे। उन्होंने होरेस(Horace) द्वारा लैटिन भाषा मे लिखे गये सारे गीतिकाव्य को टेनिसन को कठस्थ करवाया। इसमे उनका कठिन छदविन्यास और गूढ विचार भी शामिल थे। उसका प्रभाव टेनिसन पर भी वही हुआ जो बायरन (Byron), स्विनबर्न, किप्लिग आदि पर हुआ। (Then Farewell, Horace—whom I hated so, Not for thy faults, but mine) अब होरेस तुम्हे, अलविदा, इसलिये नही कि तुममे त्रुटियाँ हैं बल्कि अपनी त्रुटियो के कारण। यह खुराक हास्यास्पद, निर्दय और 'जरूरत से अधिक' थी। होरेस जैसा महान् कवि ही ऐसी भावना को सचित रख सकता था। वर्षों बाद टेनिसन ने कहा था कि यद्यपि यह गलत तरीका था फिर भी वह होरेस के ज्ञान के लिये आभारी है। होरेस जैसे सब विन्यास मे निपुणता और कर्तव्यपरायणता अक्सर टेनिसन से मिलती है।

उस बालक से अपनी कविताएँ 'कठस्थ' कराना भूल थी। उसको सहृय बनाने के लिये उसे और विद्यार्थियो के साथ सरल बनाया जा सकता था। पिट जैसे कुशल राजनीतिज्ञ ने जिसने नैपोलियन का मुकाबला करने का कार्य आयोजित कराया था, अपने पिता से अच्छी शिक्षा पायी थी। उसके पिता उसे महत्त्वपूर्ण वक्ताओ के भाषण के अश अनुवाद करने के लिये दिया करता था। यह अनुवाद उसे बोलकर और देखते ही करना पडता था। लेकिन यह कार्य उसे पाठक के रूप मे नही बल्कि प्रतिद्वन्द्व के रूप मे करना होता था। यह एक ऐसा प्रदर्शन होता था जिस में उनके पिता एक प्रशिक्षक, प्रतिद्वन्द्वी और दर्शक तीनो का कार्य करते थे। इसी शिक्षा का प्रभाव था जिसका उल्लेख उसके मित्र उसकी अपूर्व वक्तृता शक्ति का कारण बनाकर कहते थे। इस शक्ति को उसने अपने जीवन में बहुत पहले ही विकसित कर लिया था और उसमें भावना और सशक्त

शब्दो की ऐसी भरमार होती थी कि उसके तीव्र विरोधियो के भी मन आश्चर्य, प्रसन्नता और हार के भावो से भर जाते थे। यह शिक्षा केवल भाषणो की शिक्षा ही नही थी बल्कि वक्तृता शक्ति, विचारो के नेतृत्व और आत्मा को विशाल बनाने की शिक्षा भी थी।

'वंशानुगत गुण' (Heredity) शब्द का अर्थ वास्तव में कितना विस्तृत है, इस पर विचार करते हुए मुझे अक्सर आश्चर्य होता है। जहाँ तक शरीर का प्रश्न है यह शब्द सम्भवत काफी सार्थक है। क्या हमारी आत्मा और विवेक के भी कोई वंशानुगत गुण जन्मजात होते हैं ? इस कथन का क्या मतलब है कि, "आपके पुत्र मे आप ही की तरह मशीन चलाने की कला जन्मजात है।" या "आपकी पुत्री मे आप ही की तरह खेल-कूद के प्रति अनुराग की भावना जन्मजात है।" इसके स्थान पर क्या यह कहना ठीक नही होगा कि "आपने अपने पुत्र को मशीन चलाना सिखाया है ?" क्योंकि आप उसके नये उदाहरण थे और आपने उसे सिखाया और प्रोत्साहित किया। साथ ही क्या यह भी कहना ठीक नही होगा कि "आपने अपनी पुत्री को खेल-कूद का शौकीन बनाया क्योंकि आप उसे खेलने मे प्रोत्साहित करते थे, इनके बारे मे उससे बातचीत करते थे। उसके जन्म-दिवस पर खेल-कूद के सामान उपहार मे देते थे और उसे मैच दिखाने ले जाते थे।" क्या हम जन्म-जात (Inherit) गुण और वंशानुगत गुण जैसी बातो को अपनी इस भावना से छिपाने के लिए प्रयोग नही करते कि माता-पिता को अपने बच्चो की शिक्षा के बारे मे बहुत सावधानी से काम लेना चाहिये, यद्यपि बहुत से माता-पिता ऐसा नही करते। क्या इससे हमारी यह भावना परिलक्षित नही होती कि बिना प्रयत्न किये ही हमारे बच्चे किसी न किसी तरह वे बाते सीख जायेंगे जिन्हे हम सिखाना चाहते हैं ? यदि बात ऐसी है तो हमारे ये विचार बिल्कुल गलत हैं। हमे मालूम है कि दुनिया मे ऐसे लोग भरे पडे हैं जिनके दुख का कारण यह है कि उनका दृष्टिकोण स्पष्ट नही है और उनके विचार सुलझे हुए नही हैं। फिर भी हम अपने बच्चो को कोई निश्चित और विश्वसनीय बात को सिखाने के बहुमूल्य मौके को अक्सर गँवा देते हैं। इस आक्षेप का सबसे साधारण उत्तर यह दिया जाता है कि स्वय हमारे अपने विचार निश्चित और विश्वसनीय नही होते। ३५ या ४० वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते हमारे बच्चे उन कठिन बातो को समझाने लायक काफी बडे हो गये होते हैं जिनको हमने जीवन में सुलझाया है और जिन्हे हम पढाने योग्य समझते हैं। उन बातो को अपने बच्चो को बताना अच्छा है। वे उनकी आलोचना करेंगे, उनका विरोध करेंगे और कभी-कभी उनका तिरस्कार भी करेंगे। यह भी अच्छा है। हमने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया और उन्हे खुद कार्य करने का ढँग सुझा दिया। वे चाहे तो उस पर चलें या कोई दूसरा अच्छा ढँग अपनायें। वे हम पर गलत बात पढाने का दोषारोपण कर सकते हैं (यद्यपि प्राय वे हम पर धोखा देने का आक्षेप नही करेंगे) और अपनी बातें जबरदस्ती उनके मत्थे डालने का आक्षेप कर सकते हैं। चाहे हम उन्हे कितनी ही मृदुलता से बताये फिर भी वे ऐसा

अवश्य कहेंगे। लेकिन इससे वे हम पर कभी यह लाँछन नही लगायेंगे कि हमने उनकी अवहेलना की, अपने जीवन के ४० वर्षों के अनुभव को बर्बाद किया और उनके जीवन के १५ वर्ष नष्ट किये। बच्चो के कैदखाने और पागलखाने ऐसे बच्चो से भरे हुए हैं जिन्हे उनके माता-पिताओ ने कोई उपयोगी बात नही सिखायी। इसका कारण यह नही था कि लालन-पालन मे कोई कमी रक्खी गई थी बल्कि उन्हे आचरण नही सिखाया गया। स्कूलो के व्यवहार मे उनके लिये कोई उपयोग नही था। दूसरे बच्चे, जिन्हे वे जानते थे, वे भी वैसे ही कोरे थे। फिल्मो मे वे देखते और सीखते थे कि जीवन कौतूहल और निडर आचरण का नाम है। उनके पिता ने उन्हे कभी नही बताया कि उन्हे अपनी प्रतिभा का किस तरह उपयोग करना चाहिये और अपने जीवन को किस तरह सुव्यवस्थित बनाना चाहिये। माताओ ने अपनी पुत्रियो को कभी भी जीवन के सच्चे सुख और सन्तोष से अवगत नही कराया। जब हम १७ वर्ष की उम्र मे बर्बाद किसी बालक या बालिका का लटकता या शरारतपूर्ण चेहरा देखते हैं और मन मे यह अनुभव करते हैं कि वह असभ्य नजर आता है, तो हमारा यह विचार ठीक ही होता है। सूडान और जिव्हारो (Jivaro) के कबाइली या बोर्नियो के पहाडी लोग अपने बाल-बच्चो को सभ्य ससारके विशाल शहरो मे रहने वाले माता-पिताओ की अपेक्षा कही अधिक उद्देश्यपूर्ण और सफल शिक्षा देते हैं।

५

दैनिक जीवन में शिक्षा

हम सभी सारी जिन्दगी किसी न किसी रूप मे पढते और पढाते हैं। अध्यापक के रूप मे जिन पिताओ की चर्चा हमने पिछले अध्याय मे की है, वैसे पिता वहुत कम ही हुए हैं जिनके लडके वडे आदमी वने। लेकिन यह निश्चित है कि प्रत्येक माता-पिता एक वहुत वडे हद तक अपने वच्चो के शिक्षक होते हैं। इस शिक्षा मे ससार की सभी वाते आ जाती हैं जैसे "भगवान् कहाँ है ! जैसे सवाल से लेकर सावुन का प्रयोग कैसे किया जाता है तक और इनका उन पर जीवनपर्यन्त प्रभाव पडता है। आज से तीस साल वाद प्रमुख राजनीतिज्ञ या नाटककार जैसे खास लोग भी अपने माता-पिता और परिवार के लोगो द्वारा डाली गई आदतो के मुताविक ही व्यवहार करेगे। यद्यपि माता-पिता के अनुशासन पाठ को मानना जरूरी होता है फिर भी यह उवा देता है। लेकिन एक दूसरे तरह की ऐसी पढाई है जो इतनी रोचक और उत्साहवर्धक है कि समझ नही आती कि इसको क्यो नही अपनाया जाय और प्रयोग मे लाया जाय। वच्चे हजारो सवाल पूछते हैं क्योकि उनकी दुनिया मे सभी चीजें नयी, अजनवी और जगमगाती होती हैं। अगर वे ये सवाल अलग समय पर हमसे पूछें जव हम कपडे धो रहे हो या उन्हे सुखा रहे हो तो उन्हे कभी चुप करना नही चाहिए वल्कि यह कहना चाहिए कि मुझसे नाश्ते के समय पूछ लेना। ठीक है न ? "जव ये वच्चे उचित समय पर सवाल पूछे तो ज़रूर वताना चाहिए। यह एक घृणास्पद आदत है कि चलती ट्रेन मे अगर कोई लडका खिडकी के वाहर झाँकता हुआ यह पूछे "यह तार क्यो ऊपर नीचे जाते हुए नजर आते हैं ?" तव आप जिस तरह वडी उम्र के लोग आपस मे बातें करते हैं उसी रुखाई से उसको जवाब दें। कम से कम वच्चे को आपकी यह हरकत वेहूदा वेमतलब मालूम पडती है। "चलने दो" या "अभी मुझे तग न करो" आदि उत्तरो से कोई लाभ नही होता। इससे बच्चा यही निष्कर्ष निकालता है कि (क) सभी वडे लोग वदमिज़ाज और रूखे होते हैं और आश्चर्यजनक चीजो का लाभ नही उठाते, (ख) वे दुनिया को समझने और जानने के प्रति कुछ उदासीन, कटु, सुस्त और अनिच्छुक हो जाते हैं, (ग) वे अपने माँ-बाप से कुछ अलग से हो जाते हैं जिससे ? परिवार मे कुछ खिचाव हो जाता है। जिसका असर सामाजिक जीवन पर भी पडता है। नि सन्देह उनके सभी सवालो का जवाब देना कठिन है। कुछ का तो जवाव देना बिल्कुल असम्भव होता है लेकिन उन्हे जवाब जरूर देना चाहिये भले ही यह उनमे ज्ञान हासिल करने की रुचि बनाये रखने के लिए ही या माता-पिता के प्रति सद्भाव

बनाये रखने के लिए ही क्यो न हो। इसकी वजह यह है कि सभी बच्चे वैसे ही होते हैं और उनका दूसरा कोई रूप दिखाना अस्वाभाविक है। जब वे पूछे "यह वर्षा कहाँ से आती है" तो आप उन्हे बताएँ। अगर आप नही जानते हो तो वह भी बता दें और पता करके उस बात को बताने का वायदा करे। उनके लिए यह समझना अच्छा है कि आप सीख रहे हैं आप दुनिया को सुख उठाने की जगह समझते हैं और उसे काम करने का केवल एक कारखाना ही नही समझते।

जब बच्चे बडे हो जायें तो माता-पिता बडी-बडी बातो के बारे मे भी काफी बाते उनसे कर सकते हैं। बचपन मे लडके-लडकियाँ कभी-कभी काफी दूर रहते हैं और उनसे बात-चीत करना बडा मुश्किल होता है। लेकिन अगर आप उनसे युद्ध, पैसा और प्रेम जैसे विषय पर बात करते हैं जिससे उनके मन मे चिंता पैदा होती है या फिर रोजगार पाने, उसकी सुरक्षा करने या विवाह-शादी जैसे ऐसे विषयो पर बाते करते हैं जिनसे वे चिंतित होने की परिकल्पना कर सकते हैं, तो वैसी स्थिति मे वे आपसे बडे तीखे प्रश्न पूछेगे और उनमे उन्हे थकान जरा भी अनुभव नही होगा। वैसे पिता बहुत ही कम होते हैं जो अपने रोजगार के बारे मे बातचीत करते हैं। बहुत से बच्चो को यह जानकर आश्चर्य होता है कि उनके पिता ऐसे पद पर काम करते हैं जो महत्त्वपूर्ण और रोचक हैं और जिस नौकरी के बारे मे उनमे आपस में कभी बातचीत नही हुई। या बहुत देर के बाद उसे यह मालूम होता है कि उसने अपने पिता के अनुभवो से अपने धधे मे ही लाभ उठाया होता जिसे वह अपने धधे से सम्बद्ध समझता था।

और साधारणत पिता-पुत्र का सम्बध पढाई (Teaching) के आधार पर ही बना है। हममें से अधिकतर लोग इस बात को भूल जाते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि यह सम्बध स्नेह पर आधारित होता है। कुछ लोग यह समझते हैं कि इसका आधार अनुशासन है। लेकिन आप जितना भी चाहे किसी बच्चे पर स्नेह की वर्षा करें फिर भी वह दुनिया का सामना करने मे अयोग्य और निठल्ला ही रहेगा। दूसरी ओर अपने बच्चो को नियन्त्रित करने का सबसे अच्छा और निश्चित तरीका उन्हे उन नियमो को समझाना है जिन्हे आप उन पर लागू करने जा रहे हैं। शिक्षा का अधिक भाग घर से बाहर उस समय तक नही हो सकता जब तक परिवार नामक वस्तु का दुनिया से नामोनिशान तक मिटाकर दिन में चौबीस घटे चलने वाले स्कूल स्थापित नही कर दिये जाते। यह बात सचमुच मे हास्यास्पद है कि स्कूलो में यह उम्मीद की जाय कि वहाँ बच्चो को दाँत साफ करना, पैसा बचाना या व्यक्तिगत जीवन संगठित करना सिखाया जाये। अगर माता-पिता कोशिश करें तो वे अपने बच्चो को अध्यापको से अधिक बुद्धिमत्ता और प्रभावोत्पादक ढग से शिक्षा दे सकते हैं। वैसी शिक्षा को बच्चे सारी जिन्दगी याद रक्खेगे और वे इस बात की कोशिश करेंगे कि यह उनके जीवन का अग हो जाये।

पति-पत्नी भी एक दूसरे से सीखते हैं या एक दूसरे को पढाते हैं। विवाहित जीवन में अधिकतर पैदा हो जाने वाली कटुता और दुख इन्ही बातो को भुला देने के कारण

उत्पन्न होते हैं। कोई स्त्री जब अपने पति को अपनी तनख्वाह के रुपयो से खिलवाड करते देखती है तो उसके मन मे भी कुछ पैसो को अपने मन मुताबिक व्यय करने का विचार होता है। साधारणत , वह अपने पति के विचारो का उलघन करके अपनी बात उस पर लादना चाहती है। इसके जो परिणाम होते हैं वे जाहिर हैं, या वह इस बात का विरोध करता है, या अपनी पत्नी की बातो का उलघन करता है, या वह उसकी बात मान लेता है और उस पर शासन करने के लिए उससे नफरत करने लगता है। अगर हार-जीत बराबर रहा तो कलह शुरू हो जाता है। पति अपनी पत्नी को आलसी या गन्दा समझने लगता है। वह अक्सर उसकी शिकायत करता है और तब ताकत दिखाता है। उधर स्त्री या तो उसका विरोध करती है, आलसी बनने का बहाना बनाती है या सविरोध अपने पति की बात मान लेती है और झट से अनमने भाव से घर को साफ कर लेती है। और उस घर मे दोनो रहने लगते हैं। दूसरे शब्दो मे यह एक ऐसा समझौता है जिसमे किसी पक्ष को सन्तोप नही होता। फिर भी अगर बाहर से देखा जाये तो दोनो मे से एक यथार्थ के अधिक निकट मिलेगा।

लेकिन ऐसे अनगिनत कलह होते हैं जो एक दूसरे को न समझने या एक को दूसरे से कुछ सीखने की भावना के अभाव के कारण पैदा होता है। इस पुस्तक मे हम पढाने की कला पर दृष्टिपात कर रहे हैं। लेकिन वैसे विद्यार्थी को पढाना मुश्किल है जो कुछ भी सीखना नही चाहता हो। सज्जनो ! हम अपनी स्त्रियो से भी सीख सकते हैं

जीवन पर ध्यान देते हुए हम देखते हैं कि साधारण जीवन मे बहुत से सम्बन्ध होते हैं जो पढने-पढाने पर ही निर्भर करते हैं। उदाहरण के तौर पर आप देखेंगे कि किसी अच्छे कार्यालय मे एक कुशल मैनेजर होगा। एक अच्छा मैनेजर अपनी अधिकतर मेहनत कर्मचारियो को अपनी बात समझाने और उनको उस पर राजी करने मे खर्च करता है। योग्यता बढाने के बहुत से तरीके इसलिए सफल नही हो सके क्योकि वे इसी भ्रान्ति पर बनाये गये थे कि मनुष्य से मशीनी पुर्जों की तरह काम लिया जा सकता है। जब लोगो को "हाथो" (Hands),"इकाइयो" (Units),"सस्थाओ" (Bodies) या "कर्मचारियो" (Personnel) की हैसियत से सम्बोधित न करके उनसे सच्चाई से यह बताया जाय कि वे क्या कर रहे हैं तो वे ज्यादा योग्यता से काम करते हैं। हर जगह फोरमैन, सेक्रेटरी, दुकान सचालक, उत्पादन सचालक, विभागीय प्रधान ये सभी प्रशिक्षण प्राप्त लोग होते हैं और ये दूसरो को सिखाते हैं। एक सार्जेन्ट पन्द्रह सिपाहियो के बराबर होता है क्योकि वह अपने साथ के पन्द्रह व्यक्तियो को इतनी कुशलता से सिखा सकता है कि उनकी योग्यता दुगनी हो जाती है।

दवा या चीर-फाड से डाक्टर रोगी की चिकित्सा कर सकता है लेकिन हम उन्हे केवल पढाकर ही स्वस्थ रख सकते हैं। गले का उपचार करके वे कहते हैं, "आप आराम से कश लें। तापमान के आकस्मिक परिवर्तन से बचे और सक्रमण से बचने की कोशिश करें।" इसी को शिक्षा देना कहते हैं। सभी डाक्टर इस काम को अच्छी तरह नही कर

सकते। अक्सर इस काम को दवाव डालकर किया जाता हे और समझा-बुझाकर किया जाता जो पढाने का सबसे बुरा नियम है। यही कारण है कि आधुनिक भैषज से बीमारियो के इलाज मे अधिक सफल रही हैं और कभी-कभी रोगो के निराकरण मे वह उतनी ही असफल रही हैं। इसी कारण से लोकोक्ति चल पडी है कि डाक्टर रोग का इलाज तो करना चाहते हैं लेकिन साथ ही साथ वे यह नही चाहते कि रोग पनपे नही। या शायद हम उनके वदले हुए अनुपात से चकरा गये हैं। शायद डाक्टरो ने अब वैसे अधिक महत्त्वपूर्ण वातो की तरफ ध्यान देना शुरू कर दिया है जिसका उद्देश्य बीमारियो को रोकना है। अव वे रोगियो को रोग से वचने की प्राथमिक बातो की जानकारी दिलाने की ओर भी कदम उठाने जा रहे हैं। अव हम अधिक से अधिक इस वात को समझने लगे हैं कि किस तरह मस्तिष्क का प्रभाव शरीर पर पडता है या वह उसको स्वस्थ या अस्वस्थ बना सकता है। किसी भी पुरुष मे कार दुर्घटना की तरह पेट मे फोडे (Ulcers) नही हो जाते। उस रोग की उत्पत्ति उसके गलत ढँग से भोजन करने और खाने को न पचाने से पैदा होता है। इन गलतियो से उसे निषिद्ध नही किया जा सकता। उसे भय दिखाया जा सकता है या उसको ऐसा न करने की शिक्षा दी जा सकती है। एक कुशल डाक्टर उसे यह वतायेगा कि वह कौन-सी गलतियाँ करता है, वे गलतियाँ क्यो हैं और वह उनसे कैसे वच सकता है। कुछ ऐसे लोग होगे जो इसके बावजूद गलतियाँ उसी तरह करते रहेगे जिस तरह कुछ लोग यातायात के नियमो को सीखने के वाद भी किसी मोड पर दूसरी गाडियो से आगे वढ निकलने की कोशिश में अपनी गाडी चूर-चूर कर डालते हैं। लेकिन ऐसे लोग अधिक गहरी मनोवैज्ञानिक बीमारियो से आक्रान्त होते हैं जिसका उपचार साधारण डाक्टर नही कर सकते। यदि कोई साधारण आदमी हो तो वह उन बातो को सीख कर मान जायेगा।

साधारण डाक्टर बीमार मस्तिष्क का इलाज नही कर सकता। मनोविश्लेषक जैसे विशेषज्ञ उनकी चिकित्सा कर सकते हैं। ये मूलत अध्यापक ही होते हैं। पहले-पहल तो वे अपने आपको अध्यापक नही समझते थे। वे समझते थे कि उनका काम किसी रसायन शास्त्री की तरह है जो किसी सूक्ष्म वस्तु का धीरे-धीरे और धीरज से विश्लेपण तब तक करता है जव तक वह उसमे विद्यमान सभी रसायनो को और उनकी मात्रा का ज्ञान और उनकी परस्पर प्रक्रियाओ के कारण नही जान लेता। साथ ही वह उनकी विशेपता, अस्थिरता, अपारदर्शिता और अवरोधो को भी प्रमाणित करता है। वे ऐसी आशा करते हैं कि एक वार जब उन्होने अपने रोगियो के मस्तिष्क के गुप्त तत्वो के रहस्य को जान लिया है तो वे ऐसी कमजोरियो पर भी विजय पा सकते हैं जिनसे वे रुग्ण हुए थे। लेकिन अनुभव ने इसे गलत सिद्ध कर दिया है। साधारणत, मनोविश्लेषक का रोगी अपनी गुप्त कमजोरियो के उद्घाटन किये जाने पर विश्लेषक को वधई नही देता वल्कि उन्हे सुरक्षित रखने के लिये और भी बहुत-सी वातें छिपा लेता है। इन मामलो मे विश्लेषण करने पर डाक्टर का केवल आधा काम ही पूरा होता है। कमजोरियो का पता लगा लेने के वाद

उसको एक सही और सम्पूर्ण ढँग की शिक्षा देनी होती है जिस शिक्षा को अपने माँ-बाप से पाने से वह सदा वचित रहा। अपनी माँ की निर्दयता से कोई लडकी यह समझ बैठती है कि साधारणत दुनिया मे कोई भी उससे स्नेह नही दिखलायेगा, उसका कभी विवाह नही होगा और अपनी माँ की तरह वह किसी घर की मालकिन नही बन सकेगी। यह धारणा, जिसे शायद कभी वह शब्दो मे व्यक्त नही करेगी, उसके व्यवहार मे एक विलक्षण मूर्खता-पूर्ण और अनुचित परिवर्तन ला देती है। यदि वह किसी मनोविश्लेषक के पास जाय तो उसका पहला कर्त्तव्य इस बात का पता लगाना होना चाहिये कि वह इस तरह दुर्व्यवहार क्यो करती है। धीरजपूर्वक वह उस धारणा को ढूँढ निकालेगा कि जिसको उसने "भूला हुआ" या अज्ञात कहकर या अस्पष्ट बताकर छुपा रक्खा हो। लेकिन तब उसको उसके बदले एक स्वस्थ और नयी धारणा का आरोप करना चाहिये और धीरे-धीरे विनम्रता से घण्टो उसको समझाकर यह बताना चाहिये कि वह एक साधारण लडकी है, उसकी सभी सहेलियो की जिस तरह शादी होगी उसी तरह उसकी भी होगी और ससार मे साधारणत स्वस्थ (Healthy) विवाहो की कमी नही, आदि। अगर उसने सचमुच इसका इलाज किया है तो उसने ऐसा तभी किया होगा जब उसने उस लडकी की शिक्षा के दोषो का पता लगा लिया होगा और उसे इन दोषो को सुधारना सिखाया होगा। ऐसी अवस्था मे वह ठीक उस हड्डी और मोच आदि को ठीक करने वाले डाक्टर की तरह होगा जो किसी विकृत अग के रोगी के अग की विकृति का कारण पता लगाकर उसको ऐसे व्यायाम करना बताता है जिससे रोग दूर हो सके। शिक्षा देने का उतना ही महत्त्व है जितना विश्लेषण करने का है।

पुजारियो और सतो का भी कुछ ऐसा ही कर्त्तव्य है। धार्मिक सभाओ मे लोग उनको मित्र और साथियो की तरह देखते हैं और उनकी शिक्षा को वे ऋचाओ की तरह सुनते हैं। लेकिन जब सचमुच सकट आ जाय तभी उनसे सहायता माँगी जाती है। यह मदद वे अधिकतर शिक्षा के रूप मे देते हैं। इसी को मार्गदर्शन या सान्त्वना देना कहते हैं। इसका अधिकतर भाग शाश्वत समस्या पर विचार करना होता है जो किसी आकस्मिक सकट के कारण सामने आ गया हो जैसे जब किसी का इकलौता बेटा मर गया हो, कोई पति अपनी स्त्री को त्याग देता या कोई किसी स्त्री से यह कह देता है कि उसे एक ही साल और जीना है। वे सकट-ग्रस्त लोग पूछते हैं कि "ऐसा क्यो होता है ?" "मुझे क्या करना चाहिए?" और "मैं किस तरह इस सकट को बर्दाश्त कर सकता हूँ ?" कभी-कभी वे हिंसात्मक धमकियाँ देते हैं जिसको वे स्वय गलत समझते हैं और चाहते हैं कि कोई उनको समझा-बुझाकर शान्त कर दे। वैसी जगहो पर धर्मात्माओ का विद्यमान होना ही बहुत कुछ माने रखता है। सगति से सहानुभूति होती है। (जब जौब (Job) की सभी लडके-लडकियाँ मर गयी तो उसके मित्र उसे सान्त्वना देने आये। उन लोगो ने जो कुछ वहाँ पर बोला वह "Book of Job" मे लिखी है। लेकिन उन्होने सबसे अच्छी सान्त्वना कुछ बोलने से पहले ही दी जब वे सात दिन और सात रात उसके साथ मौन बैठे रहे।)

लेकिन मौन सान्त्वना देने के बाद कुछ कह कर सान्त्वना देने की जरूरत होती है। अगर उन शब्दो का कुछ स्थायी प्रभाव होता है तो उनमे कुछ तात्पर्य भी होना चाहिए और जरा विचारिये तो उस सान्त्वना मे सिवा राय, व्याख्या और शिक्षा के दूसरी क्या बात हो सकती है? क्रिस्तान चर्च के इतिहास का स्वर्णयुग वह समय था जब उसने शिक्षा कार्य को गभीरता से हाथ मे लिया और जब भी वे इस बात की शिक्षा देते हैं कि भावी को बर्दाश्त करना चाहिए तो वे चर्च के महान् पक्ष का प्रतिपादन करते हैं।

सार्वजनिक जीवन मे काफी लोग जो अधिकता से लेकिन ज्यादा गहराई मे न जाकर शिक्षा के तरीको का इस्तेमाल करते हैं यद्यपि कोई जरूरी नही कि वे सब अध्यापक ही हो। व्यावसायिक शिक्षा शास्त्रिओ की तुलना में विज्ञापन का काम करने वाले लोगो ने इन मौलिक तरीको को ज्यादा मजबूती से ग्रहण किया है—

(१) **उसे स्पष्ट बनायें**—हर सन्दूक पर एक साकेतिक चिन्ह होता है। हर इश्तिहार पर एक चित्र होता है।

(२) **उसे स्मरणीय बनायें**—हरेक माल पर उसका नाम साफ-साफ और आकर्षक अक्षरो मे लिखा होना चाहिए जिसमे उनका उच्चारण सहज हो जाय और उनको याद रक्खा जा सके। नारे ऐसे बनाये जाने चाहिए जो जनता की लघुस्मृति मे आसानी से टिक सकें।

(३) **उसको उपयुक्त बनायें**—विज्ञापन की यह प्रमुख कठिनाई है। क्योकि वह किस तरह से दुनिया के लाखो लोगो को समझाए कि दूसरो की अपेक्षा किसी खास टूथ-पेस्ट का प्रयोग करने से उनके जीवन मे सुधार हो सकेगा। फिर भी वह इस कठिनाई को सुलझा देता है (जैसे अमुक टूथ-पेस्ट के डिब्बे पर वैवाहिक परिधान मे मुस्कुराती हुई एक रमणी का चित्र बनाकर), और कुछ-कुछ बडी-बडी बातें बनाकर।

चाहे वह कितना भी गया गुजरा या आमदनी देने वाला क्यो न हो, वह आखिर है तो शिक्षा ही।

व्यापारिक विज्ञापन बढती हुई शाखा का एक ही भाग है जो नित्यप्रति बढता ही चला जा रहा है। राजनीति मे इसको प्रचार कहते हैं। (प्रचार शब्द का अर्थ होता है "फैलाना और इसकी उत्पत्ति रोमन कैथोलिक चर्च के दि प्रोपेगैण्डा फाइड (De Propaganda Fide) नामक समिति से हुई है जिसकी स्थापना ईसाई मत के प्रचार के लिए की गयी थी।) इसको नयी चीज समझना भूल होगी। करीब-करीब सभी देश और राजनीतिज्ञ इस बात की कोशिश करते हैं कि लोग उनकी नीतियो का पक्षपात करें। केवल वे निस या स्पार्टा जैसे खुफिया पुलिस वाले देश ही इसके अपवाद हैं। अगर इसमे कोई नयी बात आ गयी है तो वह यही कि अब इसका प्रयोग बडे पैमाने पर किया जा सकता है और इस प्रगति और विशालता मे छापाखाने का आविष्कार-सवाद वाहन की अच्छी व्यवस्था, सार्वजनिक शिक्षा और बालिग मताधिकार ने काफी योग दिया है। मुझे विश्वास है कि आगे चलकर इस विशालता के कारण इसके मौलिक रूप मे कोई महत्वपूर्ण अन्तर नही

आयेगा। मुझे ऐसा लगता है कि ब्रिटेन के सन् १८३१-३२ के रिफार्म बिल आन्दोलन और बाद के अमेरिका के ऐवोलिशनिस्ट प्रचार मे इन देशो मे जो उथल-पुथल हुआ उतना आज-कल वैसे ही महत्त्वपूर्ण आदर्शों के लिए काफी प्रचार करने पर भी नही उत्पन्न हो सकता। स्वय अपने जीवनकाल मे ही हमने प्रचार के अनेक तरीको को काफी वढाने-चढाने और लोकोत्तर स्वीकार किए जाने के वावजूद सफल होते देखा है जैसे यह धारणा कि विश्व युद्धो को वढावा सैनिक साज-सामान वनाने वाली प्राइवेट कम्पनियो ने दी। फिर भी अपने उच्चतम स्तर पर राजनीतिक प्रचार, राजनीति का एक वहुत ही सम्मानित आवश्यक और उपयोगी तरीका है। हम इस वात मे विश्वास करते हैं और कुछ लोग इस वात का ढोग करते हैं कि अच्छी सरकारे हमेशा जनता स्वीकृति के मुताविक वनती हैं। जनता अपनी स्वीकृति विना उस वात को जाने नही देती। अत यह प्रत्येक अच्छी सरकार का कर्त्तव्य है कि वह अपनी जनता को यह वताए कि वह उनके लिए और उनके नाम मे क्या करने जा रही है। हो सकता है जनता उस योजना को अस्वीकार इसलिए कर दे क्योकि वह उसको समझ नही सकी है। अगर ऐसी वात होगी तो सरकार उनको वह वात ज्यादा सहज वनाकर अच्छी तरह समझायेगी। तव वे शायद उस वात का समर्थन न करने के कारण शायद उस पर अपनी स्वीकृति न दें। अगर वैसे वात होगी तो सरकार उनको ज्यादा प्रभावोत्पादक ढग से समझाने का यत्न करेगी। और यही वह जगह है जहाँ तथ्य को समझाने और उसमे नमक-मिर्च मिलाकर कहने का फर्क स्पष्ट होने लगता है। बहुत आसानी से कोई भी सरकार अपने को इस वात का आश्वासन दे देती है कि अगर वह कोई झूठ वोलती है तो केवल किसी वडे सत्य के आवाहन करने के लिए, अगर वह किसी तथ्य को छिपाती है तो केवल चतुराई (Tactical reasons) की वजह से, या अगर वह इतिहास के वारे मे सारे राष्ट्र के दृष्टिकोण को बदलती है तो इसका कारण सिर्फ राष्ट्र सेवा है न कि लोगो पर आधिपत्य जमाना है।

तो क्या कोई उम्मीद की जा सकती है? क्या सभी सरकारो को पहले अपने को और बाद मे अपनी जनता को जिन पर उनका शासन है, कर देना चाहिए? क्या सभी राजनीतिक प्रचारो का एकमात्र उद्देश्य झूठ का प्रचार करना और दूसरो को झूठ वोलना सिखाना है।

इसका उत्तर तब तक हाँ, अवश्य है जब तक एक ही गुट सत्तारूढ हो और वैसे किसी भी दल को विरोध या प्रतिरोध करने की अनुमति नही देता। हाँ यह उस समय तक होता रहेगा जब तक सरकारें जनता के प्रति उत्तरदायित्व को नही समझती। ग्रीक विद्वान् कहा करते थे कि राजनीतिज्ञ का विद्वान् होना अनिवार्य है। उनका विचार था कि वह न केवल लोगो का नेतृत्व करता है बल्कि वह उन्हे पढाता भी है। अपने चलाए हुए कानून से वह लोगो को किसी खास ढग से व्यवहार करने को प्रोत्साहित करता है जैसे पैसे वचाना, खर्चीला बनना, वीर या कायर बनना, या कर्त्तव्यपरायण बनना या गैर जिम्मेदार बनना। अपनी नीतियो को साधारण गति-विधियो के आधार पर वह लोगो के जीवन

को एक दिशा को छोडकर किसी दूसरी दिशा मे ढाल देता है इसलिए उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि ऐसी नीतियाँ चुने जिससे लोग अच्छे गुण सीखे। कोई राजनीतिज्ञ चाहे वह कितना भी शक्तिशाली क्यो न हो, अगर वह किसी राष्ट्र को वैसे ही सुस्त, दुस्तर, और बिगडी दशा मे छोड देता है जिस दिशा मे उसने जैसे पाया था तो प्लेटो की दृष्टि मे वह एक बुरा राजनीतिज्ञ है। यदि यह सत्य है तो राजनीतिक प्रचार का सच्चा खतरा यह है कि यह एक ऐसा शक्तिशाली अस्त्र है जिसका दुष्ट और गैर जिम्मेदार लोग भी प्रयोग कर सकते हैं। लोगो का बुद्धिपूर्ण अविश्वास ही इसका सबसे अच्छा नियन्त्रण है।

हाल ही मे रूस मे साम्यवादियो ने युद्धबन्दियो को साम्यवाद के सिद्धान्तो से परिचित कराने के लिए राजनीतिक शिक्षा की एक उत्साहपूर्ण योजना बनाने की कोशिश की है। पुस्तक को लिखने के समय जापानी सैनिको के एक जत्थे को सिद्धान्त शिक्षा (Indoctrination) देकर जापान लौटा दिया गया और जेनरल वोन पौलस (General von Paulus) के अधीन सारी जर्मन सेना को जर्मनी वापस लौटने की तैयारी में साम्यवाद सिद्धान्त सीखने के सम्वाद मिले हैं। अभी इतनी जल्दी इस शिक्षा प्रणाली की उपयोगिता के बारे मे राय व्यक्त करना उचित नही होगा और साथ ही साम्यवादी शिक्षा प्रणाली के बारे मे कोई सुनिश्चित बात लिखना जल्दबाजी होगी। लेकिन चूंकि हम लोगो ने भी युद्धबदिन्यो को लोकतत्र के सिद्धान्त सिखाने का प्रयत्न किया और जर्मन और जापानी अधिकृत इलाको मे उनके प्रचार की कोशिश की है इसलिए यह यहाँ उचित ही है कि हम साम्यवादियो द्वारा इस काम के अपनाए गये तरीको पर विचार करें।

पहला तरीका धैर्य है। उनके पास काफी समय होता है। स्पष्टत, स्वस्थ युद्धबन्दियो को बगैर साम्यवाद मे परिवर्तन किए या साम्यवादी विचारधारा की आदत डाले बगैर न छोडने का वे व्रत लेते हैं। युद्धवन्दियो के दृष्टिकोण से यह सीखने के लिए एक सशक्त प्रेरणा का काम करती है। यही वह धारणा है जिससे होस्टलो मे रहने वाले विद्यार्थियो को एक दिन के समय लगने वाले स्कूलो मे जाने वाले विद्याथियो की अपेक्षा ग्रहण करने की अधिक प्रेरणा मिलती है। उनको और कही जाने की जरूरत नही पडती। उनको काम भी कम ही करने पडते हैं। यदि आप जानते हैं कि किसी साम्यवादी लेक्चर को सुनने से एकदम इन्कार कर देना, उसे जीवन पर्यन्त या बुढापा तक बन्दी बनाए रक्खेगा जब कि उसे सुनने की इच्छा दिखाना उसे मुक्त कर देगा तो बहुत सम्भव है कि आप उन लेक्चरो को सुनने के लिए जाना पसन्द करेंगे।

दूसरा तरीका है आयोजन। जहाँ तक हमारी नजर जाती है हम देखते हैं कि युद्ध बन्दियो का मार्क्सवाद के सिद्धान्त की शिक्षा देने की विधि को सावधानी से नियत किया गया है, उसको सैनिको की बुद्धिमत्ता के विभिन्न स्तरो के अनुसार लागू किया गया है और धीरे-धीरे टुकडो में उसे बनाया गया है तथा इस तरह से निर्धारित किया गया है कि सबका मिला-जुला प्रभाव एक सम्पूर्ण और उत्कृष्ट चीज पैदा करे। लोकतत्र के सिद्धान्तो को भी उसी ढग से सीखना भी सम्भव हो सकता है लेकिन शायद तभी जब इसके अध्या-

पक यह समझे कि लोकतत्र एक जटिल और क्रान्तिकारी विचाराधारा है। हममें से बहुत से लोग इसे जीने का सबसे स्वाभाविक और सहज ढग समझते हैं। हममे से बहुत इसकी सराहना करते हैं क्योकि हम समझते हैं कि इसके साथ सावधानी से योजना बनाने की या खास तरह लोगो के निर्माण (Production of special types of men) की आवश्यकता नही पडती बल्कि इसमे ऐसी अवस्था होती है कि अपनी मर्जी से लोग काम कर सकें और चरित्र का अनियत्रित विकास होता है। शायद केवल वैसे ही देशो मे, जहाँ लोकतत्र को उखाड फेका गया हो या उसकी पुनर्स्थापना करनी हो या जहाँ इस बात का खतरा हो कि उसके समर्थक सचमुच इसके सभी गुणो से सजग हो चुके हैं, लोकतत्र के सिद्धान्तो को सगठित रूप से प्रतिपादित करने और नियोजित ढग से पढाने की आवश्यकता होगी।

तीसरा तरीका है सम्पूर्णता। साम्यवाद के सिद्धान्त समस्त मानव समस्याओ का हल उपस्थित करने का दावा करते हैं। ये कला, धर्म, नीति, साहित्य, इतिहास, विज्ञान, राजनीतिक और स्पष्टत अर्थनीति के मूल्याकन की कसौटी पेश करते हैं। लेकिन साम्यवाद आर्थिक आयोजनो का एक सग्रहमात्र ही है बल्कि स्वय एक सम्पूर्ण जगत है। अब अगर इस तरह के सम्पूर्ण सिद्धान्तो का विवरण किसी श्रोता वर्ग को काफी अर्से तक सिखाया जाता रहे तो चाहे वे सिद्धान्त सत्य हो या असत्य, अपनी सम्पूर्णता और सामजस्य के कारण उन श्रोताओ का मन जरूर मोह लेगे। वे जितने ही कम पढे-लिखे होगे उन विचारो का उनके दिल पर उतना ही गहरा प्रभाव होगा। जो लोग इससे प्रभावित न होगे वे वैसे लोग होगे जिनके मन मे इनके प्रत्युत्तरो का बडा और समृद्ध सग्रह होगा। सिद्धान्तो को स्वीकार कर लेने वाले लोगो के विपरीत उनके मन मे सुसम्बद्ध सिद्धान्त होगे जिनका उन्होने पहले से ही हृदयागन किया होगा। जर्मन और जापानी, दोनो के पास ऐसे सुनिश्चित सिद्धान्त थे लेकिन उनकी पराजय ने उन्हे बहुत कमजोर और अविश्वसनीय बना दिया। नही तो शायद किसी विजयी जर्मन सेना को कभी भी किसी तरह की शिक्षा नही दी जा सकती। स्टालिनग्राड के मुकाम पर पराजित व्यक्ति अवश्य ही यह पूछेगे कि ऐसा "क्यो" हुआ ? साम्यवादियो के पास इस प्रश्न का पूरा-पूरा उत्तर होता है। उनके इस उत्तर की सम्पूर्णता को सिद्ध करने का एक बहुत बडा कारण युद्धबन्दियो के कैम्पो मे प्रतिद्वन्द्व की भावना का अभाव है। अगर किसी लेक्चर में हिटलर को जर्मन पूँजीपतियो के हाथ का कठपुतला बताया गया हो और अगर अपनी बैरेक (Barracks) में लौटने के बाद किसी दूसरे लेक्चर मे उन बातो का खण्डन किया जाय तो उसे किसी निश्चित मत पर पहुँचने मे सालो लग जायेंगे। लेकिन साम्यवादी लेक्चररो को स्पष्टत किसी व्यक्तिगत आलोचना का सामना नही करना पडता और श्रोताओ के आक्षेप और प्रश्न वास्तव मे उन्हे अपने प्रचार-कार्य में सहायता पहुँचाते हैं। किसी अनुभवी साम्यवादी लेक्चरर के पास झूँठ या सच हमेशा एक रूढीवादी उत्तर मौजूद होता है। वाद-विवाद मे, जहाँ दोनो पक्षो से तथ्य प्राप्त करने की छूट हो और प्रमाण निष्पक्ष ढँग से पेश किये जा सकते हो वहाँ प्राय कठिनाई होती है। केवल घर की याद से सताये जाने वाले

सैनिको (Home Sick) के घबराये हुए प्रश्नो और किसी भी सार्थक शिक्षा को तुरन्त स्वीकार कर लेने की प्रवृत्ति वालो के लिए ही वे सुसज्जित और दृढ होते हैं।

अध्यापन की इस योजना के बारे मे हमने जिन बातो पर अभी गौर किया है उससे पता चलता है कि अधिकतर विद्यार्थियो पर दबाव नही डाला जाता। हमे मालूम नही कि किसी राष्ट्रवादी और सम्राट्-भक्त जापानी का कैसा अन्त होगा जो वैसे सभी लेक्चरो के विरोध में आन्दोलन करता है यद्यपि हम इसका अनुमान लगा सकते हैं लेकिन सर्वसाधारण साम्यवादी विद्यार्थी को धमकाया तक नही जाता। उसे केवल राजी किया जाता है। सन् १८१७ से जिस प्रधान कठिनाई का अनुभव साम्यवादियो को करना पडा उसका कारण उनके सिद्धान्तो और सच्चे तथ्यो के बीच महान् अन्तर है। आने वाले दस या पन्द्रह वर्षों में हम देखेंगे कि रूस द्वारा सुधार कर भेजे जाने वाले ये सैनिक किस तरह इस अन्तर (Discrepancy) के आघात से बचते हैं। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उनका अध्ययन कितनी खूबी से किया जाता है।

राजनीतिज्ञो की तरह लेखक और कलाकार भी अध्यापक होते हैं क्योकि वे जनता को प्रभावित करने का काम करते हैं। बहुत से कारण हैं जिनकी वजह से पहली बार सुनने पर यह बात विश्वसनीय नही मालूम होती। जैसे सगीत में यह बात कैसे लागू होगी ? क्या कलाकार केवल उन चीजो का अनुकरण-मात्र नही करते जिन्हे वे देखते हैं ? क्या वे केवल सजावट के नमूने नही तैयार करते ? क्या किसी उपन्यासकार से यह उम्मीद नही की जाती कि वह किसी बात पर लोगो को राजी करने की अपेक्षा यथार्थ बाते कहे ? क्या प्रचार के अतिक्रमण से किसी कला की अवनति नही होती ?

फिर भी ऐसी और दूसरी आपत्तियो के लिए भी जवाब हैं। जैसे सगीत का सम्बन्ध हमारी भावनाओ से है। और मनोभावो पर हमारा जो अधिकार है उसको वह घटा-बढा सकता है। चित्रकार जो कुछ देखते हैं उन सभी चीजो का अनुकरण नही करते और वे जिन तत्वो को चुनते हैं उनकी सार्थकता होती है जो विवेकशून्य होने पर भी कभी-कभी बहुत ज्यादा प्रभावशाली होते हैं। साधारणत, हरेक उपन्यासकार भी किसी सत्य के प्रतिपादन करने का दावा करता है लेकिन,इसका मतलब यह हुआ कि वह लाखो-करोडो सत्यो में से एक ही सत्य का प्रतिपादन कर रहा है। इसलिए वही एक सत्य सविस्तार कहे जाने पर असर डालने मे ज्यादा उपयुक्त हो जाता है। यह कोई जरूरी नही कि हमेशा प्रचार करने से कला का ह्रास होता है। नही तो अपने क्रास के आकार और रगे हुए शीशो वाली खिडकियो के साथ मध्ययुग के गिरजाघर कला के बुरे प्रमाण होते। अगर ऐसा होता तो उसी तरह दाँते लिखित "कामेडी", टालस्टाय का "वार एण्ड पीस" शैली की कृति "प्रोमेथ्युस अनबाउण्ड", बीथोवेन की "नाइन्थ सिम्फोनी" और इनके अलावा दूसरी महान कृतियाँ भी उत्कृष्ट कला की चीजें नही मानी जाती जिनमे कल्पना की ऊँची उडान है।

लेकिन हर कलाकार अपने दिल मे यह जानता है कि वह जनता से कुछ कह रहा

है। अपनी कला वह केवल अच्छी तरह से प्रस्तुत ही नही करना चाहता वल्कि वह ऐसी आशा करता है कि वह कोई ऐसी चीज है जो पहले कभी नही कही गयी है। वह आशा करता है कि जनता उसे सुने और समझे। अगर तत्काल नही तो कम-पे-कम उसकी मृत्यु के बाद ही। कहने का मतलब यह है कि वह उन्हे कुछ सिखाना चाहता है और चाहता है कि वे उसमे कुछ सीखे। चित्रकार जैसे दर्शनीय कला के अभिव्यक्ता क्या चीज सिखाना चाहते हैं, यह समझना तो आसान है लेकिन उसको समझाना कठिन। शायद ही वे अपने आपको कभी ग्राह्य बना सके हैं क्योकि वे अपने अनुभवो को आकार और रग द्वारा मूर्त रूप मे लाना चाहते हैं शव्दो मे नही। मूलत, वे ऐसा समझते हैं कि अनगिनत रगो और आकारो मे से चुने गये एक उनकी नजर मे अद्भुत जान पडते हैं और वे उन्हे दूसरो को दिखाने लायक समझते हैं। लेकिन अगर वे ऐसा न करते तो शायद उन्होने कभी आकृतियो और रगो को जाना नही होता या उनसे कलाकारो को मिलाने वाले अपूर्व सुख का अनुभव किया होता। अधिकतर कलाकारो ने अपनी कलाकृति मे प्रकृति में उपलव्ध आकृतियो और रगो, गतिशील या शान्त अवस्था मे मानव शरीर से, जानवर, मकान, भोजन और सुन्दर-सुन्दर दृश्य मिलते हैं, इसलिए ससार के उन पहलुओ पर भी ध्यान कभी-कभी जाता है। समकालीन कलाकार यह कहेगे कि उसमें इससे ज्यादा और कोई बात नही है और वे सिर्फ वैसे ही विषय ही चुन लेते हैं जिनमे उन्हे रोचक नमूने मिलते हो। लेकिन वे चित्रो के पात्रो या आधारो को उनकी अच्छाई वुराई पर गौर किए विना उन्हे चित्रकारी के लिए नही चुनते। अगर कोई चित्रकार किसी दुवले-पतले पाँव या चाँदनी रात मे किसी मिल का दृश्य चित्रित करने का निश्चय करता है और इसके लिए वह खास-खास रगो और आकृतियो का उपयोग करता है। वह हमे कुछ कहता है, कुछ दिखाता है और किसी बात पर जोर देता है जिसका मतलब यह है कि वह अक्सर वगैर जान-वूझकर ऐसा करने की इच्छा से हमे कुछ सिखाता है। जब पीट मौड्रियाँ (Piet Mondrian) केवल सीधी लकीरो या चौकेरो के सहारे चित्र बनाने मे अपना जीवन विता दिया है तो वह भी (क) उसी तरह गलीचो और मिट्टी के बर्तन के डिजाइन वनाने वालो की तरह डिजाइनें बनाना चाहते हैं और (ख) कम-से-कम अपने खयाल से ही यह दिखाना चाहते हैं कि अगर दूसरो की नजर मे नही तो कम-से-कम अपनी नजर मे जरूर ही भौतिक जगत (World of nature) की अपेक्षा विशुद्ध गणिताकार (Mathematical) शक्ल की चीजो की दुनिया अधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर हम इन चित्रो को सावधानी से देखे तो बगैर उनके निर्णय से सहमत हुए भी उन नमूनो की सराहना करना हमारे लिए सम्भव हो सकता है। लेकिन साधारणत किसी चित्रकार के नमूनो की सराहना करने के साथ-साथ उनके निर्णयो से सहमति भी की जाती है। जो लोग चीन की गोलाकार चित्रकला (Scroll paintings) के प्रशसक होते हैं, वे वास्तव में ऐसा शान्त और विचारमय जीवन पसन्द करते हैं जिसमे भावना की अतिशयता और हिंसक रगो का समावेश न हो।

पुस्तको मे तो यह समस्या अधिक सरल होती है क्योकि पुस्तके लोगो के बारे मे लिखी गयी होती हैं जो एक नैतिक ससार के निवासी होते हैं। जब हम पुस्तकें पढते हैं तो हमें पात्रो की आवाजें सुनने और उनके कार्य-कलाप देखने को मिलते हैं और इन दोनो के पीछे हम स्वय लेखक की आवाज सुनते हैं जिसमे वह या तो किसी काम की बडाई करता, किसी की मजाक उडाता है, किसी निर्दय परिणाम को कही से उडा देता है या किसी चीज का सविस्तार वर्णन कर देता है। इन सब बातो मे वह जीवन पर अपने कुछ ऐसे निर्णयो का सकलन कर देता है जिन्हे वह स्वीकार करना चाहता है। अगर कोई लेखक अपनी नवीनतम पुस्तक पर किसी अजनबी की यह प्रशसा सुने कि "पुस्तक बहुत ही सुन्दर ढग से लिखी गयी है और उसकी बनावट बहुत सराहनीय है यद्यपि लेखक ने अपने पात्रो को, जिस तरह व्यवहार करने पर बाध्य किया है बिल्कुल अस्वाभाविक है और उनके मानदड बिल्कुल हास्यास्पद है" तो इससे उसे गहरा घाव लगेगा क्योकि इसका अभिप्राय यह होगा कि केवल लेखक की शैली को सराहा गया है, जीवन पर उसके सारे निर्णय ठुकरा दिये गये हैं। लेकिन बहुत से लेखक ऐसा मानने को तैयार न होगे। वे यह नही कहेगे कि वे पाठको को प्रभावित करना चाहते हैं। वे ऐसा नही कहेगे कि वे शिक्षा दे रहे हैं। वे यह भी नही कहेगे कि—"मै सत्य को जिस रूप में देखता हूँ उसी रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास करता हूँ।" और अगर हम पूछे क्यो तो वे सिकुड कर यह सीधा उत्तर देंगे—"सत्य के विषय पर अपनी राय को दूसरो तक पहुँचाने के लिए।" जिसका मतलब यह हुआ कि "मैं जिस बात में विश्वास करता हूँ, उसी की लोगो को शिक्षा देने के लिए।" सभी पुस्तकें जीवन के बारे मे कुछ खास निर्णयो का प्रतिपादन करती हैं। वे सभी कुछ उपदेश देना चाहती हैं। केवल अन्तर उन्ही पुस्तको मे होता है जो यह काम सफलता से कर पाती हैं और जो इसमे असफल रह जाती हैं तथा ऐसी पुस्तको मे होता है जो महत्त्वपूर्ण बातें सीखाती हैं और जो बुरी या नगण्य बातें सीखाती हैं। इन्ही महत्त्वपूर्ण विभेदो का उद्घाटन आलोचना मे किया जाता है। इन भेदो का होना यथार्थ है और इनको भूलना नही होगा। अगर शैली ही सब कुछ होती और विषयवस्तु महत्त्वहीन होती तो शायद कोई ऐसी पुस्तक लिखना उचित या सम्भव हो सकता जिसमें जीवन को अधिक चाव से अनुभव करने वाले अपराधियो के सुखो का वर्णन सुन्दर गद्य में और भाषा के लालित्य के साथ भावनाओ का आकर्षक और विस्तार सहित वर्णन किया जा सके। जैसे रात के समय किसी अनजाने व्यक्ति के घर में आग लगाने का आनन्द उठाना, यह तय करना कि खिडकियो और दरवाजो में ही पहले आग लगे, लपटो का चटख रग, कडकडाती हुई लकडियो और दहकते हुई ईंटो के साथ परिवार का चीखना चिल्लाना "बेहूदे काम" (इस शब्द का प्रमुख फ्रेंच अनैतिकतावादी ने नामकरण किया है) में नैसर्गिक आनन्द प्राप्त करना, शक्ति का ज्ञान और समाज के ऊपर व्यक्ति की अभिव्यक्ति का भाव आदि। इसी तरह की कुछ ऊटपटाग बातो की कल्पना आसानी से की जा सकती हैं जिनको बहुत ही सुन्दर रचनाओ का विषय बनाया जा सकता हैं। लेकिन ऐसी पुस्तको

की सराहना नहीं करेगा और अगर कोई समाज ऐसा करता है तो वह शीघ्र ही रसा को चला जायेगा। इसलिए किसी पुस्तको में जो निर्णय अन्तरनिहित है वे उसकी हैं जिनका वह प्रतिपादन करता है। यह शिक्षा उन कसौटियो मे से एक है जिनसे पुस्तक की कीमत परखी जायेगी। किसी भी तरह यही एक मात्र कसौटी नही है। ले इसकी आवश्यकता है और लेखक, और पाठक दोनो को यह बात माननी पडेगी। लेखक, जो इस बात की परवाह नही करता कि वह क्या पढा रहा है, सम्भव है बिल उसी बुरे लेखक की तरह हो जो उसकी परवाह नही करता कि वह क्या लिख रहा धुधले और पिछले निर्णय का शरारतपूर्ण बेहूदे निर्णय निश्चय ही किसी पुस्तक बिगाड देते हैं जैसी भद्दी शैली किसी पुस्तक को बिगाड देती है और अगर कोई ले अपने आपको अपने विचारो की आलोचनाओ से बचाना चाहता है तो वह अपने को अ खूबी से अपने विचारो को सार्थक बताकर कर सकता है न कि यह कह कर कि वह बातो को पढाना नही चाहता। इसका कारण यह है कि अध्यापन कार्य एक गभीर जि दारी होती है।

माँ-बाप, पिता-पत्नी, सचालक और फोरमैन, डाक्टर और मनोविश्लेषक, पुज गण, विज्ञापक, प्रचारक, राजनीतिज्ञ, कलाकार और लेखक ये सभी किसी-न-किसी त के अध्यापक हैं। इनके तरीके उसी तरह एक दूसरे से भिन्न हो सकते हैं जिस तरह उ कर्त्तव्य और व्यक्तित्व भिन्न होते हैं इसलिये हम केवल कुछ ही सर्वसाधारण सिद्धा की ओर सकेत कर सकते हैं जिनसे उनका अध्यापन कार्य अधिक सार्थक हो सकता है।

पहला सिद्धान्त स्पष्टता (Clarity) है। चाहे आप जो कुछ भी पढाते हो उसे स साफ जाहिर करें, उसे पत्थर की तरह दृढ और सूरज की रश्मियो की तरह प्रखर बना अपने लिए नही क्योकि यह आसान है। उसे उन लोगो के लिए दृढ और प्रखर बना जिन्हे आप पढा रहे हैं। यह काम कठिन है। इस कठिकाई का कारण कुछ हद तक विष वस्तु और कुछ हद तक भाषा मे निहित होता है। आपको अवश्य सोचना होगा। उन बा को नही जो आप जानते हैं बल्कि उन बातो को जिन्हे वे नही जानते, उन बातो को जि आप कठिन पाते हैं बल्कि उन बातो को जिनसे उन्हे कठिनाई होगी और तब अ आपको उनके धृष्ट या भौचक्के टटोलते या विभ्रान्त दिमागो मे अपने आपको पहुँचा बताना होगा।

कोई अनजाना नाम या अच्छी तरह न समझ आने वाला मुहावरा आपकी व्याख्या दोषपूर्ण बना देगा। भावात्मक शब्दो को पहली बार सुनने पर मतलब ज्यादा जाहिर न होता। उन्हे समझाये। चित्र और उदाहरण दें और जब कभी सम्भव हो यह निश्चय क कि आपकी बातें समझ मे आ रही हैं। ऐसा आप अपने पढाने वाले विषय के बारे मे बा चीत करके करें। कोई अच्छा विद्यार्थी शायद ही चुप रहता है।

दूसरा सिद्धान्त है धैर्य। किसी भी ज्ञातव्य बात को सीखने और पढाने मे समय लग हैं। महान् विद्वान् और बडे-बडे राजनीतिज्ञ यह मानकर अक्सर यह गलती कर बैठते

कि उनके श्रोताओ ने अपनी समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है और वे किसी गोष्ठी मे केवल थोडे ही पीछे हैं। इसका नतीजा यह होता है कि वे यह समझ बैठते हैं कि उनके श्रोताओ ने करीब-करीब उन समस्याओ को समझ लिया है जब कि अधिकतर श्रोताओ ने शायद ही उनकी परिकल्पना भी की हो। या वे बडी तेजी से एक धुँधले प्रश्न को छोडकर दूसरे प्रश्न की ओर लपक बढते हैं। विना उनके परस्पर सम्बन्ध को वताये, सच्चे मानो में शिक्षा केवल ज्ञान के पुलिन्दो के दे देने से ही पूरी नही हो जाती। इसकी पराकाष्ठा एक परिवर्तन लाती है जो वास्तव मे विद्यार्थी के मस्तिष्क मे परिवर्तन ला देती है। कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने मे बहुत समय लगता है और इसलिए उसका सावधानी से नियोजन होना चाहिए और धीरे-धीरे वार-बार दुहराकर और उसके साथ वदलती हुई वातो को भी क्रमश वता देना चाहिए यह खास तौर से जरूरी होता है कि भावावेश से दूर रहा जाय या उसे सावधानी से नियन्त्रित किया जाय। माँ-बाप, पति-पत्नी और अधिकारी प्राप्त लोग अक्सर इस बात को भूल जाते हैं। समझाते समय कठिन वना देता है। पति पर चिल्लाती हुई स्त्री, सिपाही पर गरजता हुआ सार्जन्ट अपने पुत्र पर हुँकार भरते हुए पिता यह सभी भय और यहाँ तक कि नफरत का सचार करते हैं। लेकिन वे क्या काम करना चाहते हैं इस बात को नही समझ पाते और न श्रोताओ को वैसा करने के लिए राजी ही कर सकते हैं। जब कभी भी हम यह समझ बैठते हैं कि हम भावावेश जताकर ज्यादा प्रभाव पैदा कर सकेंगे हम उतना ही अपनी पशुता की ओर लौटने लगते हैं और यह भुलने लगते है कि हमारा सजग तर्क (Conscious reason) ही हमारी भावना का मानदड है।

तीसरा सिद्धान्त है ज़िम्मेदारी। दूसरे मनुष्य के जीवन मे हस्तक्षेप करना एक गम्भीर काम है। स्वय अपने ही जीवन का निर्देशन करना काफी कठिन काम है और फिर लोग भली-वुरी वातो मे आसानी से आ जाते हैं। विशेष रूप से उस समय, जब वे कम उम्र के होते हैं या जब उनका अध्यापक अधिकार सहित कोई बात बताता है। किसी विश्वास-पात्र जनता पर वुरी पढाई, झूँठी और छिछली सलाह, पैसा पीटने या प्रचार प्राप्त करने के हथकण्डो के भयकर परिणाम होते हैं। अक्सर समाचार पत्रो मे ऐसे लोगो के पकडे जाने के समाचार छपते हैं जिन्हे आटे की मीठी गोलियाँ (Saccharin) वनाकर नासूर की दवा के रूप में वेचने के लिए पकडा गया हो। उसे दस साल का दण्ड मिलता है लेकिन क्या उसकी तुलना उन "रोगियो" की तकलीफ से की जा सकती है जिनको उसने कष्ट पहुँचाया है। इसी तरह यह मानना कठिन है कि ऐसा कोई राजनीतिज्ञ जिसने कभी जनता को महत्त्वपूर्ण मसले पर सीख देने का वीडा उठाया था लेकिन जो गलत सिद्ध हुआ, कैसे अपना मुँह खोलने का साहस कर सकता है। फिर भी ऐसे लोगो को कभी दण्ड नही मिलता बल्कि कभी-कभी तो उन्हे रचनात्मक और प्रवीण विचारक कह कर सराहा जाता है। यह सचमुच ही एक डरावना काम होगा कि ख्याति या धन प्राप्त करने के लिए जल्दी-जल्दी और विना जिम्मेदारी के नाटको या उपन्यासो की कई कडियाँ लिख दी जायें

ग्रौर वाद मे वडी उम्र मे यह ग्रनुभव किया जाये कि वे वेहूदे या भ्रष्ट विचारो का प्रतिपादन करते हैं ग्रौर तव ग्राप ग्रपने ही शब्दो पर लज्जा का ग्रनुभव करें इसका सवसे दोष रहित बचाव यह है कि ग्राप ग्रपने ग्राप से पूछे कि सम्भवत किस तरह ग्रापके विचारो का दुरुपयोग या गलत मतलव लगाया जा सकता है ग्रौर तव ग्रपने वारे मे न सोच कर ग्रपने उा मित्रो ग्रौर भाइयो के वारे मे विचार करे जिन्हे ग्राप पढाने का यत्न कर रहे हैं।